हिन्दी साहित्य का विकास

और

कानपुर

नरेशचन्द्र चतुर्वेदी

प्रकाशक

कानपुर इतिहास समिति

नवम्बर १९५७ } { मूल्य, छै रुपया

दो शब्द

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

"हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर" यह साहित्य के परिचय के लिए एक सुन्दर और महत्त्वपूर्ण कृति है। साथ ही एक विशेष क्षेत्र को लेकर हिन्दी के साहित्यकारों और कृतियों का परिचय देकर इसमें एक नई दिशा का निर्देश किया गया है। सारे हिन्दी के विशाल प्रदेश के साहित्यकारों और उनकी कृतियों को लेने पर हमें बहुतों को छोड़ देना पड़ता है जिनमें ऐसे भी लेखक होते हैं जिनका बहुत महत्त्व है, जिनके बारे में लिखा भी जाता है तो बहुत संक्षिप्त होता है जिसके कारण हम पूरा न्याय नहीं कर पाते। स्थान विशेष के साहित्यकारों को लेने पर हम विशद विवेचन और अधिक जानकारी प्रदान कर सकते हैं इसका उदाहरण इसी ग्रन्थ में पंडित प्रताप नारायण मिश्र को देख लीजिए। मैं इस शुभ प्रयास का स्वागत करते हुए चतुर्वेदी जी को बधाई देता हूँ।

प्राक्कथन

डा० उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, डी० लिट०
प्राध्यापक, प्रयाग विश्व विद्यालय

जीवन मानव की अनन्त कामनाओं और उनकी परिपूर्ति के लिए किये गये अनन्त प्रयत्नों का पुञ्ज है जो देश विशेष और काल विशेष में जन-समुदाय की विभिन्न प्रवृत्तियों के अनुसार विशिष्ट रूप धारण करता है, किन्तु साथ ही कुछ सामान्य प्रतिक्रियाओं और प्रवृत्तियों के कारण परिवर्तनशील होकर भी स्थिर सा प्रतीत होता है। इस प्रकार जहाँ जीवन समय और स्थानगत सीमा में आबद्ध है, वहीं घटनाओं की परम्परा और आवृत्ति में वह अपरिसीम और व्यापक भी है। जीवन की इस दुहरी प्रकृति की मंगलमय और मंजुल अभिव्यक्ति का प्रयास ही साहित्य है। इस प्रकार साहित्य, जहाँ एक ओर, किसी युग और उस युग के जन-समूह की नाना प्रवृत्तियों का चित्रण है वहीं दूसरी ओर इतिहास के धरातल पर वह देश और काल निरपेक्ष सामुदायिक-जीवन की शाश्वत और व्यापक अभिव्यंजना भी है; और साहित्य का इतिहास युग और युग-युगीन मानसी वृत्तियों का आकलन है। इस भाँति साहित्य के इतिहासकार का प्रमुख सम्बन्ध जन-जीवन को परिवर्तित और प्रगति प्रदान करने वाले उन समस्त प्रभावों और तत्वों के पता लगाने से है जो युग और युग-युग की ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिक्रियाओं और परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुए हैं। दूसरे शब्दों में उसका कर्तव्य साहित्य को उसके युग-विशेष की विशेषताओं और युग-युग की धारागत व्यापकताओं के रूप में देखना है।

पं० नरेशचन्द्र चतुर्वेदी ने साहित्य के इतिहासकार के इस बड़े उत्तरदायित्व का निर्वाह बड़ी कुशलता और सतर्कता से किया है। उनके द्वारा 'हिंदी साहित्य का विकास और कानपुर' संज्ञक जिस साहित्यिक इतिहास का प्रणयन हुआ है, वह इसका प्रमाण है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्होंने समग्र हिन्दी साहित्य को इतिहास का विषय नहीं बनाया है, प्रत्युत कानपुर या कानपुर क्षेत्र से सम्बन्धित संस्कृत कालीन, मध्य कालीन, उत्तर कालीन और आधुनिक उन सभी कवियों गद्य लेखकों, निबन्धकारों, नाटककारों, कथाकारों तथा पत्र-पत्रिकाओं के ही जीवनवृत्त, व्यक्तित्व तथा कृतित्व सम्बन्धी खोजपूर्ण विवरण प्रस्तुत किए हैं जिन्होंने किसी न किसी रूप में हिन्दी साहित्य के विकास में योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी के पूर्व की साहित्यिक परम्पराओं का विकास क्रम भी उपस्थित किया है और साथ ही साथ हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगों की प्रमुख प्रवृत्तियों और विशिष्टताओं का भी निर्देश किया है। उन्होंने प्रायः प्राप्य प्रमुख प्रामाणिक हिन्दी साहित्य के इतिहास, गजेटियरों तथा स्थानीय स्वीय जानकारी से इतिहास की सामग्री जुटाई है, अतः उनके इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता में भी सन्देह नहीं किया जा सकता है।

यद्यपि कानपुर अथवा कानपुर क्षेत्र को केन्द्र मानकर हिंदी-साहित्य के विकास का इतिहास प्रस्तुत करना स्थानीय राष्ट्रीयता का भी द्योतक है जो आज के मानववादी युग में अधिक महत्व की वस्तु नहीं समझी जा सकती है क्योंकि वह संकुचित दृष्टिकोण के कारण व्यर्थ आदर और व्यर्थ अनादर, व्यर्थ प्रशंसा और व्यर्थ निन्दा की जननी समझी जाती है। किन्तु वस्तुतः वह अपने में हेय नहीं है। उसका उचित और अनुचित दिशा में उपयोग ही उसे श्रेय और हेय बनाता है। पं० नरेशचन्द्र चतुर्वेदी ने उसका उपयोग अपनी तत्वग्राहिणी और तीव्र अन्तर्दृष्टि के कारण ठीक दिशा में किया है। अतः वे— तज्जनित अनुकूल तथा प्रतिकूल अतिरंजना आदि दोषों से सर्वथा

मुक्त रहे हैं। वास्तव में हिन्दी साहित्य के इतिहास की परम्परा में क्षेत्रीय इतिहास की देन, श्री चतुर्वेदी जी का मौलिक और सराहनीय प्रयास है। इससे कानपुर की सांस्कृतिक महिमा का उद्घाटन तो हुआ ही साथ ही स्थानीय भक्ति और सम्यक् जानकारी के कारण हिन्दी के अन्य अनेक प्राचीन और नवीन ज्ञात और अज्ञात कवि-कलाकारों के सम्बन्ध में सच्चे तथ्य भी इसमें सम्मुख आ गए हैं। निश्चय ही इससे हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों को इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिलने की सम्भावना है। मेरा विश्वास है कि यदि स्थानीय जानकारी के धनी इतिहासकार क्षेत्रीय इतिहास की इस परम्परा को आगे बढ़ायेंगे तो निस्संदेह वे हिन्दी साहित्य और भाषा को अत्यन्त समृद्ध बनायेंगे। इससे स्थानीय अथवा क्षेत्रीय जनता में भी अपने निकट के साहित्यकारों के प्रति सम्मान करने तथा अपने गौरव समझने की क्षमता उत्पन्न होगी जिससे समूची राष्ट्रीयता के बिखरे हुए सूत्र अधिक दृढ़ बन जायेंगे।

मैं चतुर्वेदी जी की इस कृति का स्वागत करता हूँ।

अपनी बात

पाँच वर्ष की लम्बी अवधि के पश्चात् "हिन्दी साहित्य का विकास और कानपुर" पाठकों के सम्मुख रखते हुए मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन कर सका और खेद इस बात का है कि इसे जैसा बनाना चाहता था बना नहीं सका। कारण कुछ खास घटनाएँ और अपनी व्यस्तता। प्रेस में अर्ध मुद्रित अवस्था में दो वर्ष तक पड़े रहने के पश्चात् पुस्तक का मुद्रण कार्य जब पुनः शुरू हुआ तो पाण्डुलिपि का अन्तिम भाग प्रेस से खो जाने के कारण लगभग आठ माह का और विलम्ब हो गया। अंततः अन्तिम भाग को चलताऊ ढंग से लिख कर काम समाप्त करना पड़ा।

पुस्तक का अधिकांश दो ढाई वर्ष पूर्व ही छप जाने और अब प्रकाशित होकर पाठकों तक आने के बीच की अवधि में अनेक उत्तमोत्तम कृतियाँ प्रकाशित होकर आ गईं जिनका उल्लेख भी इस ग्रन्थ में नहीं किया जा सका। ऐसे कृतिकारों में लाला दीवानचन्द, पं० सद्गुरुशरण अवस्थी, श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी, श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विनोद 'रस्तोगी'' कमल शुक्ल, लक्ष्मीचन्द्र बाजपेयी, उमाशंकर, यादवचन्द्र, रामेश्वर एम० ए०, शिव कुमार मिश्र, श्रीनिवासबालाजी हार्डीकर प्रभृति के नाम प्रमुख हैं।

प्रस्तुत पुस्तक, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, हिन्दी साहित्य के सृजन और विकास में कानपुर जनपद ने जो योग दिया तथा समय समय पर हिंदी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का नेतृत्व अथवा अनुवर्ती के रूप में यहाँ के जिन साहित्य साधकों ने कार्य किया, उसका वर्णन और विश्लेषण है। स्वभाव से ही संकुचित दृष्टिकोण न होने के कारण पुस्तक लिखने के पूर्व मेरे मन में यह आशंका उत्पन्न हुई कि इससे स्थानीयतावाद को प्रश्रय तो नहीं मिलेगा? परन्तु पर्याप्त

सोच विचार के पश्चात् मुझे लगा कि सही दृष्टि और स्वस्थ विचार चाहे जितनी छोटी सीमा के अन्दर रखे जायँ, सदैव ही न केवल राष्ट्र प्रत्युत विश्व भर के लिए उपयोगी होते हैं। मैं इस कसौटी पर कहाँ तक खरा उतरा हूँ, यह साहित्य जगत के विचारशील विद्वान ही कह सकते हैं, परन्तु विनम्रता के साथ इतना मैं भी कह सकता हूँ कि मैंने स्थानीय आग्रह के बजाय साहित्य के महत् पक्ष को ही अपना आधार बनाया है तथा पुस्तक की सामग्री ऐतिहासिक महत्व और श्रेष्ठता को लक्ष्य रखकर ही जुटाई है। मैंने यह भी प्रयत्न किया है कि कंकर को शंकर न बनाया जाय और प्रतिभाशाली परन्तु उपेक्षित अथवा तथा कथित आचार्यों के प्रमाद के शिकार अधिकारी साहित्य मनीषियों और उनकी कृतियों पर विशेष प्रकाश डाला जाय।

काल विभाजन अथवा युग निर्धारण इस पुस्तक का क्षेत्र नहीं था अतः इस दिशा में सुझाव रूप में जहाँ तहाँ कुछ कहने के अतिरिक्त अपने पूर्व आचार्यों का ही अनुकरण किया है।

पुस्तक में सम्मिलित किए गए साहित्य सेवियों में उन्हीं को रखा गया है जिनका या तो यह जन्म क्षेत्र है या कार्य क्षेत्र। यद्यपि और भी कुछ ऐसे महान साहित्य सृष्टाओं, जिन्होंने कुछ या कई वर्षों तक कानपुर में रह कर साहित्य सृजन किया है, उनके कृतित्व का आंशिक अधिकारी यह जनपद भी है। ऐसे कृतविदों में महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' मुंशी प्रेमचन्द, सुदर्शन जी, पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आज की पीढ़ी के भी जिन अनेक ख्यातिनामा कलाकारों के साहित्यिक जीवन का निर्माण अथवा विकास यहाँ से हुआ उनमें श्री प्रयागनारायण त्रिपाठी, श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, डा० जगदीश गुप्त. श्री रमानाथ अवस्थी, श्री सुरेन्द्र तिवारी इत्यादि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। सम्पादकाचार्य पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता डा० रामप्रसाद त्रिपाठी और पं० कालिका प्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर'

तो अपनी जन्म अथवा पैतृक भूमि के नाते ही इस क्षेत्र से सम्बन्धित हैं।

पुस्तक लेखन में जहाँ और जिससे जो भी सहायता प्राप्त हुई है उसका उल्लेख यथा स्थान कर दिया गया है और अप्रत्यक्ष रूप में भी जिससे जो कुछ प्राप्त हुआ हो, उसका भी ऋण मैं स्वीकार करता हूँ। पुस्तक में मुख्यतः विक्रमाब्द का प्रयोग हुआ है। जहाँ ईसवी सन का प्रयोग हैं, वहाँ उसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है।

आदरणीय बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा और पूज्य पं० लक्ष्मीकांत जी त्रिपाठी को धन्यवाद देकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा का और अपने प्रति उनके प्रेम का मूल्य कम नहीं करना चाहता। सच तो यह है कि इन्हीं महानुभावों की कृपा से इस पुस्तक का प्रणयन हो सका है। पूज्य त्रिपाठी जी के बहुमूल्य परामर्श और उनका विशाल पुस्तकालय तो मुझे सदैव सुलभ रहा है।

पुस्तक के लिए महापण्डित राहुल जी ने 'दो शब्द' और डाक्टर उदयनारायण जी तिवारी ने प्रस्तावना लिखने की जो कृपा की है, उसके लिए दोनों ही आदरणीय महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

पुस्तक में प्रूफ की अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं, जिनका मुझे बहुत खेद है। स्थानाभाव के कारण शुद्धिपत्र भी नहीं लगाया जा सका।

यद्यपि साहित्य जगत के अधिकारी व्यक्तियों और कृतियों का उल्लेख करने में मैंने पूर्ण सावधानी बरती है और साहित्य-मन्दिर के सभी छोटे बड़े आराधकों की चर्चा बिना किसी भेदभाव के उनके कृतित्व एवं साहित्यिक महत्ता को ध्यान में रखकर की है, फिर भी यह सम्भव है कि अनजाने ही कुछ नाम छूट गए हों और कुछ का ठीक से मूल्यांकन न हो सका हो, परन्तु अपनी विवशता और अज्ञानता को लेकर मैं उन महानुभावों के सम्मुख क्षमा प्रार्थी हूँ। आवश्यक सामग्री प्राप्त करने में मुझे कम कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा है

और इसके भी अनेक कड़वे-मीठे अनुभव हैं, अतः कुछ अधिकारी लोगों पर इच्छा रखते हुए भी मैं उतनी जानकारी प्रस्तुत न कर सका जितनी करना चाहता था। एक बात यह भी, कि पुस्तक की अच्छाइयों का श्रेय मेरे गुरुजन तथा विद्वान मित्रों को और दोषों का पूर्ण दायित्व मेरे ऊपर है। यदि गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में अपने लिए कहूँ तो —

"कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे"

और उन्हीं के शब्दों में ग्रन्थ के लिए कहूँ तो—

भाग छोट अभिलाष बड़, करउँ एक विश्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन मन, खल करिहँहि उपहास॥

अन्त में उन सभी कृपालु मित्रों को, जिन्होंने इस ग्रन्थ के विभिन्न कार्यों में जो कुछ भी सहायता प्रदान की है, धन्यवाद देकर निवेदन करता हूँ कि पुस्तक से यदि हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखकों तथा साहित्य प्रेमी पाठकों का कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा।

अशोक नगर
कानपुर
विजयादशमी विक्रमाब्द २०१४

नरेशचन्द्र चतुर्वेदी

सम्पादकीय-वक्तव्य

अपने पाठकों और संरक्षकों के समक्ष "कानपुर का इतिहास" के इस तीसरे भाग को प्रस्तुत करने में हमें विशेष हर्ष और संतोष का अनुभव हो रहा है। पहले भाग में प्रागैतिहासिक काल से आधु-निक युग तक की संक्षिप्त इतिवृत्ति दी गई है। उसका विद्वानों और जिज्ञासुओं ने अभिनन्दन किया। दूसरा भाग कानपुर-नगर की औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नति का इतिहास है, जिसका प्रकाशन भी इस तीसरे भाग के साथ हो रहा है।

जब हमने अपने जिले और नगर के इतिहास की रूपरेखा बनाई थी, तो यह अच्छी तरह सोच लिया था कि कानपुर का महत्व केवल एक व्यावसायिक और औद्योगिक नगर के ही रूप में नहीं है। जीवन के अनेक क्षेत्रों में इस भूखंड ने भारतीय संस्कृति के कोश की पूर्ति की है हाँ, अन्य नगरों की अपेक्षा इसका सांस्कृतिक विकास विशिष्ट दिशाओं में हुआ है।

इस विकास में कानपुर की साहित्यिक गति विधि का भी अपना स्थान है। यों तो अति प्राचीन काल से गंगा-यमुना के बीच में स्थित इस भूखण्ड में विद्वानों और कवियों का कभी अभाव नहीं रहा। आधुनिक युग में सन् १८५७ की क्रान्ति का यह प्रमुख केन्द्र रहा। उसके बाद औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नति के पथ पर इसकी यात्रा प्रारम्भ हुई। किन्तु इस यात्रा में इसकी साहित्यिक परम्परायें विलुप्त नहीं हुई। मशीन-युग के अग्रसर होने के साथ-साथ अनेक प्रेस खुले और समाचार पत्र प्रकाशित हुए। अनेक स्कूल और कालेज भी यहाँ स्थापित हुए। औद्योगी-करण के साथ-साथ मजदूर-आन्दोलन का भी सूत्रपात हुआ, और श्रमिक-समस्या ने यहाँ की राजनीतिक उथल-पुथल को अग्रसर किया। इस क्षुब्ध वातावरण में; आधुनिक औद्योगीकरण के प्रभाव

में, कानपुर का साहित्यिक विकास स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायण मिश्र के समय से लेकर आज तक हुआ है। मिश्र जी ही हमारी नवीन साहित्यिक परम्पराओं के पिता हैं। इसी नगर के एक बाहरी कोने में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने आधुनिक हिंदी गद्य को खराद कर उसे नवीन युग की आवश्यकताओं के निमित्त उपयुक्त माध्यम बनाया। अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी ने हिंदी की आधुनिक पत्र-कारिता को पक्की बुनियाद पर रखने का कार्य किया। पंडित विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने कहानी-लेखन की नवीन परम्परा को प्रबल और प्रगल्भ बनाया। छायावाद, रहस्यवाद; प्रयोगवाद आदि के विकास में कानपुर का कितना अनुदान है इसका विस्तृत वर्णन श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी द्वारा प्रणीत प्रस्तुत ग्रंथ में दिया हुआ है।

'कानपुर का इतिहास' की योजना किसी संकुचित स्थानीय भावना के पोषण के आधार पर नहीं हुई थी। इस भाग में कानपुर की साहित्यिक प्रगति का वर्णन हिंदी साहित्य की व्यापक धारा के अन्तर्गत ही किया गया है। विशिष्ट वातावरण से प्रभावित यहाँ की साहित्यिक गति-विधि की विवेचना नरेश जी की कुशल लेखनी द्वारा की गई है। उन्होंने प्रतिपाद्य विषय का अथक परिश्रम से अध्ययन किया है और तत्सम्बंधी समस्याओं पर सजग मनन किया है। हम उनके प्रति विशेष प्रकार से आभारी हैं। हमारा सौभाग्य है कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए उनकी सेवायें उपलब्ध हो गईं।

आशा है उनकी इस कृति का विशेष प्रकार से स्वागत किया जायगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस ग्रंथ में प्रकाशित साहित्यकों के सम्बंध में जो धारणायें और मत हैं उनका दायित्व चतुर्वेदी जी का है।

लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

नारायणप्रसाद अरोड़ा

सम्पादक

कानपुर इतिहास समिति

१ नवम्बर १९५७

विषय सूची

विषय		पृष्ठ संख्या

विषय पृष्ठ संख्या

विषय		पृष्ठ संख्या

विषय पृष्ठ संख्या

विषय		पृष्ठ संख्या

हिन्दी साहित्य का विकास

और

कानपुर

प्रवेश

इतिहास का अध्ययन क्यों ?

यदि साहित्य समाज का दर्पण है, तो इतिहास साहित्य और समाज दोनों का।

अतीत सभी को मोहक लगता है। मानव स्वभाव का यह विशेष गुण है कि उसे अपने पूर्व को देखने सुनने, समझने की इच्छा रहती है। वस्तुतः अतीत की ओर देखकर चलने वाला व्यक्ति समाज या राष्ट्र उन्नति के मार्ग पर सुगमता से चलता है।

अतीत की शृंखलाओं को वर्तमान से जोड़कर भविष्य के लिए अध्ययन सामग्री प्रस्तुत कर देना इतिहास का कार्य है। इतिहास के पृष्ठों में मानव समाज के स्वर्णिम और अन्धकारपूर्ण रहस्य की क्रिया और प्रतिक्रिया के ज्वलन्त उदाहरण अंकित होते हैं। इन का अवलोकन करके चलने वाला समाज अपनी गति को रुद्ध नहीं होने देता। अतीत को देख कर वर्तमान अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकता है। अतीत के दोषों का परित्याग करके और गुणों को अपना कर, तथा अधिक विकसित करके सदैव ही वर्तमान सुखद हुआ है और भविष्य उज्ज्वल बना है।

मानव समाज की यह भी विशेषता है कि वह जीवन की गहराई तक जाकर उसके सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी करना चाहता है। जहाँ तक उसकी बुद्धि पहुँच सकती है, यथार्थ को छोड़ कल्पना के यान पर चढ़ कर दूर तक जाता है। इतने पर भी कुछ और जानने की इच्छा उसके मन में शेष ही रहती है। कल्पना को उर्वर बनाने में इतिहास का बड़ा हाथ रहता है क्योंकि अतीत के सुख-दुख भरे चित्र इतिहास के द्वारा प्रत्येक युग में जगमगाते रहते हैं। अतीत के अनेकानेक धूमिल चित्र भी इतिहास अपनी छाती से लगाए रहता है! वह वर्तमान से खेलता और भविष्य का निर्माण करता है। मनुष्य अपनी भौतिक, आध्यात्मिक तथा अन्य सभी प्रकार की उन्नति का लेखा-जोखा इतिहास के द्वारा लगाता है। एक व्यक्ति से लेकर संसार-मात्र के उत्थान-पतन, स्वार्थ और त्याग, वीरता और कायरता तथा उनके कारणों का विशद किन्तु वैज्ञानिक विवेचन इतिहास का विषय है। कालान्तर में यही सब उदाहरण बनकर समाज के सामने आते रहते हैं।

इतिहास और साहित्य

साहित्य और समाज एक दूसरे से भिन्न नहीं किये जा सकते। इन दोनों का सम्बन्ध अटूट और अविच्छेद्य है। समाज की प्रत्येक क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया साहित्य पर अपनी छाप छोड़े बिना नही रहती यही कारण है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। प्रत्येक युग का साहित्य अपने समाज का जीता जागता चित्र होता है।

एक ओर समाज की क्रियाएँ साहित्य को प्रभावित करती हैं; दूसरी ओर समाज का निर्माण भी साहित्य के द्वारा होता है। कोई भी विचार-धारा सब में एक साथ ही प्रवेश नहीं कर पाती क्योंकि इतनी ग्राह्यशक्ति एवं दूरदर्शिता समाज की हर इकाई में नहीं होती जिसके द्वारा वह आने वाली आवश्यकता का विचार करके उसके प्रति पूर्व से ही जागरूक बन सके। फिर भी समाज की इकाई के रूप में कुछ न कुछ ऐसे तत्व-

दर्शी व्यक्ति होते हैं जो भूत के प्रति श्रद्धावान, वर्तमान के प्रति कर्त्तव्य-निष्ठ और भविष्य के प्रति जागरूक रहते हैं। समाज की आवश्यकता और उसकी पूर्ति के लिए चिन्तन करना उनका कार्य होता है। यह कार्य करने वाला होता है साहित्यकार! और इसीलिए साहित्यकार को श्रष्टा ही नहीं द्रष्टा भी कहा जाता है। साहित्यकार अपने युग का नेता होता है। उसके इंगित निर्देश समाज को नई दिशा, नया मोड़, नई विचारधारा प्रदान करते हैं। साहित्य जिस दिशा की ओर संकेत करता है समाज उसकी उपयुक्तता एवं अनुकूलता समझकर उस ओर तीव्र गति से बढ़ने लगता है। कलाकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है, वाणी होता है। उसकी रचनाओं पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में रहता ही है। समाज की दशा का यथा तथ्य चित्रण के अतिरिक्त विकास क्रम की सामग्री भी उसके द्वारा रचित साहित्य में मिलेगी। किसी भी प्रतिनिधि कलाकार की कृतियों का अध्ययन करके हम यह जान सकते हैं कि उस समय का समाज क्या था; कैसा था; और क्यों?

जीवन की एक-एक अनुभूति साहित्य रूपी माला में मनकों की भाँति गूँथ दी जाती है। साहित्य रूपी माला के मनकों पर हाथ रखते हुए जब हम काल-क्रम से आगे बढ़ते हैं तब साहित्य के उस पहलू तक पहुँच जाते हैं जहाँ साहित्य इतिहास का रूप ग्रहण कर लेता है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में:—"साहित्य का इतिहास पुस्तकों, उनके लेखकों और कवियों के उद्भव और विकास की कहानी नहीं है। वह वस्तुतः अनादि काल-प्रवाह में निरन्तर प्रवहमान जीवित मानव-समाज की ही विकास-कथा है। ग्रन्थ और ग्रन्थकार, कवि और काव्य, सम्प्रदाय और उनके आचार्य उस परम शक्तिशाली प्राण-धारा की ओर सिर्फ इशारा भर करते हैं। वे ही मुख्य नहीं हैं। मुख्य है मनुष्य। जो प्राणधारा नाना अनुकूल प्रतिकूल अवस्थाओं से बहती हुई हमारे भीतर प्रवाहित हो रही है उसको समझने के लिए ही हम साहित्य

का इतिहास पढ़ते हैं।" इसके बाद कहना न होगा कि साहित्यिक इतिहास का अध्ययन कितना उपयोगी, स्वाभाविक तथा आवश्यक है।

स्थानीय इतिहास

जलवायु के अनुसार भिन्न-भिन्न भूमि क्षेत्र के निवासियों में भिन्न-भिन्न कार्यशैलियाँ जन्म लेकर अपने स्थानीय अंचलों में सदैव से ही फूलती-फलती रही हैं। मूल श्रोत एक होते हुए भी विकसित होकर वे अलग-अलग रूप में दिखाई पड़ती हैं। भौगोलिक स्थिति के अनुसार समाज में साहित्य, राजनीति, संस्कृति, धर्म इत्यादि विषयों का प्रभाव सभी स्थानों पर एक-सा नहीं पड़ता। कुछ न कुछ घट बढ़ कर वह सभी स्थानों में फैलता है। इस घटा-बढ़ी को देख कर ही स्थानीय स्थिति का बोध किया जा सकता है। इससे मूल विषयों के प्रभाव की अखंडता में सन्देह नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि स्थानीय भिन्नता में भी वस्तु की अभिन्नता निहित है। यह विशेषता स्थानीय गुणविशेष पर निर्भर करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने के लिए राष्ट्र, समाज और व्यक्ति की ओर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। अध्ययन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि हम उस सारी अनेकता का भी अध्ययन करें, जिसका संगठित रूप एकता में परिवर्तित हो जाता है। अनेकत्व का अध्ययन सीमाएँ निर्धारित किए बिना कठिन ही है। असीम को देखने के लिए विकास की सीमा बाँधनी होगी! इस प्रकार का सीमा विभाजन स्थानीयता के रूप में परिवर्तित हो जाता है। सीमित क्षेत्र के निवासियों की प्रकृति कार्य-प्रणाली और प्रायः सभी विषयों के सम्बन्ध में उनकी रुचि का अध्ययन प्रस्तुत करना स्थानीय इतिहास का मुख्य कार्य है इसीलिए स्थानीयता को पाप न समझ कर राष्ट्र के हित में स्वीकार किया गया है।

"योरोप और अमेरिका में स्थानों और नगरों की कौन कहे कस्बों तक के इतिहास लिखे गये हैं। और लिखे जाते हैं। वे बड़े आकर्षक और उपयोगी सिद्ध हुए हैं"

कानपुर के इतिहास की भूमिका में लिखित डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी के उपर्युक्त शब्दों से यह अनुमान किया जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र या समाज का पूर्ण अध्ययन तब तक सम्भव नहीं जब तक उस की तह तक नहीं पहुँचा जायगा। नींव के पत्थर यदि मज़बूत न होंगे तो दिखलाई पड़ने वाला भवन अपने स्थायित्व की सार्थकता सिद्ध नहीं कर सकता। जिस एकात्मकता की ओर हमारी दृष्टि शीघ्र उठ जाती है वह किसी और धातु से न बन कर उन अनेक कणों से निर्मित होती है जिस की ओर हम उपेक्षा से देखते रहते हैं। अनेकत्व की जहाँ इति होती है एकत्व की वहीं आदि। अनेकता जहाँ आकर रुक जाती है एकता वहीं चलने लगती है! एकता मूल है और अनेकता उसकी व्यापकता। प्रारम्भ इकाई से ही होता है। मनुष्य की इकाई जब एकता का रूप गृहण करती है तब उसे समाज और फिर राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है। सिद्धांत प्रचिलित है कि व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। अस्तु; किसी भी समाज या राष्ट्र का विधिवत् अध्ययन करने के लिए नींव की उस गहराई तक जाना होगा जहाँ की सुदृढ़ शिलाओं का आधार लेकर राष्ट्र तथा समाज का विशाल भवन निर्मित किया जाता है। स्थानीय अध्ययन की महत्ता को स्वीकार करने पर भी कुछ लोगों का यह प्रश्न होता है कि आयु प्राप्त करने तथा अनुभव विस्तार हो जाने के बाद स्थानीयता का कोई प्रभाव शेष नहीं रहता। इसका स्पष्टीकरण करते हुये प्रसिद्ध इतिहास शास्त्री पं० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी जी ने अपने स्थानीय इतिहास की महत्ता शीर्षक लेख में लिखा है "बालक जन्म लेने के साथ ही अध्ययन तथा अनुभव प्राप्त करके सीमा विस्तार करने लगता है किन्तु प्रारंभिक प्रभाव कभी उसके मस्तिष्क से विलीन नहीं होने पाते, तथा वे उसके विकास

के साथ मूलतः नष्ट नहीं हो जाते"। आज तो अन्तर्राष्ट्रीयता का नारा लगाना ही उचित समझ कर सीमित का जैसा उपहास किया जा रहा है, वह स्थिति चिंतनीय है। कारण कि यह तो सत्य का गला घोंट कर कृत्रिमता को बलात् स्वीकारना है। अन्तर्राष्ट्रीयता की दुहाई देने वालों को यह तो समझना ही चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाने के पूर्व आदर्श राष्ट्रीयता का होना ज्यादा जरूरी है। इसी प्रकार राष्ट्र के लिये आदर्श प्रादेशिकता तथा स्थानीयता का होना भी बुरा नहीं। सीमित क्षेत्र में ही जब तक हमारी दृष्टि ठीक तरह से काम नहीं करेगी तो वह असीम क्षेत्र में कैसे सफलता प्राप्त कर सकेगी। अधकचरी विशालता से पूर्ण तथा परिपक्व संकुचितता अधिक अच्छी है क्योंकि इससे भ्रांति की आशंका बिलकुल नहीं रह जाएगी। डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी के कथनानुसार "स्थानीय इतिहास की आवश्यकता आधुनिक काल के ही नहीं वरन् भविष्य के इतिहास प्रेमियों को होगी।" स्पष्ट है कि स्थानीय इतिहास की आवश्यकता आज के लिये भले ही न हो पर आने वाले कल के लिये वह अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। विशेषतः अपने देश भारत के लिये जहाँ की ऐतिहासिक सामग्री किंवदंतियों तथा तीर्थ स्थान के पंडे पुजारियों के बही खातों में; जो कुछ भी थोड़ी बहुत मिल सके तो मिले; अन्यथा इस देश की कीर्त कहानी विदेशी इतिहासकारों की मान्यताओं पर निर्भर करती है। इस उच्छिष्ट के बल पर हम अपना मस्तक स्वाभिमान के साथ नहीं उठा सकते क्योंकि हमारे देश के पूज्य चरित्रों का वर्णन करते हुये अधिकांश विदेशी लेखकों ने राजनैतिक दाँव-पेंच के साथ मिथ्या प्रचार का सहारा भी लिया है। किसी-किसी ने तो भारतीय महापुरुषों को डाकू तथा लुटेरों की उपाधि से विभूषित भी किया है। ऐसी ही अनर्गल द्वेष पूर्ण और राजनैतिक चालों से आच्छादित ऐतिहासिक सामग्री का आधार हमारे इतिहास को ग्रहण करना पड़ा है।

देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त विद्वानों का ध्यान इस राष्ट्रीय निर्बलता की ओर गया है और सरकार द्वारा देश का प्रामाणिक इतिहास तैयार कराने की योजना बन कर कार्य भी प्रारम्भ हो गया है।

अतः हम सब का यह कर्तव्य है कि अपने-अपने जनपदों, नगरों, आदि का प्रामाणिक चित्र सामने रख दें ताकि देश की इतिहास रूपी बड़ी इमारत ठीक ढंग से निर्मित हो सके। इतिहास की सीमा भी जीवन की तरह विशाल है। भिन्न-भिन्न पहलुओं पर सोच समझ कर काम करने से ही उसकी विशालता की झलक हमें मिल सकती है। साहित्य जीवन है और इतिहास उसकी प्रति मूर्ति। इसी दृष्टिकोण को लेकर साहित्य के विकास क्रम को देखने का हमने प्रयास किया है।

कानपुर की ऐतिहासि पृष्ठभूमि

आर्य संस्कृति के जिन प्राचीन केन्द्रों ने समूचे देश को प्रभावित किया और जिन का स्मरण करके सहस्राब्दियों के बाद आज भी प्रेरणा ली जाती है उनमें बिठूर का नाम मुख्य है। उत्तर भारत के सांस्कृतिक केन्द्रों में दो ही नाम लिए जा सकते हैं (१) बिठूर (२) काम्पिल्य। बिठूर केन्द्र आचार-विचार प्रधान ही नहीं था अपितु कलात्मक दृष्टि से भी अत्यधिक सम्पन्न था। रामायण काल में इसकी उन्नति चरम-सीमा तक पहुँची थी। संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों का प्रणयन यहाँ हुआ। आचार-विचारों के अतिरिक्त साहित्यिक और सांस्कृतिक नेतृत्व भी बिठूर ने किया जिसका प्रभाव परवर्ती समाज पर व्यापक रूप से सदियों तक बना रहा। कन्नौज का पतन होने पर कानपुर की भूमि अपनी श्री खो बैठी थी। 'कानपुर' नाम का प्राचीनता की दृष्टि से कुछ मूल्य नहीं। उसका इतिहास तो नया है। परन्तु कानपुर जनपद के नाम से जिस भूमि का बोध होता है उसका इतिहास अर्वाचीन नहीं, प्राचीन है।

इस प्रकार कई दृष्टियों से कानपुर को ऐतिहासिक होने का गौरव प्राप्त है। इतिहास में वर्णित अनेकों ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे कानपुर की भूमि और व्यक्तियों का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। देश के सभी आन्दोलनों में कानपुर ने योग दिया है। इतिहास की अनेकों ख्याति-नामाविभूतियों तथा घटनाओं को जन्म देने और अपने अंचल में रखने का सौभाग्य इसे प्राप्त है।

पौराणिक युग की बहुत सी घटनाओं का संबंध इस भूमि से है। आज भी जिले की भूमि में ऐसे चिन्ह प्राप्त हैं जिनके आधार पर यह भूमि तपःपूत ऋषियों की साधना का केन्द्र और पौराणिक पात्रों की क्रीड़ास्थली सिद्ध होती है। महर्षि बाल्मीक का निवास स्थान, जगत-जननी सीता का प्रवास, रघुकुल-कमल-दिवाकर लव-कुश का जन्म शिक्षा-दीक्षा, युद्ध और विजय के अतिरिक्त भगवान रामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की चरण-रज पाने का सौभाग्य भी कानपुर को मिला है। राजा ययाति की राजधानी, महाराज बलि, शुक्राचार्य और भक्त ध्रुव का शासन शृङ्गी ऋषि और महर्षि दुर्वासा का आश्रम वाणासुर की राजधानी तथा द्वापर युग के भगवान वेद व्यास (कृष्ण द्वैपायन) का सम्बन्ध इस भूमि से रहा है। इसके पश्चात् भगवान बुद्ध की चरणरज प्राप्त कर गुप्त काल को आगे ढ़केल कानपुर ने कन्नौज के विराट वैभव को देखा। महाराजा हर्ष के समय में संस्कृति तथा राजनीति का महान केन्द्र बन कर यह सारे देश की श्रद्धा तथा आकर्षण का केन्द्र बना। संस्कृत काव्य साहित्य के उद्भट कालाकार पं० श्री हर्ष ने इसी भूमि पर देवी सरस्वती की साधना की। मुगल शासन में यह राज नीतिक हलचल का क्षेत्र बना। तत्पश्चात् नवाबी शासन को छोड़ कर एक बार कुछ समय के लिये मराठों के शासनाधिकार में आया। इस प्रकार शासन के कई उलट फेर देखने के पश्चात ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तर्गत सन् १८०१ में आ गया और फिर विदेशी दासता की

जंजीरों को तोड़ सारे देश से अंग्रेजी शक्ति को निकाल फेंकने के लिये क्रान्ति के बीज बोकर देश में स्वातन्त्र्य युद्ध की नींव रख दी।

सन् १८५७ के विद्रोह ने कानपुर को देश के लिये आदर्श और विश्व के लिये ऐतिहासिक बना दिया। नानाराव, तात्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई तथा अजीमुल्ला खाँ जैसे वीर, देश भक्त तथा चतुर राजनीतिज्ञ इतिहास के लिये कानपुर की देन है। कम्पनी शासन का अंत हो जाने के बाद का इतिहास कानपुर के औद्योगिक विकास का है। इस क्षेत्र में भी कानपुर ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करके अपने नाम को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पहुँचा दिया। औद्योगिक दृष्टि से इस समय कानपुर अपने देश का तीसरा तथा प्रदेश का प्रथम महा नगर गिना जाता है। स्वराज्य की दूसरी आंधी में गांधी का नेतृत्व स्वीकार करके कानपुर ने अहिंसात्मक आन्दोलन में महत्व पूर्ण योग दिया। लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय जी, लाला लाजपतराय, श्री सुभाषचन्द्र बोस जैसे महापुरुषों के पद पखारने के साथ अमर शहीद पं० राम प्रसाद बिस्मिल, श्री चन्द्रशेखर आजाद और सरदार भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी वीरों की लीला-भूमि रहने का गौरव कानपुर को प्राप्त है।

सन् १९२५ के कांग्रेस महाधिवेशन में श्रीमती सरोजनी नायडू का सभापतित्व स्वीकार करके कानपुर ने भारतीय नारी सम्मान का ऐतिहासिक उदाहरण देश के सामने रक्खा। साम्प्रदायिकता की वेदी पर स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी का बलिदान सारे देश के इतिहास में अद्वितीय घटना है। सनातन धर्म और आर्य समाज के आन्दोलन में कानपुर ने काफी योग दिया है। स्वामी दयानन्द जी महाराज तथा पं० दीनदयालु शर्मा जैसे दिग्गज पंडितों का आगमन भी कानपुर में होता रहा। देव समाज के प्रवर्तक भगवान देवात्मा और स्वामी भास्करानन्द का जन्म भी यहीं हुआ। आर्य समाज और सनातन धर्म आन्दोलनों का सफल परिणाम डी० ए० वी० कालेज, तथा सनातन धर्म कालेज आज भी विद्यमान हैं और विकास शील भी।

राष्ट्रभाषा हिन्दी को कानपुर ने बहुत कुछ दिया है। अकबर के परम सखा राजा बीरबल, लोक-कवि घाघ, रीतिकालीन काव्यधारा के आचार्य चिन्तामणि, मतिराम आदि के अतिरिक्त हिन्दू आन्दोलन के उद्भट गायक महाकवि भूषण को जन्म देने का श्रेय कानपुर को है।

हिन्दी के आधुनिक युग का निर्माण कानपुर ने बड़े मनोयोग से किया है।

सर्वप्रथम हिन्दी पत्र का प्रकाशन अहिन्दीभाषी प्रान्त से प्रकाशित करने वाले पण्डित जुगुलकिशोर शुक्ल कानपुर के ही थे। हिन्दी गद्य के निर्माता और अनन्य भक्त पण्डित प्रतापनारायण मिश्र और उनका "ब्राह्मण" हिन्दी के इतिहास में सदैव ही अमर हैं। हिन्दी के अनन्य सेवक और महारथी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी का 'सरस्वती' सेवा में साधनापूर्ण जीवन इसी भूमि में व्यतीत हुआ। दीन दलितों के पक्ष में राजाओं से टक्कर लेकर 'प्रताप' ने हिन्दी पत्र जगत के लिए ऐतिहासिक आदर्श कदम उठाया। सन १६२० में पण्डित रमाशंकर अवस्थीने 'वर्तमान' प्रकाशित करके हिन्दी दैनिक पत्रों का मार्ग प्रशस्त किया। आधुनिक हिन्दी काव्य की प्राण-प्रतिष्ठा मासिक 'प्रभा' के द्वारा की गई। आज तो कानपुर चतुर्मुखी उन्नति करता हुआ आगे, बहुत आगे बढ़ रहा है। राजनीति, साहित्य, समाज, धर्म, अर्थ सभी ओर वह समान रूप से गतिशील है।

राजनीतिक, औद्योगिक उन्नति के साथ ही इसके द्वारा हिन्दी साहित्य के विकास में सर्वाधिक योग दिया गया है। संपूर्ण हिन्दी साहित्य के विकास की परम्परा पर दृष्टि डालते ही यह स्पष्ट दिखाई पड़ सकता है कि रीतिकाल से लेकर अब तक हिन्दी के प्रत्येक युग को कानपुर से प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है। कानपुर की साहित्य-परंपरा की एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि यहाँ नये को स्वागत और संरक्षण मिला परन्तु पुराने के प्रति कृतघ्न होकर मुँह नहीं फेरा। साहित्य की प्रत्येक नवीन धारा को अभिभूत करने के साथ ही कई युगों को जन्म

देकर उसका नेतृत्व किया और प्राचीन धारा का पोषक ही नहीं स्रष्टा भी रहा। नये पुराने के सामंजस्य का जैसा प्रेमपूर्वक मिलन कानपुर के साहित्य में देखा जाता है वह अन्यत्र नहीं। 'कानपुर' का अपना कोई प्राचीन अस्तित्व नहीं परन्तु जिस दिन से उसका निर्माण हुआ तब से वह सब को योगदान देता है। हिन्दी साहित्य—विशेषतः खड़ी बोली गद्य और पद्य के विकास में कानपुर का योग सराहनीय ही नहीं वरन् अन्यत्तम कहा जायगा।

साहित्य की प्रेरणा

साहित्य शब्द में सहित का भाव निहित है। इसीलिए साहित्य में अहितकारी कार्य तथा आत्म प्रवंचना का कोई स्थान नहीं। जीवन के चरम सत्य का उद्घाटन, उसकी सौन्दर्यरक्षा तथा विकास की ओर सतत जागरुक रहना साहित्य का मुख्य उद्देश्य है। साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन न कभी बना और न बन ही सकता है क्योंकि साहित्य का जन्म तभी होता है जब मानवीय भावनाएं अपनी वैयक्तिक सीमा को लांघ कर समष्टि में समा जाने को आकुल हो उठती हैं। व्यक्ति अपनी अनुभूति को जब समाज की विभूति बनाना चाहता है तब साहित्य का सृजन होता है। प्रकृति और समाज की अनेकानेक अनुभूतियों को हृद्‌गत करके साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा उन्हें और भी सुन्दर बना देता है, तब वही साहित्य कहलाता है। साहित्य अपने लिए ही है ऐसा कहना उस के व्यापकत्व पर कुठाराघात करना है। प्रसिद्ध विचारक अंग्रेजी लेखक श्री हेनरी हडसन ने साहित्य की परिभाषा करते हुए लिखा है :—

"Literature is fundamentally an expression of life through the medium of language."

अर्थात् "साहित्य मौलिक रूप में भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है।" वस्तुतः साहित्य जब पर दुख-कातरता का परित्याग

कर देगा तब वह शुष्क, नीरस, असंवेदनशील और कृत्रिम हो जायगा। साहित्य का कार्य जीवन की सिर्फ अभिव्यक्ति ही नहीं अपितु उसकी असुन्दरता को सुन्दरता में बदल देना भी है।

जिस प्रकार आज साहित्य शब्द का अर्थ समस्त वाङ्मय से लिया जाता है उसी प्रकार संस्कृत में काव्य से। हिन्दी में काव्य का अर्थ है कविता। काव्य की प्राणशक्ति रस है और रस की निष्पत्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि मानव-मन अनुरागी न हो। मनुष्य के भाव जब रस में सराबोर होकर बरबस निकल पड़ते हैं तब वह काव्य हो जाता है। रस ही कविता का मूलाधार है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार "वाक्यं रसात्मकं काव्यं"---रसमय वाक्य ही काव्य है। रस का सम्बन्ध भाव जगत् से है। भावों का उदय वाह्य घटनाओं तथा आन्तरिक क्रियाओं से होता है। भावों का सम्बन्ध केवल वाह्य तक ही सीमित हो, ऐसी बात नहीं, उनका सम्बन्ध भीतर से भी है परन्तु आन्तरिक भावनाओं को तीव्र बनाने की शक्ति बाह्य स्थिति में भी है। भावों की अभिव्यक्ति साहित्य का विषय है और है उनका सीधा सम्बन्ध मानव-जीवन से। चिन्तन शक्ति प्राणियों में मानव को ही प्राप्त है। उसके जीवन की प्रेरणा शक्ति भाव हैं और भावों को जगाने का कार्य वाह्य जगत का है। यद्यपि भाव मन और बुद्धि की क्रिया का परिणाम है परन्तु उसका घनिष्ट सम्बन्ध हृदय से है। भाव-जगत का सम्बन्ध सीधा रस से है और रसोद्रेक घटनाओं पर निर्भर है। मानव के अन्तर में निरन्तर निवास करने वाले भाव घटनाओं से झंकृत होकर रसमय बन कर जब निकलने के लिए विकल हो उठते हैं तभी कविता का जन्म होता है। कविता का उद्देश्य आनन्द है इसका यह अर्थ नहीं कि अपनी ही रचना से स्वयं ही आनन्द लिया जाय। यह कविता की सफलता की कसौटी नहीं क्योंकि "निज कवित्त केहि लाग न नीका"। रसमय वाक्य ही तक यदि काव्य सीमित होता तो उसे हम एक पक्षीय मान लेते। किन्तु ऐसा नहीं है वस्तुतः मानव-जीवन की सरस अभिव्यक्ति के साथ ही लोकोन्नति

का दृष्टिकोण प्रदान करने वाली वस्तु का नाम ही "कविता" कहलाने का अधिकारी है।

आदर्श कविता की व्याख्या करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा है:—

'जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं, सो स्रम वाद बाल कवि करहीं।'

अस्तु, कविता का जन्म तभी हुआ जब किसी अनुरागी चित्त की चेतना किसी की संवेदना से चोट खाकर तड़प उठी। भारतीय काव्य का जन्म तो इसी आधार पर माना जाता है।

संवेदना साहित्य का प्रमुख पक्ष है। इसी आधार को लेकर आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। अन्य आचार्यों के मतानुसार ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति के सिद्धान्त पर्याप्त अंशों तक प्रामाणिक होते हुए भी रस की कोटि तक नहीं पहुँच सके।

संवेदना का सम्बन्ध करुणा से है और सचमुच करुण रस का प्रभाव जितना शीघ्र पड़ता है उतना अन्य रसों का नहीं। कविवर सुमित्रा नन्दन पंत के शब्दों में:—

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान॥"

निश्चय ही पन्त जी की कवि और कविता विषयक कल्पना भावभूमि पर सबसे अधिक खरी उतरती है। भारतीय काव्य साहित्य के प्रथम प्रणेता महर्षि बाल्मीक का निम्नलिखित प्रथम श्लोक परदुःखानुभूति से व्यथित होकर ही निकला था :—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥

महर्षि की मनोव्यथा अंतर में न रह बाहर निकल पड़ी। यह व्यथा-मूलक श्लोक ही हमारे काव्य की प्रथम प्रेरणा है। रस परिपाक का परिणाम हुआ महर्षि की रामायण ! भारतीय काव्यकला की अमरकृति !!

भावपक्ष और कलापक्ष

पहले लिखा जा चुका है कि इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने ध्वनि, अलंकार वक्रोक्ति आदि को भी काव्य की आत्मा स्वीकार किया परन्तु वह रस की कोटि तक नहीं पहुँच सकी। बाद के आचार्यों ने कविता के दोनों पक्षों को स्वीकार किया और उसका विभाजन भाव पक्ष और कला पक्ष के नाम से किया। भाव पक्ष को लेकर ही यदि कविता का निर्माण होता तो कवि को युग और जीवन का द्रष्टा और सृष्टा न कहा जाता जोकि उसका आवश्यक धर्म है। किसी भी कवि की रचना का अध्ययन करते हुए, उसकी स्वाभाविक प्रतिभा ही नहीं बल्कि उसके सांसारिक ज्ञान को भी देखा जाता है। काव्य रचना के पीछे जो भावना होती है वह 'स्व' से 'पर' की ओर होती है। एक ओर अन्तः पक्ष कुछ कहने के लिए विवश करता है दूसरी ओर बाह्य पक्ष यह सोचने की आवश्यकता ला देता है कि क्या कहा जाय और कैसे? विषय, छन्द, अलंकार, शैली, वातावरण आदि उपादान कलापक्ष के हैं। कल्पना को मौमिक बनाने के लिये कलापक्ष की आवश्यकता अपेक्षित है। इसका यह अर्थ नहीं कि कल्पना का स्थान कला से गौण है। यह सोचना भी कविता के लिए अनुचित है क्योंकि काव्य क्षेत्र का सत्य प्रत्यक्ष तक सीमित न होकर परोक्ष तक अपनी सत्ता रखता है। कवि की कल्पना असम्भव को सम्भव में परिणत कर देने वाली होती है।

आन्तरिक अनुभूतियाँ जो सांसारिक विभूति का रूप ग्रहण करती हैं उनका जन्म बाह्य परिस्थितियों से होता है। समाज और उसके कार्य, वातावरण आदि हमारी राग तंत्री के तारों को झंकृत करते हैं इससे अन्तःवासी रस प्लावित होकर घटना की शुष्कता को सरसता में बदल

देते हैं। रसोद्रेक होने से भावों की श्रृंखला बढ़ने लगती है और यही भाव काव्य के रूप में समाज की विभूति बन जाते हैं।

अनुभूति मिथ्या की नहीं होती, उसका सम्बन्ध सत्य से है। काव्य के सत्य की सीमा चर्मचक्षुओं से बहुत आगे तक है। यद्यपि कविता जीवन से अलग की वस्तु नहीं फिर भी उसे जीवन की अनुकृति नहीं कहा जा सकता। इसी भेद को समझने के लिये कविता को दो पक्षों में बांट दिया जाता है। काव्य का अन्तःपक्ष हृदय है और बाह्य पक्ष बुद्धि। हृदय और बुद्धि के असामञ्जस्य में जैसे मनुष्य का मूल्य कुछ नहीं वैसे ही काव्य-पुरुष, कल्पना और सत्य के सम्मिश्रण बिना निर्जीव और निष्फल होता है।

प्रथम अध्याय

संस्कृत साहित्य

संस्कृत साहित्य भारतीय जीवन-धारा के मूल में प्रतिष्ठित है। कितने ही युग परिवर्तन हो जाने पर भी भारतीय साहित्य-धारा की गति रुद्ध होकर सूखी नहीं, उसका सब से बड़ा कारण संस्कृत का बहुमूल्य और अतुल साहित्य के रूप में चिंतन और दर्शन ही है। संस्कृत काव्य की प्राणप्रतिष्ठा वाल्मीकि से मानी जाती है। परन्तु पद्यात्मक आख्यान उस के पूर्व भी रचे गये हैं। संस्कृत साहित्य की प्राचीनता में अब किसी को सन्देह भी नहीं रह गया है। विश्व की समस्त प्राचीन भाषाओं तथा उनके साहित्य का अध्ययन कर के यह जाना जा सकता है कि संस्कृत भाषा और उसके साहित्य की महत्ता क्या है? प्राचीनता और सम्पन्नता की दृष्टि से विश्व-साहित्य में वह बेजोड़ है।

रामायण और महाभारत से तो संस्कृत काव्य की अखण्ड परम्परा की नींव पड़ी थी। इसके पूर्व का साहित्य-वेद, शास्त्र, स्मृति और ब्राह्मण ग्रंथों में सुरक्षित है। आचार विचार, जीवन दर्शन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचना सहस्रों वर्ष पूर्व के इस साहित्य में आज भी देखी जा सकती है। ताड़पत्र, भोजपत्र, ताम्रपत्र तथा शिला आदि पर उत्कीर्ण साहित्य की महत्ता को समझाने की आवश्यकता नहीं है।

मानव जीवन के विकास-क्रम की झलक संस्कृत साहित्य के आदिकाल से लेकर अब तक के भारतीय साहित्य में देखी जा सकती है।

अपने श्रम और कल्पना के बल पर मनुष्य के चरण सदैव आगे ही बढ़ते रहे हैं। साहित्य में मानव की गति का दर्शन होता है। यदि प्राचीन युग के भारतीयों की विकसित बुद्धि और कल्पनाशक्ति का अनुमान करना है तो निश्चय ही संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त दूसरा माध्यम नहीं। वेद, वेदांग का साहित्य; धर्म प्रधान होने के कारण कलात्मक भावना की तुष्टि नहीं कर सकता था। और मानव की विकसित बुद्धि कला की उपेक्षा कर के मनुष्य को सरस भी नहीं रख सकती थी। अतः संस्कृत काव्य साहित्य की प्रतिष्ठा तभी हुई जब भारतीय चिन्तनशक्ति काफी विकसित होकर व्यष्टि से समष्टि की ओर ही नहीं बल्कि प्राणी मात्र की ओर उन्मुख हुई।

महर्षि वाल्मीकि और रामायण

काल और आश्रम—आदि कवि वाल्मीकि का समय निर्धारण करना कठिन है। इनके सम्बन्ध में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। निवास-स्थान को लेकर विद्वानों में काफी वाद-विवाद भी हो चुका है। यह तो सर्वमान्य है कि संस्कृत काव्य के प्रथम प्रणेता यही मुनिवर हैं। इनके निवास-स्थान के सम्बन्ध में अब तक की खोज के अनुसार अधिकांश विद्वान इस राय से सहमत हो चुके हैं कि महर्षि के अन्य आश्रम भी होंगे परन्तु बिठूर आश्रम इन्हीं का है। इसी आश्रम में जब मुनिवर रहते थे तभी श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा परित्यक्ता सीता जी को बन में

छोड़ने के लिए लक्ष्मण यहाँ लाये थे। सीता का त्याग इसी बन में हुआ इस विषय में विद्वानों में मतैक्य न होने का कारण वाल्मीकि रामायण का निम्न श्लोक है; जिसमें रामचन्द्र द्वारा लक्ष्मण को सीता-निर्वासन की आज्ञा दी गई है:—

"गंगायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः
× × × ×
आश्रमो दिव्यसंकाशस्तमसातीरमाश्रितः
तत्रैतां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन"

(उ० सर्ग ४५ सं० १७, १८)

उपर्युक्त श्लोक में वाल्मीकि आश्रम गंगा के पार तमसा के तीर पर कहा गया है। तमसा को लेकर ही बिठूर के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया जाता है परन्तु ध्यान रहे कि इस के बाद रामायण में सीता-निर्वासन तथा बाद को भी जहाँ कहीं वाल्मीकि आश्रम का प्रसंग आया है तमसा का नाम नहीं आया। रामचन्द्र की आज्ञा पाकर लक्ष्मण सीता से कहते हैं कि मैं राजा की आज्ञा से गंगा-तीर-वासी मुनियों के आश्रम में आप को पहुँचाऊँगा। इसके पश्चात लक्ष्मण सीता को रथ में बिठा एक दिवस चल कर संध्या के समय गोमती के किनारे विश्राम करते हैं। रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन प्रातःकाल लक्ष्मण ने सारथी को शीघ्र रथ जोतने की आज्ञा देकर कहा कि "मैं आज गंगा का जल शीश पर चढ़ाऊँगा":—

प्रभाते पुनरुत्थाय सौमित्रिः, सूतमब्रवीत्।
योजयस्व रथंशीघ्रमद्य भागीरथी जलम्॥

(बा० उ० सर्ग ४६, श्लोक २०)

तत्पश्चात आधे दिन चल कर गंगा के तीर पहुँचे। गंगा को देख कर लक्ष्मण रो पड़े:—

अथार्धे दिवसं गत्वा भागीरथ्या जलाशयम्।
निरीक्ष्य लक्ष्मणोदीनः प्ररुरोद महास्वनः॥

(बा० उ० सर्ग ४६, २४)

"लक्ष्मण को रोते देख सीता कहती हैं कि इस समय तुम्हारे रोने का क्या कारण है, मैं तो बहुत दिनों से गंगा के तीर आकर यहाँ के महर्षियों का दर्शन करना चाहती थी अब जब वह हर्ष का समय उपस्थित है तब विषाद क्यों? यह सुन कर लक्ष्मण ने मल्लाहों को बुलाकर पार पहुँचाने की आज्ञा दी।" (श्लोक सं० २५—३३)

गंगा पार करके लक्ष्मण ने सीता को उनके निर्वासन की आज्ञा सुनाई और कहा "यहीं गंगा के निकट ब्रह्मर्षियों का आश्रम है यह पवित्र और स्मरणीय है। तुम दुखी मत हो यहाँ मेरे पिता (दशरथ) के मित्र यशस्वी मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकि जी का आश्रम है उन महात्मा के आश्रम में जाकर तुम सुख पूर्वक रहो:—

तदेतज्जाह्नवी तीरे ब्रह्मर्षिणां तपोवनम्

× × ×

पुण्यं च रमणीयं च मा विषादं कृथः शुभे।
राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनि पुङ्गवः॥
सखा परम को विप्रो बाल्मीकिः सुमहायशः।
पादच्छाया मुपागम्य सुखमस्य महात्मनः॥
(४७—१५ १६, १७)

"लक्ष्मण के चले जाने के पश्चात सीता विलाप करने लगीं। सीता को रोती देख मुनि-कुमारों ने महर्षि बाल्मीकि को सूचना दी कि गंगा के निकट अनाथ एक देवी शोक से रो रही है। सूचना पाते ही महर्षि बाल्मीकि सीता के पास पहुँचे और कहा "दशरथ-बधू, राम की महारानी और जनक की पुत्री, पतिव्रता सीते तुम्हारा स्वागत है। तुम दुखी मत हो, तुम पवित्र हो। चलो मेरे साथ, तुम्हें यहाँ कोई कष्ट न होगा। यहाँ मुनि पत्नियाँ तुम्हें सन्तान की भाँति पालेंगी। महर्षि के मधुर वचनों से सीता को शान्ति मिली और उन्होंने उनकी बात स्वीकार

कर ली। वाल्मीकि जी सीता को साथ लिए ऋषि पत्नियों के आश्रम की ओर चले। महर्षि को आते देख ऋषि पत्नियों ने कहा "मुनिवर आप का स्वागत है। बहुत दिनों बाद आप का आगमन हुआ है। हम आप को प्रणाम करती हैं। आज्ञा कीजिए, हम क्या करें :—

स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठचिरस्यागमनं च ते।
अभिवादयामस्त्वां सर्वा उच्यतां किं च कुर्महे॥

महर्षि बाल्मीकि ने उन्हें सीता का परिचय देकर सुख पूर्वक रखने की आज्ञा दी। तत्पश्चात शिष्यों सहित वे अपने आश्रम को लौट आए। गंगा के पार जा कर दुखी लक्ष्मण सुमन्त्र के साथ खड़े-खड़े यह सब दृश्य देखते रहे। सुमन्त्र के समझाने के पश्चात लक्ष्मण अयोध्या को लौटे। रात भर केशिनी नदी के किनारे विश्राम कर प्रातः चल कर दोपहर होते-होते अयोध्या जा पहुँचे। अयोध्या पहुँच कर लक्ष्मण रामचन्द्र से कहते हैं कि आप की आज्ञानुसार सीता को मैं गंगा के पार बाल्मीकि मुनि के आश्रम में छोड़ आया हूँ।"

उपर्युक्त उद्धरणों में वाल्मीकि आश्रम के साथ गङ्गा, गोमती तथा केशिनी नदी का नाम आया है। तमसा का नाम केवल रामचन्द्रजी की आज्ञा के अतिरिक्त कहीं नहीं आता जब कि तमसा को लेकर ही चित्रकूट आदि स्थानों में बाल्मीकि के आश्रम की कल्पना की गई है। उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि अयोध्या से वाल्मीकि आश्रम तक आने में डेढ़ दिन लगा। रात्रि का विश्राम गोमती नदी के तट पर किया। यह मार्ग अयोध्या से लखनऊ और लखनऊ से बिठूर के अतिरिक्त और कोई भी नहीं हो सकता। बिठूर के अलावा इस भूमि के आस-पास और कोई ऐसा स्थान भी नहीं है जो प्राचीन काल में ऋषियों का केन्द्र रहा हो। बिठूर स्थित वर्तमान वाल्मीकि-आश्रम गङ्गा के निकट ही है अतः ऋषि कुमारों ने वाल्मीकि जी को ही सर्वप्रथम सीता की सूचना दी होगी। क्योंकि वे ही उस स्थान में सर्वपूज्य थे। सीता को साथ

लेकर आराम से रखवाने के लिये महर्षि को ऋषि-पत्नियों के आश्रम जाना पड़ा जहाँ उनका स्वागत करते हुए ऋषि पत्नियों ने कहा "आप बहुत दिनों बाद पधारे हैं हमारा आपको प्रणाम है। आज्ञा कीजिये हम क्या करें" इससे दो बातें सामने आती हैं एक तो यह कि महर्षि वाल्मीकि हाल ही में बिठूर आश्रम पधारे होंगे दूसरा यह कि बाल्मीकि आश्रम उन अन्य आश्रमों से दूर रहा होगा जहाँ कि ऋषि लोग सपत्नीक रहते थे।

दूसरा पक्ष ही अधिक संगत जान पड़ता है। तमसा का जहाँ तक सम्बन्ध है सो इस नाम की कोई नदी या तो उस काल में यही कहीं रही होगी या रामचन्द्र को आज्ञा देते हुए यह न ज्ञात रहा होगा कि महर्षि गङ्गापार बिठूर आश्रम में हैं।

वाल्मीकि रामायण से बिठूर आश्रम के अतिरिक्त दूसरी जगह सिद्ध नहीं होती। यद्यपि बाल्मीकि जी के अन्य आश्रम भी रहे होंगे तथापि सीता का निर्वासन, आदि कवि की रामायण-रचना का सम्बन्ध पूर्णतः बिठूर आश्रम से ही है। इस आधार की पुष्टि रामायण की एक दूसरी घटना से भी होती है। "मथुरा में लवणासुर नामक दानव सारी प्रजा को पीड़ित किए था। उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर ऋषियों ने रामचन्द्र से उसके बध के लिये प्रार्थना की। रामने शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि वे मथुरा जाकर लवणासुर का बध करके प्रजा में सुख-शान्ति की स्थापना करें। शत्रुघ्न ने पहले अपनी सेना भेजी और फिर स्वयं मथुरा की यात्रा की। मथुरा जाते हुए मार्ग में एक रात्रि वे बाल्मीकि आश्रम में ठहरे। जिस रात शत्रुघ्न वाल्मीकि-आश्रम में ठहरे हुए थे उसी रात्रि को सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। जब यह सूचना वाल्मीकि को दी गई तो उन्होंने बालकों के रक्षार्थ विधि करते हुए कुल, माता-पिता, गोत्रादि का वर्णन किया, जिसे सुनकर शत्रुघ्न को सीता का यहाँ होना तथा दो पुत्रों को जन्म देना ज्ञात हुआ। इस पर शत्रुघ्न सीता की पर्णशाला में जाकर उनसे मिले और प्रसन्नता प्रकट की (सर्ग ६६ श्लोक १–१३ तक)

"लवणासुर को मार, बारह वर्ष तक मथुरा में रह कर शत्रुघ्न अयोध्या लौटे। लौटते हुए भी शत्रुघ्न ने एक दिन वाल्मीकि-आश्रम में बिताया। इस बार उन्होंने रामचरित-काव्य का स्वर ताल युक्त गान सुना (सर्ग ७१, श्लोक १४-१५)

स्पष्ट है कि अयोध्या से मथुरा का मार्ग बिठूर के अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता। उपर्युक्त उद्धरण से यह भी परिलक्षित होता है कि रामायण की रचना महर्षि वाल्मीकि ने लव-कुश के जन्म के पश्चात की क्योंकि यदि इस के पूर्व रचना हो चुकी होती तो उसका गान या चर्चा शत्रुघ्न को पहले भी सुनने को मिलती।

जीवन और चित्तवृत्ति—कहा जाता है कि वाल्मीकि पहले लूट मार करके अपना जीवन व्यतीत करते थे। महर्षि नारद के द्वारा उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और वे भगवद्भक्ति में लीन हो गए। विद्याहीन होने के कारण राम-नाम का शुद्ध उच्चारण भी न कर पाते थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा भी है:—

उलटा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

तपस्या में यह यहाँ तक लीन हुए कि इनके ऊपर मिट्टी का ढेर जम गया। उसमें वल्मीकि (चीटियों के आने जाने का मार्ग) बन गया इस से इनका नाम वाल्मीकि पड़ा।

रामायण रचना की प्रेरणा के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि महर्षि अपने शिष्यों सहित गङ्गा-स्नान करके लौट रहे थे। मार्ग में एक वृक्ष की डाल पर बैठा क्रौंच पक्षी का जोड़ा क्रीड़ा कर रहा था कि एक बहेलिया ने तीर चला कर क्रौंच नर की हत्या कर दी। व्यथा से पीड़ित क्रौंच नर की चीत्कार और वियोग से आहत क्रौंच-मादा के करुण क्रन्दन ने महर्षि के हृदय में असह्य वेदना एवं करुणा का संचार

कर दिया, परिणाम स्वरूप वधिक के श्राप रूप में महर्षि के मुख से निम्न लिखित श्लोक निकल पड़ा:—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीसमः
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधी काम मोहितम्!

तत्पश्चात् महर्षि को इस सुगठित रसमय वाक्य पर विचार करते-करते आश्चर्य के साथ अपार आनन्द भी मिला। अतः इसी छन्द में रामगुण गान किया जो बाल्मीकि-रामायण के नाम से प्रसिद्ध है।

रामायण और उसकी महत्ता—वाल्मीकीय रामायण को प्रथम महाकाव्य कहा जाता है। इसमें रामचरित का साङ्गोपांग वर्णन करके महर्षि ने अपनी उर्वर कल्पना-शक्ति और अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। महाकाव्य के रूप में ही नहीं, प्रत्युत ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का बड़ा मूल्य है। लोक कल्याणकारी भावनाओं के साथ कला का बड़ी उत्तमता के साथ इसमें सामञ्जस्य हुआ है। कविता के सभी उपादानों का सुन्दर समावेश इस ग्रन्थ में मिलता है। काव्य की परिभाषा करते हुए आचार्यों ने रस, और अलंकार इत्यादि को भिन्न भिन्न प्रकार से प्रधानता दी है। रस और अलंकार दोनों ही काव्य के लिये निसर्गतः अपेक्षित हैं। रामायण में इन दोनों ही का सामञ्जस्य बड़ी कुशलता के साथ किया गया है।

हिन्दू समाज की सांस्कृतिक चेतना को विकसित करने में इस ग्रन्थ का बहुत बड़ा हाथ है। परवर्ती कलाकारों की रचनाओं पर इसकी छाप स्पष्ट मिलती है। महाभारत जैसे सुविख्यात ग्रन्थ के अतिरिक्त पुराण तथा संस्कृत साहित्य के अन्यतम कलाकार भास, कालिदास, अश्वघोष, जैन साधु विमलसूरि, आचार्य भवभूति आदि विद्वानों ने इससे प्रेरणा लेकर अपनी रचनाएँ कीं। प्राचीन हिन्दी कवियों में गोस्वामी तुलसीदास; आधुनिक कवियों में श्री मैथिलीशरण गुप्त

और श्री हरिऔध जी इत्यादि ने अपनी रचनाओं में इससे बहुत कुछ प्रेरणा ली है। सात कांडों में विभक्त २४,००० श्लोकों का यह एक वृहत् ग्रन्थ है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जिन आदर्श चरित्रों की सृष्टि अपने रामचरित मानस में की, उनका मूल-स्वरूप हमें इस ग्रन्थ में देखने को मिल सकता है। वाल्मीकीय रामायण और तुलसी के मानस में अत्यधिक साम्य होते हुए भी एक मौलिक अन्तर है। गोस्वामी जी के मानस में आदर्शवाद का उल्लंघन प्रायः नहीं हुआ और इसी को काव्य का दोष मानकर कुछ आलोचकों ने उनकी खरी आलोचना करते हुए अपनी विचित्र सम्मतयाँ भी प्रकट की हैं। गोस्वामी जी को बार-बार पाठकों को राम के अवतार होने की याद दिलानी पड़ती है। ऐसे स्थानों पर कवित्त चमत्कार में अवश्य ही कमी आई है। बाल्मीकीय रामायण में यह दोष नहीं है। इसमें कथा-क्रम स्वाभाविक, प्रवाहयुक्त तथा मर्यादित ढंग से चला है। पात्रों का चरित्र-चित्रण बड़ा सफल हुआ है। सभी पात्र अपने-अपने स्थान पर उपयुक्त और अनिवार्य प्रतीत होते हैं जबकि परवर्ती कवियों में यह स्वाभाविकता कम पाई जाती है। वाल्मीकि ने काव्य का जो स्वरूप दिया, उसको आधार मानकर सदियों तक अनेक रचनाएँ होती रहीं। इस ग्रन्थ की एक प्रमुख विशेषता भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय भी है। किन्तु ज्यों-ज्यों साहित्य वेलि पल्लवित होती गई, त्यों-त्यों इस पद्धति में भी परिवर्तन होता गया। कालिदास के पूर्व तक यह परम्परा अविच्छिन्न ढंग से चलती रही। कालिदास की रचनाओं में कलापक्ष की प्रबलता स्पष्ट रूप से सामने आई और काव्य की यह नई पद्धति महाकवि बाण, भवभूति, हर्ष इत्यादि साहित्य-मनीषियों में अपनी चरम स्थिति तक पहुँची।

संस्कृत साहित्य में कालिदास उपमाओं के लिये अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। किंतु उपमाओं की कमी वाल्मीकि रामायण में भी नहीं है। इसमें उपमाओं की बाढ़ भले ही न हो किंतु उपयुक्त स्थानों पर जिन उपमाओं

की संयोजना की गई है, उनका चमत्कार देखते ही बनता है। कैकेयी का कोप-भवन में जाकर निश्चेष्ट लेटने का चित्रण करते हुएः—

असंस्कृतामास्तरणेन मेदिनीं, तदाधि शिश्ये पतितेव किन्नरी

× × × ×

उदीर्णसंरम्भतमोव्रतानना तदावमुक्तोसम माल्यभूषणा
नरेन्द्रपत्नी विमनाबभूव सा तमोवृताद्यौरिवमग्नतारिका

वाल्मीकि का प्रकृति वर्णन तो श्रेष्ठ है ही। युद्ध का वर्णन भी बड़ा ही सजीव और ओजपूर्ण है।

वेदव्यास और महाभारत

जन्म—व्यास जी का जन्म वर्तमान कालपी जिला जालौन के निकट हुआ था। उनका नाम था 'कृष्ण' परन्तु द्वावा में जन्म लेने के कारण वे द्वैपायन कहलाते थे। व्यास उनकी उपाधि थी। इनके जन्म तथा अवसान का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता जिससे ठीक निर्णय किया जा सके। महाभारत का युद्ध इनके सामने ही हुआ था। महाभारत की घटनाओं तथा उनके घटित होने का कारण आदि पर प्रकाश डालने के लिए इन्होंने महाकाव्य की रचना की।

नाम, रचना काल और स्वरूप—संस्कृत साहित्याकाश में रामायण और महाभारत सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशमान हैं। विद्वानों में इस सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है कि रामायण की रचना पहले हुई या महाभारत की। परन्तु जो अन्तःसाक्षियाँ मिलती हैं उनसे अनुमान किया जाता है कि महाभारत, रामायण के बाद लिखा गया। व्यास प्रणीत 'महाभारत' का मूल स्वरूप क्या था

यह कहना बड़ा कठिन है। किन्तु इसका वर्तमान स्वरूप आज से दो हजार वर्ष पूर्व का ही है। कहा जाता है कि महाभारत कई हाथों की रचना है। यह संभव भी है, कारण इसी ग्रन्थ से पता चलता है कि व्यास ने सर्वप्रथम महाभारत की कथा अपने शिष्य वैशम्पायन को सुनाई और वैशम्पायन ने जनमेजय को। तीसरी बार शौनक जी ने ऋषियों के प्रश्नों के उत्तर-स्वरूप इस कथा को सुनाया। इसका कथा सूत्र प्रश्नोत्तरी में बढ़ता गया है। यह असम्भव नहीं कि व्यासजी के पश्चात जब-जब उसका श्रवण तथा मनन किया गया तब-तब अपेक्षित सामग्री का संवर्द्धन; इसमें उन महर्षियों के द्वारा किया जाता रहा हो।

महाभारत को प्राचीन संस्कृति का विश्वकोष कहा जाता है। प्रचलित स्वरूप इसका एक लक्ष श्लोकों का है। इसकी प्राचीनता और महत्ता पर विचार करते हुए जब अन्य प्राचीन सामग्री पर दृष्टि डाली जाती है तो इस नाम (महाभारत) का कोई उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवतः इसका नाम व्यास जी ने 'जय' रक्खा था :—

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो 'जय' मुदीरयेत॥ और—
× × × ×
'जयोनामेति हासोऽयम्' आदि।

अपनी रचना के समय यह इतिहास ग्रन्थ ही रहा होगा परन्तु बाद को इसमें समयानुसार हिन्दू धर्म के भिन्न-भिन्न तत्वों के निरूपण होते रहने से कथा में तो परिवर्तन हुआ ही साथ ही इसकी ऐतिहासिकता दब गई और यह उपदेशात्मक ग्रन्थ बन कर रह गया। फिर भी अपनी सत्ता और विशेषता के लिये वह सारे संसार में प्रसिद्ध है। ज्ञान की दृष्टि से, कथा की दृष्टि से, कल्पना और काव्य चमत्कार आदि की दृष्टि से महाभारत अद्वितीय है। गीता के रूप में उसका निचोड़ आज भी सारे विश्व के लिए प्रकाशपुञ्ज का ही काम करता है।

निःसन्देह बाल्मीकि रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य के प्रेरणास्रोत कहे जा सकते हैं क्योंकि परवर्ती कवियों ने; इनमें फिर वे चाहे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश या हिन्दी के रहे हों या भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के, बहुत कुछ लिया है। भारतीय साहित्य निर्माताओं के लिये यह दोनों ही ग्रन्थ अब भी प्रकाशस्तम्भ का काम करते आ रहे हैं और आज भी इनका मूल्य कम नहीं है।

उत्तर कालीन संस्कृत साहित्य

महाभारत निर्माण के पश्चात् संस्कृत भाषा में एक गतिरोध सा जान पड़ता है। इसका कारण—विदेशी हमले और देश के भीतर का धर्म संघर्ष जान पड़ता है। संस्कृत भाषा की जनसाधारण से दूरी उसकी क्लिष्टता-ही हो सकती थी। ईसा शताब्दी के प्रारम्भकाल में संस्कृत प्रचार कार्य में गति दिखाई देती है। इस समय के कालिदास के समकालीन प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष ने भी अपनी रचनाएँ संस्कृत भाषा में की थीं। इस युग के शिलालेखों पर संस्कृत का जो स्वरूप मिलता है वह उसकी संपन्नता की साक्षी हैं। कालिदास की कलात्मक शैली ने संस्कृत साहित्य पर अपना व्यापक प्रभाव डाला और प्रायः सभी मुख्य-मुख्य कलाकारों की रचनाओं पर उनकी कलात्मकता की छाप है। कालिदास की परम्परा ने अश्वघोष पर भी प्रभाव डाला और पश्चात् भारवि, माघ-श्रीहर्ष आदि साहित्य सृजनकर्ताओं की कला से अलंकृत होकर वह अपनी चरम सीमा तक जा पहुँची। संस्कृत की यही क्लिष्टता उसका जनसम्पर्क खो बैठी और जनसाधारण की रुचि प्राकृत और अपभ्रंश की ओर मुड़ी। भाषा सरलता तो हो गई परन्तु कला की शृंगारिकता जो संस्कृत में चल रही थी

वहीं उनकी भी निधि बनी। विषयान्तर न करके हम यहाँ कन्नौज की सांस्कृतिक महत्ता का परिचय दे रहे हैं।

कन्नौज के राज्याश्रय में प्राकृत और संस्कृत दोनों को ही संरक्षण मिल रहा था। प्राकृत का प्रसिद्ध कवि वाक्पति राज (८वीं सदी) ने गउड़वह (गौड़वध) नामक काव्य की रचना की थी। यह कन्नौज के तत्कालीन महाराज यशोबर्मा के आश्रय में रहता था। यशोबर्मा के द्वारा गौड़ नरेश का पराजित होने का वर्णन इसमें किया गया है। कन्नौज के महाराज हर्षवर्धन (६०६-६४८ ई०) ने भी 'प्रियदर्शिका' 'रत्नावली' तथा 'नागानन्द' की रचना की। श्री बाणभट्ट के अतिरिक्त मुद्राराक्षस का रचयिता-विशाख दत्त और भट्ट नारायण (वेणी संहार के रचयिता) ७वीं शताब्दी में कन्नौज के राज्याश्रित थे।

श्री हर्ष—(११५०-१२००ई०) कन्नौज के राजा जयचन्द के आश्रित थे। इनका सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'नैषधीय चरितम्' २२ सर्गों की श्रेष्ठ रचना है। सुप्रसिद्ध संस्कृत टीका कार मल्लिनाथ ने इस ग्रन्थ की टीका भी की है। इसके अलावा अन्य भी छोटे बड़े कलाकारों का सम्मान कन्नौज के राजा द्वारा होता था परन्तु श्री हर्ष के समान गौरव अन्य लोगों को नहीं मिला। श्री हर्ष ने अपने नैषधीयचरितम् में जो गर्वोक्तियाँ लिखीं हैं वे उसकी महत्वपूर्ण स्थिति की ही द्योतक हैं।

श्री हर्ष संस्कृत साहित्य की ख्याति के शिखर पर चढ़नेवाला अंतिम महाकवि है। इसे जितना सम्मान और यश मिला सम्भवतः और किसी को नहीं। कन्नौज की वैभवहीनता के साथ संस्कृत साहित्य की कला भी मंद पड़ गई। यद्यपि संस्कृत साहित्य का निर्माण तेरहवीं शताब्दी तक चला, परन्तु इस समय हिन्दी का युग अपभ्रंश की सीमा पार करके सामने आ चुका था।

द्वितीय अध्याय

मध्यकालीन साहित्य

हिन्दी का प्रारम्भिक इतिहास बहुत कुछ अप्राप्य है। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने जिन ग्रन्थों का उल्लेख अपने इतिहास में किया है, वे संदिग्ध ही नहीं, बल्कि उनमें से अधिकांश रचनाएँ परवर्ती सिद्ध भी हो चुकी हैं। स्वयं शुक्ल जी ने आदि काल की सामग्री का परीक्षण करके जहाँ तक सम्भव था, उसके जालीपन को सिद्ध किया है। आदि-काल को वीर-गाथा काल कहा जाता है परन्तु सावधानी से देखने पर यह पता चलता है कि उसमें जितनी प्रबलता शृंगार की है, वीर की नहीं। चाहे वह चन्द-वरदाई का पृथ्वीराज रासो हो, चाहे खुमान का वीसलदेव रासो। हां जगनिक का 'आल्हा' नामक ग्रन्थ अवश्य ही इन सबसे अधिक वीरता पूर्ण है। यद्यपि उसका मूलरूप क्या था, इसका पता आज तक नहीं चला। फिर भी इसके लोक-प्रचलित स्वरूप को देख कर उसका वीर काव्य होना ही सिद्ध होता है।

संवत् १००० के आस-पास का समय भारतवर्ष का संक्राति युग था। एक ओर तो इस्लामी हमलों ने परेशान किया था और दूसरी ओर सम्पूर्ण भारत परस्पर छोटे बड़े राज्यों में विभक्त गृह-युद्ध में मग्न था। इस प्रकार देश की शक्ति विशृंखलित हो गई थी। आदि काल का साहित्य देशी राजाओं के परस्पर कलह का प्रतिबिम्ब।

कहा जा सकता है। जिसमें वीरता का स्थायित्व कम और पारस्परिक क्लेश की अधिकता है। राजकीय निरंकुशता ने गृह–कलह के साथ ही विलासिता की भी वृद्धि की थी। परस्पर कलह का अन्त तब तक न हो सका जब तक कि विधर्मी शासन का अधिपत्य देश भर में नहीं हो गया। इस्लाम का प्रभाव दृढ़ होता गया और हिन्दू समाज की चिन्ता–धारा वीरता से निकल कर निराशोन्मुखो हो चली। इसी स्थिति में किंकर्तव्य-विमूढ़ हिन्दू समाज सिद्धों के चमत्कार और योग–पद्धति की ओर उन्मुख हुआ। मुसलमानों से पराजित होकर तथा गृह–युद्ध की निस्सारता ने भी हिन्दुओं को युद्ध से विरत कर दिया। हिन्दू-साम्राज्य का विनाश, विधर्मी शासन की स्थापना, गृह कलह के फलस्वरूप सामाजिक जर्जरता, जोगी जतियों की क्षणिक चमत्कारिक दुरूहता के पश्चात समाज सन्तों की ओर आकर्षित हुआ। लोक में रहते हुए भारतीय समाज को अलौकिक संसार की बातों ने आश्चर्य और आनन्द की ओर अभिमुख किया।

संत सम्प्रदाय के पीछे राजकीय परिस्थिति कम थी, सामाजिक अधिक। यदि हम यह देखना चाहें कि तत्कालीन लोक पक्ष की प्रक्रिया सर्वाधिक रूप में कहाँ मिलेगी तो निःसंदेह वह हिन्दी का संत-साहित्य ही है। मध्ययुगीन साहित्य का मूल्य केवल इसीलिए नहीं है कि वह कबीर और दादू आदि के तत्वज्ञान का प्रतिपादन करता है प्रत्युत यह भी विचारणीय है कि कबीर और उनके समकालीन तथा परवर्ती संतों ने अपने युग और समाज को कितनी शक्ति के साथ झकझोर डाला है। इन लोगों का सामाजिक विषमता की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक ही था क्योंकि संतों का राज्य से कम (या बिल्कुल ही नहीं) प्रजा से अधिक सम्बन्ध था। अतः समाज सुधार की भावना होना उन में उचित ही थी। फिर भी संत मत सर्वसाधारण को ग्राह्य नहीं हो सका। उसने समाज को एक विशिष्ट धारा की ओर मोड़ तो दिया किन्तु स्थाई स्थान न बना सका। सर्वसाधारण से निर्गुण ब्रह्म की उपासना, तत्वज्ञान में दीक्षित देखने की अभिलाषा उसकी अपूर्ण ही रही। संतमत

गृहस्थ सम्प्रदाय की श्रद्धा तो ले सका किन्तु अपना अनुकरण नहीं करा पाया।

इस असफलता के मुख्य कारणों में एक यह भी है कि जोगी संप्रदाय; जो बंगाल, बिहार, राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश में भी अपना स्थान बना चुका था, निम्न श्रेणी के कहे जाने वाले व्यक्तियों का समूह था। बुद्ध धर्म का ह्रास होते ही देश की जातीय स्थिति में एक तूफान-सा आया था। एक ओर बौद्ध, जैन, आदि धर्मों से अपने को बचाने का प्रयास करने वाला वैदिक समाज था और दूसरी ओर सर्वहारा के रूप में बुद्ध धर्म फैलता जाता था। बाद में बुद्ध धर्म का ह्रास और वैदिक समाज की दुर्भेद्य सीमा-भेदन-प्रयास में विफल होने के कारण 'निम्न' कहे जाने वालों के लिए इस्लाम धर्म में शामिल हो जाने का रास्ता खुल गया। जहाँ हिन्दू समाज में 'नीच' को ऊँच बनने का कभी भी और कहीं भी अधिकार नहीं मिलता था वहाँ इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेने से समानता का अधिकार और एक बड़े कैम्प की छाया मिल जाती थी। अतः जो नीची जातियाँ थीं और जिन्हें हिन्दू समाज ने अपनी सीमा रेखा से बाहर कर रक्खा था उन्होंने सम्मिलित रूप से इस्लाम धर्म स्वीकार किया। इनके संस्कारों में हिन्दुत्व का प्रभाव था और पूर्व से प्रचलित रीति रिवाज भी ये लोग छोड़ नहीं सके। इस्लाम धर्म में दीक्षित होकर इन समूहों को एक कैम्प में स्थान तो मिल गया परन्तु इनमें व्यापकता का अभाव था और इसीलिए यह एक बड़ी जाति से उपजातियों में बँटने लगे। कबीर आदि संतों का जन्म इन्हीं जातियों में हुआ था। इन जातियों में उच्च हिन्दुओं के प्रति रोष और तिरस्कार की भावना बड़ी प्रबल थी। सिद्ध तथा जोगियों की रचनाओं में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल सकता है। वैदिक आचार-विचार, जाति-पाँति तथा शास्त्र विहित मान्यताओं का उपहास निर्ममता के साथ इन लोगों के द्वारा किया गया है। इन्हीं सिद्ध तथा जोगियों की परम्परा में संत सम्प्रदाय का जन्म हुआ। 'संत' साहित्य का पूर्वकाल देखने से यह पता चलता है कि इसमें व्यक्तिगत अक्ख-

ड़ता और फक्कड़पन के साथ 'ब्रह्म' को जानने का गर्व भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। बाद को सामाजिक दृष्टिकोण तथा सूफियों की अनन्य तन्मयता के मिश्रण से संत संप्रदाय में ओज के अतिरिक्त प्रेम, विनम्रता और सरलता की प्रतिष्ठा हुई। बाद के संतों में विराग और विनम्रता पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

'संत' संप्रदाय के सबसे महान और प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों में कबीरदास का ही नाम आता है। कबीर का व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार का था जो विषमता में समता रखता था। कबीर में गर्व का जो आरोप किया जाता है वह निरर्थक नहीं है। कबीर की बात में सच्चाई की कठोरता है, क्षुद्र मन की दुर्बलता, घृणा या द्वेष नहीं। व्यक्तिगत अक्खड़पन और अपनी ही कहने की फक्कड़ता कबीर में खूब थी। उनकी अखंड प्रतिभा की यही विशेषता है कि वह बाहर से तीखी और भीतर से मीठी है। यह विशेषता उनके समकालीन तथा परवर्ती संतों में नहीं मिलती।

निर्गुण ब्रह्म की महत्ता प्रदर्शन में संत संप्रदाय ने कोरी वेदान्ती शुष्कता का आश्रय नहीं लिया बल्कि भावुक हृदय की सरलता का भी उसमें मिश्रण हुआ है। निर्गुणिया, ज्ञानी और प्रेमी कबीर का प्रभाव व्यापक रूप से चारों ओर पड़ा। विशेषतः उत्तरी भारत में उनका प्रभाव गहरा पड़ा था; इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता। कबीर तथा अन्य संतों की वाणी विद्वानों को चुभती थीं और साधारण मनुष्य के लिए आश्चर्य की वस्तु थी। कबीर का प्रभावशाली व्यक्तित्व समाज का ध्यान अपनी ओर खींच सका परन्तु अनुवर्ती नहीं बना सका; इसका मुख्य कारण उनके तत्व ज्ञान की दुरूहता थी। अन्य संतों में यदि कबीर जैसा व्यक्तित्व होता तो शायद आगे कुछ सफलता मिलती किन्तु यह सौभाग्य नहीं मिला। संतों की प्रेम भरी तन्मयता जो सूफीवाद से प्रभावित थी अपने में ही खोई रही परन्तु इतना स्पष्ट है कि सिद्ध तथा जोगियों की कट्टरता और भक्त सम्प्रदाय की महत्वपूर्ण विनम्रता के साथ लोक कल्याण की मंगलमयी भावना में संत समाज ने बीच की कड़ी बन कर हिन्दी

साहित्य की खाई को पाट देने का सफल प्रयत्न किया। संत साहित्य और भक्ति साहित्य में निर्गुण और सगुण का द्वन्द तो मिलेगा परन्तु हृदय की विशालता दोनों में समान रूप से विद्यमान थी; यह निश्चित है।

संत सम्प्रदाय की अलौकिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप सगुण मतवाद और भक्ति भावना को प्रचार और प्रोत्साहन मिला। सगुण मतवाद ने भारतीय समाज को इतना तो अवश्य ही दिया कि वह कर्तव्य पर डटे रहना सीख गया। सम्पूर्ण कठिनाइयों को धैर्य के साथ सहने की अपूर्व क्षमता, साहस और जीवन का सन्देश उससे अवश्य मिला। लोकरुचि में आध्यात्मिकता के साथ भौतिक जगत का समन्वय उसकी अपनी विशेषता है। उसने निराशा से आशा की ओर उन्मुख किया और प्रत्यक्ष से अनास्था तथा अप्रत्यक्ष के लिये पागल बने घूमने की विचार-धारा पर कठोर प्रहार किया। यदि हिन्दी साहित्य का आदर्श और सबल-साहित्य छाँटने को कहा जाय तो निश्चय ही भक्ति-साहित्य का नम्बर ही प्रथम होगा।

संत साहित्य में तत्वतः निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है किन्तु सर्वसाधारण निर्गुण में समा सकता, ऐसी कोई धारणा न उस समय सर्वमान्य हो सकी और न अब तक ही। फिर भी संत-सम्प्रदाय सर्व साधारण को अपनी ओर खींचने का प्रयास करता ही रहा। इसके विपरीत सगुण-वाद का प्रतिनिधित्व करते हुए महाकवि सूरदास जी ने अत्यन्त मधुरता के साथ अपनी रचनाओं में निर्गुणियों का उत्तर भी दिया। उद्धव और गोपियों के संवाद में निर्गुण और सगुण की बड़ी ही मनोहरता और सूक्ष्मता के साथ विवेचना करके सगुणवाद की जिस प्रकार प्रतिष्ठा की गई है, वह सर्वथा अनूठी है। 'निर्गुणकौन देश को वासी ?" जैसी चुभती हुई व्यंग्योक्तियों में तत्कालीन निर्गुण और सगुण के द्वन्दात्मक भारत की झाँकी मिलती है। नींव भर कर जमीन तो तैयार कर दी सूर ने और उस पर सुदृढ़ महल बनाकर खड़ा कर दिया तुलसी ने। यही वेलि पल्लवित होकर समस्त देश में व्याप्त हो गई।

चूँकि सूर सामाजिक नेता नहीं थे, वे कलाकार ही अधिक थे। इस लिये उन्होंने सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए भी समाज को किसी चौखटे में कसने का प्रयत्न नहीं किया इसके विपरीत गोस्वामी जी कलाकार के साथ ही समाज के नेता के रूप में सामने आये और उन्होंने हिन्दू-समाज को एक निश्चित सीमा में बाँधने का सफल प्रयास किया।

भक्ति साहित्य और भक्त संप्रदाय का क्षेत्र निरंतर बढ़ता ही गया। उसकी इस सफलता के पीछे सबसे बड़ा कारण था उसकी सहज-स्वाभाविक अकृत्रिम सरलता। स्नेह और सहिष्णुता की भावना। भक्त अपने भगवान के विरुद्ध सोच ही नहीं सकता था क्योंकि वह तो अपने इष्ट का दासानुदास जो था। भक्त यदि कभी अपने भगवान के विरुद्ध अड़ता भी तो नत भाव से। नम्रता उसका प्रमुख गुण था। शांतिमय जीवन, विचारों की विवेकता, सारल्य और लगाव उसके मूल में थे। भक्ति का क्षेत्र ज्ञान से ज्यादा विस्तृत था। दक्षिण से लेकर समस्त उत्तर भारत में उस की एक मात्र सत्ता सदियों तक रही। सारे देश की संचित श्रद्धा और साहित्य की सरल अभिव्यक्ति, कला का मंगलमय स्वरूप की प्रतिष्ठा यदि सर्वाधिक प्रभावशाली कहीं भी मिलेगी तो सिर्फ हिन्दी के भक्ति साहित्य में। भक्तों के चरित्र भी बड़े पवित्र और आकर्षक हैं। स्वयं भक्तों के उज्जवल चरित्र ने ही भक्ति साहित्य को सर्व साधारण के अनुरूप और अनुकरणीय बना दिया।

तृतीय अध्याय
उत्तर कालीन साहित्य

उत्तर कालीन साहित्य के सम्बन्ध में अभी तक इतिहास के पृष्ठों में जो लिखा गया है, वह वैज्ञानिक विवेचन के दृष्टिकोण से हल्का-सा जान पड़ता है। वस्तुतः उत्तर कालीन साहित्य (जो हिन्दी साहित्य का रीति-काल के नाम से प्रसिद्ध है) की पृष्ठ-भूमि में सिर्फ मुगल साम्राज्य की चमक या मध्य-कालीन काव्य की अभौतिक धारणाओं की प्रतिक्रिया मात्र ही नहीं है। यदि ऐसा होता तो हिन्दी के रीति-कालीन साहित्य में शृङ्गार की उच्च चिन्तना और उसके विकसित शास्त्रीय स्वरूप की जो झाँकी मिलती है, वह न होती। यह ठीक है कि हिन्दी साहित्य पर उन सभी परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा जो समय समय पर भिन्न-भिन्न आन्दोलनों के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। राजनैतिक हलचल का साहित्य पर विशेष प्रभाव पड़ता ही है किन्तु केवल राजनैतिक परिस्थिति ही किसी साहित्य को बना या बिगाड़ नहीं सकती।

भारतीय साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे जो कि प्रतिकूल स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं। बहुतसी ऐसी रचनाएँ हैं कि जिनका निर्माण भीषण हाहाकार के बीच हुआ जब कि उसकी कल्पना भी कठिन समझी जाती थी। आचार्य सायण ने वेदों का भाष्य युद्ध-क्षेत्र में किया। वररुचि का 'वार्तिक' भी ऐसी ही विषम परिस्थितियों में लिखा गया था। हिन्दी में भी ऐसी बहुत-सी रचनाएँ हैं जिनको देखकर काल विशेष का ज्ञान नहीं हो सकता। आधुनिक कवियों में पंत का प्रकृतिवाद महादेवी का रहस्यवाद, 'नवीन' का सजनीवाद और बच्चन की हाला-

वादी' रचनाओं को देखकर एक दो शताब्दी बाद कौन यह कल्पना कर सकेगा कि यह इस देश के उस काल का साहित्य है जो स्वतंत्र-युद्ध में बद्ध परिकर जूझ रहा था। दासता की बेड़ी तोड़ने के लिये जहाँ का मानव लड़खड़ाता, टकराता, गिरता-पड़ता, स्थिर चरण बन रहा था। देश की दरिद्रता और आत्म-ग्लानि तथा हृदय, मन और शरीर का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष विद्रोह इन कवियों की इन रचनाओं में नहीं मिलता। इसका यह अर्थ नहीं कि इन कवियों की इन रचनाओं का मूल्य कुछ नहीं है।

वस्तुतः युद्ध और प्रेम सांसारिक जीवन के दो पहलू हैं। जब से संसार का निर्माण हुआ होगा और मानव ही नहीं प्राणीमात्र जन्मा, तभी से युद्ध और प्रेम की दो स्पष्ट धाराएँ अलग-अलग प्रवाहित हुई होंगी। मानव की आदिम अवस्था से लेकर आज की कथित अत्यधिक सभ्यता प्रधान मानवता भी इन दोनों धाराओं से अभिभूत है। इससे यह जान पड़ता है कि युद्ध और प्रेम का सम्बन्ध जगत से चिरन्तन है। हाँ, कभी प्रेम बहुल बना और कभी युद्ध। सम्पूर्ण साहित्य को इन दो पक्षों में रखकर बाँटा जा सकता है। एक ही साहित्यकार में दोनों बातें अलग अलग ढंग पर स्थाई रूप से मिलेंगी। हमारे देश में व्यक्ति-वाद की प्रधानता ने आत्मानन्द की सृष्टि की और समाज और देश की परिस्थितियों ने व्यक्ति को, सामुदायिक रूप से सोचने के लिये विवश किया।

साहित्य तटस्थ नहीं रह सकता। यही कारण है कि एक ओर हम रीतिकाल के कवियों में घोर श्रृङ्गार का वर्णन पाते है और दूसरी ओर वीर रस का प्रभाव भी। आधुनिक कलाकारों में भी यह प्रवृत्ति समान रूप से देखने को मिल जायेगी। 'नवीन' जी की राष्ट्रीय रचनाएँ देश का सच्चा खाका खींच सकने में समर्थ हैं और उन्हीं की अधिकांश रचनाएँ आनन्द, उपभोग और विलासिता प्रधान वातावरण की सूचना देती हैं।

रीतिकालीन कविता पर मुगल शासन का प्रभाव न मानना ऐतिहासिक सत्य से आँख बन्द कर लेना होगा लेकिन रीतिकालीन

कविता को मुगल शासन की प्रतिक्रिया मात्र कहना सर्वथा अनुपयुक्त है। मुगल-काल रीतिकाल का आलम्बन अवश्य बना लेकिन अन्तः मानस को इस ओर घसीटने का श्रेय उसे नहीं है। हिन्दी साहित्य के संबंध में आचार्य पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि "अगर इस्लाम नहीं आया होता, तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा कि आज है।"

मध्यकालीन साहित्य को आदर्शवादी साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है किन्तु मुग़ल साम्राज्य की स्थापना के बाद देश की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुआ। राज्य रक्षण पाजाने के पश्चात हिन्दू समाज की घोर आदर्शवादी विचारधारा में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। सुख और समृद्धि की चमक में दैवी आदर्श को छोड़ कर मनुष्य मानवीय आदर्शों की ओर मुड़ना चाहता था जिसमें आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का भी सम्मिश्रण होता किन्तु मुगल कालीन विलासिता के प्रभाव ने उसे अध्यात्मिकता से विरत करके भौतिक सौंदर्य की ओर मोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि सदियों पुरानी शृङ्गारी परम्परा जो आध्यात्मिक पहलू में दब कर चलती थी, खुलकर सामने आई। आलम्बन कृष्ण और राधा बने किंतु वर्ण्य-विषय स्त्री और पुरुष ही थे। इस प्रकार हिन्दी में शृङ्गारी साहित्य परम्परा का स्पष्ट स्वरूप शृंखला बद्ध होकर स्थापित हुआ और लगातार दो शताब्दी से भी कुछ आगे तक वह ज्यों का त्यों प्रतिष्ठित रहा।

रीतिकाल

'रीति' का शाब्दिक अर्थ है लक्षण। जिसमें काव्य की पद्धति विशेष का विवेचन हो उसे रीति-शास्त्र कहा जाता है। लक्षण-साहित्य की परम्परा हिन्दी में सर्वप्रथम केशव ने ही चलाई। उनकी मान्यता के आधार, संस्कृत के आचार्य दण्डी तथा भामह इत्यादि जिन्होंने

अलंकार को काव्य की आत्मा माना है, बने। परन्तु जैसा आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास में लिखा है कि केशव की चलाई परम्परा नहीं चली बल्कि रीति काल की काव्य धारा संस्कृत के विश्वनाथ इत्यादि रस को काव्य की आत्मा मानने वाले आचार्यों के आधार पर स्थापित चिन्तामणि से चली और इसी धारा को स्थायित्व मिला।

यद्यपि रीतिकाल के पूर्व का हिन्दी साहित्य ज्ञान और भक्ति से ओत-प्रोत है परन्तु रीति-काल शृंगार से आच्छादित है। हिन्दी में साहित्य-रचना प्रारम्भ होने के साथ शृंगार में जो वीरता का समावेश मिलता है वह इन देश की राजनैतिक देन है। इसके पश्चात का समय देश और समाज का अव्यवस्थित युग है। रीति काल तक आते-आते भारतीय समाज अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का दिवाला पीट चुका था। उसकी न तो कुछ राजनैतिक साख थी और न समाजगत ही। इस समय की कविता समाज के मध्य या निम्न वर्ग में न फल-फूल कर राज दरबारों में पलने लगी थी। एक ओर देश और समाज की यह दुर्व्यवस्था और दूसरी ओर हिन्दी कविता को राज्य रक्षण प्राप्त हो जाने से उसकी शृंगारिकता में कोई कमी नहीं रह गई थी। धर्म का ह्रास तो हो चुका था किन्तु धर्म भीरुता शेष थी। धर्म का मूल-मन्त्र तो भूल चुके थे किन्तु उसके स्थान पर धर्माभास या पाखण्ड फैला हुआ था। यही कारण है कि रीति कालीन कवियों ने स्त्री-पुरुष का घोर-शृंगारिक वर्णन तथा कामात्मक चित्रण करते हुए भी कृष्ण और राधा का आलम्बन नहीं छोड़ा।

यद्यपि रीति कालीन साहित्य फारसी के प्रभाव से अछूता नहीं तथापि रीति कालीन साहित्य का आधार मुस्लिम शासन ही नहीं अपितु वह

क्रमागत संस्कृत; अपभ्रंश का साहित्य भी है जो साहित्यिक निधि के रूप में उसे प्राप्त हुआ।

सारे देश में एक विशेष प्रकार का आन्दोलन चल रहा था जो अन्दर ही अन्दर इस साहित्य का प्रतिद्वन्दी बना किंतु इस आन्दोलन को अच्छे ढंग से पनपने का अवसर नहीं मिला। इस परम्परा के नेता कविवर भूषण कहे जा सकते हैं। मध्यप्रदेश तथा मराठा प्रदेश और बुन्देलखण्ड के हिन्दूपद-पादशाही का संरक्षण पाकर यह परम्परा कुछ फली-फूली। फिर भी इसे व्यापकता नहीं मिली। इस युग की हिन्दी कविता न तो ग्रामों और झोपड़ियों में जन्मी और न विकसित ही हुई, वह महलों में जन्म लेकर राज दरबारों में पली। उसके संस्कार विलासिता से प्रभावित हुए। कोमलता और लचीलापन उसे निसर्गतः प्राप्त हुआ। रीतिकालीन कविता में न तो तत्कालीन भारतीय समाज की आत्मा बोलती है और न उसका प्रतिबिम्ब ही उसमें है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि रीतिकालीन कविता की शृंगारिकता इस बात का प्रमाण है कि उस युग में देश सम्पन्न और समाज सुखी था। परन्तु यह दृष्टिकोण ठीक नहीं कहा जा सकता क्योंकि रीतिकालीन कविता जन-साधारण से बहुत दूर थी और लोक-साहित्य के रूप में कुछ और ही बन रहा था। राजनैतिक दृष्टि से भी अकबर के पश्चात मुगल शासकों की उदारता में कमी आ गई थी। शासक और प्रजावर्ग में सामञ्जस्य और प्रेम-भावना उत्पन्न होने के बजाय घृणा और द्वेष का भाव ही वृद्धि कर रहा था। रीतिकालीन कवियों ने जो पद्धति काव्य रचना की ग्रहण की उसका आधार स्वतन्त्र और मौलिक नहीं था। विषय और पद्धति आदि संस्कृत और अपभ्रंश से विरासत में मिली थी। हिन्दी-रीति ग्रथों का आधार संस्कृत के ही ग्रंथ हैं। दण्डी, भामह, उद्भट, विश्वनाथ आदि आचार्यों का आश्रय लेकर रीतिकाल

में लक्षण-ग्रंथों का निर्माण हुआ। इन लक्षण-ग्रंथों में मौलिकता तो थी ही नहीं बल्कि प्रतिपाद्य विषय के गम्भीर ज्ञान का भी अभाव है। अनुकरण तो किया परन्तु बड़ा ही छिछला। काव्य के लक्षणों को निर्धारित करने के लिये आगे बढ़े किन्तु सम्यक् विवेचन करने में असमर्थ ही रहे। रीतिकालीन आचार्यों की दृष्टि अलंकारों पर ही विशेष रही रस का विवेचन न्यून ही है। शृंगार रस के अतिरिक्त अन्य किसी रस का परिपाक इस काल में नहीं हुआ, अतः इसे रीति-काल न कह शृंगार-युग कहना ही समीचीन है।

शृंगार का आलम्बन नायिका है अतः नायिका-भेद पर इस युग में काफी लिखा गया। सच तो यह है कि रीतिकालीन कवियों के संस्कार दरबारी थे और उनकी वृत्तियों का निर्माण मुगल शासन की भोग-विलासिता से हुआ था। लक्षण-ग्रन्थ लिखना इन कवियों का गौण काम था और काव्य रचना मुख्य। कवि और आचार्य दोनों नावों पर सवारी करने से इस युग की काव्य-धारा सर्वतोन्मुखी न बन सकी और न लक्षण-ग्रन्थ ही शक्तिशाली बने।

संस्कृत साहित्य के लक्षण-ग्रन्थों की भाँति हिन्दी में रीति-निरूपण अब तक नहीं हो सका। जब तक रीति के आधार पर कविता लिखना ठीक समझा जाता था तब हिन्दी का युग प्रबल न था। जब हिन्दी काव्य ने व्यापकता ग्रहण की, तब तक वह रीति-आधार को छोड़ ही चुका था। वस्तुतः रीति-कालीन कविता में जिस एक धारा का सूक्ष्म विवेचन हुआ है, वह अन्यत्र नहीं मिलेगा। शृंगारी भावनाओं में आकण्ठ डूबा हुआ रीति-साहित्य सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अपने ढंग का अकेला है। प्रायः आधुनिक प्रगतिशील आलोचकों द्वारा कहा जाता है कि रीतिकालीन कविता का कोई मूल्य नहीं और आज के युग में वह निश्रम और हीन है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि यदि वे काव्य को एकांगी दृष्टि से देखना

त्याग दें तो इस प्रकार की लचर दलीलों एवं प्रचारात्मक आलोचना से साहित्य को बचा सकते हैं।

जीवन का एक पक्ष यदि संघर्ष है तो दूसरा पक्ष आनन्द। काव्य के आनन्द को केवल आध्यात्मिक आधार पर रखना नितांत भूल होगी। यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कोमल कल्पनाओं का जैसा मधुरतम विकास रीति-कालीन कविताओं में हुआ वैसा हिन्दी काल के एक हजार वर्ष में नहीं। यद्यपि उसमें कृत्रिमता की कमी नहीं फिर भी वह जीवन के प्रेम-पक्ष के अत्यधिक निकट है। आधुनिक युग की प्रगतिवादी तथा छायावादी कविता भले ही पाश्चात्य देशों से प्रभावित कही जाय किन्तु बीज रूप में वह रीति-युग का प्रतिनिधित्व करती है। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि रीति-काल के विरोधस्वरूप जो काव्य धारा प्रवाहित हुई, वह स्थायी न रह सकी क्योंकि इसमें सामयिकता अधिक थी और मानव के चिरंतन तत्वों का अभाव था। जब कि प्रेमतत्व की काव्य धारा आदि से लेकर अब तक शैली-भेद के साथ निरन्तर विकासशील है।

हमारे रीतिकालीन कवि

महाराजा बीरबल—महाराजा बीरबल घाटमपुर तहसील के तिकंवापुर (त्रिविक्रमपुर) नामक ग्राम के निवासी तथा कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके जन्म, स्थान, नाम तथा जाति के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। परन्तु इतना सभी स्वीकार करते हैं कि यह अकबर के नवरत्नों में से थे और अकबर इनका बड़ा सम्मान करता था। अंग्रेजी इतिहासकार विसेंट स्मिथ और डा० ग्रियर्सन ने इनका नाम महेशदास तथा अकबर के समकालीन फारसी इतिहासकार बदायूनी ने ब्रह्मदास लिखा है। इनका जन्म संवत् १५८५ के लगभग माना जाता है।

नाम के सम्बन्ध में बदायूनी का मत उचित मालूम होता है क्योंकि इन्होंने अपनी कविता में 'ब्रह्म' ही लिखा है। इनके पिता का नाम गंगादास था। वीरबल की उपाधि संभवतः इन्हें किसी राजा या सम्राट अकबर के दरबार में मिली होगी। वीरबल नाम का उल्लेख तभी मिलता है जब इनका सितारा चमक चुका था। प्रयाग के किले में अशोक-स्तम्भ पर निम्नलिखित वाक्य उत्कीर्ण है :—

"सम्बत सोलह सौ बत्तीस, शाक्ये चौदह सौ तिरानवे, मार्ग बदी पांच, सोमवार, गंगादास सुत महाराज बीरबल श्री तीर्थराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितम् ॥

उपर्युक्त शब्दों से इनकी उच्च स्थिति तथा सम्मान का पता चल जाता है। इनके वाक्चातुर्य और योग्यता के सम्मुख कोई भी टिक नही पाता था। इनकी हाजिर जवाबी से बादशाह ही नहीं, सारा दरबार प्रसन्न रहता था। इनकी उन्नति और बादशाह से अच्छे सम्बन्ध होने के कारण कुछ दरबारी इनसे ईर्ष्या भी करते थे। प्रसिद्ध इतिहास कार, बदायूनी ने भी इन्हें अच्छे शब्दों में याद नहीं किया है। अकबर से इनका सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ और अभिन्न सखा की तरह था।

कहा जाता है कि यह पहले चौरागढ़ के राजा रामचन्द्र भट्ट तथा आमेर के राजा भगवानदास के यहां रहते थे। यहीं से अकबर के यहां गये। स्वभाव हंसमुख और उदार था। दानी भी थे। स्वयं तो दान देते ही थे और अकबर से भी अपने भक्तों को पुरष्कृत कराते थे। प्रसिद्ध है कि महाकवि केशवदास को एक छन्द पर प्रसन्न होकर इन्होंने छः लाख रुपये दिये थे। इनकी दानवीरता की प्रशंसा कविवर होलराय ने भी निम्नलिखित छन्द में की है :—

> "दिल्ली ते न तख्त ह्वै हैं, बक्त ना मुगल कैसो
> ह्वै है ना नगर कहूं, आगरा नगर ते
> गंग ते न गुनी, तानसेन ते न तानबन्द
> मान ते न राजा, औ न दाता बीरबर ते

खान खानखाना ते, न नर नरहरि हू ते
ह्वै है न दिवान कोई, टोडर निडर ते
नवौ खण्ड सात द्वीप, सातहू समुद्र बीच
ह्वै है न जलालुद्दीन, शाह अकबर ते।'

इनके द्वारा बहुत से कवि सम्राट अकबर के आश्रय में रहे। इन्हीं के उपदेशों से प्रभावित होकर अकबर हिन्दू धर्म की बड़ी इज्जत करने लगा था। इनके सत्संग से अकबर ने कविता लिखना भी सीखा। निश्चित रूप से कोई भी विभाग इनके आधीन नहीं था परन्तु इतिहास से पता चलता है कि यह वीर योद्धा थे। अकबर की कई लड़ाइयों में इन्होंने भाग लिया और विजय प्राप्त की। बादशाह ने इन्हें पहले नगरकोट (काँगड़ा) की और उसके बाद कालिंजर की जागीर प्रदान की। अपने जन्म-स्थान तिकवाँपुर के पास जमुना के तट पर अकबर-बीरबलपुर इन्हीं का बसाया हुआ है।

संवत् १६४३ में पश्चिमोत्तर सीमा पर बसने वाली जातियों ने बादशाह के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाया। जैन खाँ को इसे दबाने के लिये भेजा गया। उसे सफलता न मिलने पर बादशाह ने बीरबल को भेजा। इस युद्ध में मुगल सेना को मुँह की खानी पड़ी और साथ ही वीरबल की मृत्यु भी हुई। इनकी लाश नहीं मिली थी। इसको लेकर ईर्ष्यालु व्यक्तियों की ओर से यह प्रचारित किया गया कि वीरबल जान बचाकर भाग गया, किन्तु वीरबल की मृत्यु से अकबर को बहुत दुख हुआ। अकबर ने जितना शोक वीरबल के मरने पर मनाया उतना और किसी के लिये भी नहीं। शोक से व्यथित होकर अकबर ने निम्नलिखित सोरठा कहा था:--

"जानि दीन सब दीन, एक न दीन्हों दुसह दुख
सो अब हम कहँ दीन, कछु नहिं राख्यौ वीरबल"

इनकी कविता अच्छी हुई है। इनकी कविता की प्रशंसा में किसी कवि का यह दोहा कहा जाता है:—

"सुन्दर पद कवि गंग के, उपमा को बरबार
केशव अर्थ गम्भीर को, सूर तीन गुन धीर"

इस दोहे के अनुसार बीरबल को हिन्दी काव्य क्षेत्र में उपमाओं का सम्राट कहा गया है। किन्तु इसमें अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है। इनकी कविता प्रसाद गुणपूर्ण मधुर और सरस है। इनका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं। स्फुट रचनाएँ मिलती हैं। जिनसे इनकी काव्य प्रतिभा का अच्छा परिचय मिल जाता है। रचनाएँ अधिकतर शृङ्गारी हैं। जीवन के अन्तिम समय, नीति, भक्ति और ज्ञान विषयक कविताएँ इन्होंने लिखी हैं जो सुन्दर हैं। वस्तुतः यह एक उच्च पदाधिकारी हास्यरसावतार और वीर योद्धा के साथ ही ब्रज भाषा के अच्छे कवि थे। रचनाएँ देखिए:—

"एक समय हरि धेनु चरावत,
बेनु बजावत, मंजु रसालहिं।
दीठ गई, चलि मोहन की,
बृषभानु सुता उर मोतिन मालहिं।
सो छवि ब्रह्म, लपेट हिये,
कर सौं कर लै, कर कंज सनालहिं।
ईश को सीस कुसुम्भ की माल,
मनो पहरावति व्यालिनि व्यालहिं।"

× × × ×

"सखि, भोर उठी बिनु कंचुकी कामिनि,
कान्हरि तें करिकेलि घनी।
कवि ब्रह्म भनै छवि देखत ही,
कही जात नहीं मुख तै बरनी।
कुच अग्र नखक्षत, कंथ दियौ,
सिर नाय निहार लियो सजनी।
ससि शेखर के सिर से सुमनौ,
निहरे ससि लेत कला अपनी।"

"पेट में पौढ़ि के, पौढ़े मही पर
पालना पौढ़ि के बाल कहाये।
आई जबै तरुनाई तिया संग,
सेज पै पौढ़ि के रंग मचाये।
छीर-समुद्र के पौढ़न हार को,
ब्रह्म कबहुँ चित तैं नहिं ध्याये।
पौढ़त पौढ़त पौढ़त ही,
सो चिता पर पौढ़न के दिन आये।"

× × × ×

"गर्व चढ़े पुनि रूप चढ़े, पलना
पै चढ़े चढ़े गोद घना के।
हाथी चढ़े पुनि घोड़ा चढ़े,
सुखपाल चढ़े चढ़े जोमधना के।
बैरी औ मित्र के चित्त चढ़े,
कवि ब्रह्म भनै दिन बीते पना के।
ईश कृपालु को जान्यौं नहीं,
अब काँधे चढ़े चले चार जना के।"

चिन्तामणि त्रिपाठी—यह तिकवाँपुर ग्राम के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण तथा महाकवि भूषण व मतिराम के बड़े भाई कहे जाते हैं। यह भूषण और मतिराम के भाई थे, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। इस विषय को लेकर विद्वानों में काफी विवाद हुआ है और अब भी कुछ विद्वान इन्हें परस्पर भाई नहीं मानते। मतिराम के पौत्र बिहारी लाल ने अपनी 'रसचन्द्रिका' नामक टीका में लिखा है:—

"भूषण चिन्तामणि तहाँ, कवि भूषण मतिराम"

इससे कुछ लोगों ने यह प्रमाणित करना चाहा कि भूषण चिन्तामणि और मतिराम तीन ही भाई थे, चार नहीं किन्तु ऊपर के दोहे से कहीं भी यह ध्वनि नहीं निकलती कि यह तीनों परस्पर भाई थे। चौथे भाई जटाशंकर का यहाँ कोई जिक्र ही नहीं है। स्वयं भूषण और मतिराम ने जहाँ अपने सम्बन्ध में लिखते हुए परिवार का परिचय दिया है वहाँ कहीं भी इनका उल्लेख नहीं किया सम्भवतः एक ही जाति तथा ग्राम के निवासी होने के कारण ऐसी धारणा बन गई हो। इनका जन्म संवत् १६६६ के लगभग माना जाता है।

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने इनके विषय में 'सरोज' में लिखा है:—

"यह बहुत दिनों तक नागपुर में सूर्यवंशी भोंसला मकरंदशाह के यहाँ रहे और इन्हीं के नाम पर 'छन्द विचार' नामक पिंगल का बहुत भारी ग्रन्थ बनाया। इसके अतिरिक्त "काव्य-विवेक", कवि-कुल-कल्पतरु", "काव्य-प्रकाश" "रामायण" यह पाँचों ग्रन्थ हमारे पुस्तकालय में मौजूद हैं। रुद्रशाह सोलंकी, बादशाह शाहजहाँ और जैनदी अहमद ने इन्हें काफी सम्मान दिया था।' इनके जन्म सम्वत् तथा आश्रयदाताओं पर विचार करने से यह बात गलत सिद्ध होती है कि यह भूषण और मतिराम के भाई थे। क्योंकि भूषण का कार्यकाल औरंगजेब और शिवाजी के सामने शुरू होता है। यही समय मतिराम का भी है। इन्होंने कहीं-कहीं अपना नाम मणिमाल भी लिखा है।

इनकी कविता बहुत अच्छी है। ब्रज भाषा का विशुद्ध और परिष्कृत स्वरूप इनकी रचनाओं में मिलता है। रस, अलंकार और पिंगल पर इन्होंने काफी मात्रा में लिखा है। यह कवि से अधिक आचार्य थे।

रीतिकाल का प्रारम्भ संवत् १७०० से माना जाता है। इनका कविता काल भी यही है। इनके पूर्व में रीतिकालीन परम्पराओं को चलाने

वाले महाकवि केशवदास और महाराज वीरबल हुए; किंतु रीति-काल की स्थायी धारा इन्हीं से अनुप्राणित होकर प्रतिष्ठित हुई। केशवदास की चलाई हुई परम्परा टिक नहीं सकी। डा० भगीरथ मिश्र ने अपने 'हिंदी काव्य-शास्त्र का इतिहास' में लिखा है:—

"सुन्दर महाकविके बाद ऐसा कोई कवि नहीं मिलता जिसने चिंतामणि के पहले काव्य-शास्त्र पर लिखा हो। चिंतामणि का जन्म यद्यपि संवत १६६६ के लगभग माना जाता है पर यथार्थतः उनका रचनाकाल संवत १७०० से प्रारम्भ होता है। अतः रीति-काल का प्रारम्भ इन्हीं से मानना उचित है। इसके अतिरिक्त पद्धति और प्रणाली की दृष्टि से केशव की चलाई परम्परा आगे न बढ़ने पाई। और चिंता-मणि के बाद ही उन्हीं की पद्धति पर आगे के कवियों ने लिखा अतः रीतिकालीन काव्य-शास्त्र का ही नहीं परन्तु रीति-परम्परा का प्रारम्भ चिंतामणि से ही मानना अधिक उपयुक्त है।" इनका छटा ग्रन्थ 'रस-मंजरी' कहा जाता है। डा० भगीरथ मिश्र ने स्वयं तीन-ग्रन्थ 'कविकुल-कल्पतरु' 'शृंगार-मंजरी' और 'पिंगल' देखने का उल्लेख किया है परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि "रस-मंजरी" और 'शृंगार-मंजरी' एक ही है। इनकी कविताओं का कोई भी अच्छा संग्रह अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। कविता सरस और प्रसाद-गुण-युक्त है। शब्द-चयन और अलं-कार विधान इनका दर्शनीय है। सानुप्रास भाषा का प्रयोग छन्दों में खूब हुआ है। यह ब्रज भाषा के अच्छे कवि और रीति-काल के सर्वश्रेष्ठ आचार्य प्रसिद्ध हैं।

उदाहरण के लिये:—

चिन्तामणि कच कुच भार लंक लचकति।
सोहे तन तनक बनक छवि खान की॥
चपल विलास मद आलस बलित नैन।
ललित विलोकनि लसन मृदु—बानि की॥

नाक मुकुताहल अधर रंग संग लीन्हीं।
रुचि सन्ध्या राग नख तन के प्रभान की ॥
बदन कमल पर अलि ज्यों अलक लोल।
अमल कपोलनि झलक मुसक्यान की ॥

× × × ×

सूधी चितौनि चितै न सकै
औ सकै न तिरीछी चितौनि चितै।
गुड़ियान को खेलिबो फीको लगै
अरु काम कला को विलास कितै ॥
लरिकापन जोबन सन्धि भई
दुहुँ बैस को भाव मिलै न हितै।
बिबि चुम्बक बीच को लोहो भयो,
मन जाइ सकै न इतै न उतै।

× × × ×

हंसन के छौना स्वच्छ सोहत बिछौना बीच।
होत गति मोतिन की जोति जौन्ह जामिनी ॥
सत्य कैसी ताग सीता पूरन सुहाग भरी।
चली जयमाल लै मराल मन्द गामिनी ॥
जोई उर बसी सोई मूरत प्रतच्छ लसी।
चिन्तामणि देख हँसी शंकर की भामिनी ॥
मानों सर्द चन्द्र चन्द मध्य अरविन्द अर
विन्द मध्य विद्रुम विदारि कढ़ी दामिनी ॥

× × × ×

साहिब सुलंकी सिरताज बाबू रुद्रसाहि।
तासों रन रचत बचत खलकत हैं।
काढ़ो करबाल काढ़ी कटत दुवन दल।
सोनित समुद्र तोर पर छलकत हैं ॥

चिंतामणि भनत भखत भूत गन आँस।
मेद गूद गीदर औ गीद गलकत हैं॥
हारे कारे कुम्भन में मोती दमकत मानों।
कारे लाल बादर में तारे झलकत हैं॥

मतिराम—तिकवाँपुर ग्राम के निवासी कान्यकुब्ज त्रिपाठी ब्राह्मण तथा चिन्तामणि, भूषण के भाई प्रसिद्ध हैं। जनश्रुति के आधार पर अन्य कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मिलता; जिसके आधार पर इस सम्बन्ध में कुछ निश्चय किया जा सके। इनका जन्म ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने संवत् १७३८ मिश्रबन्धुओं ने संवत् १६७४ तथा पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने १६९० लिखा है। सेंगर जी ने भूषण का जन्म भी १७३८ लिखा है। निश्चय ही ठाकुर साहब का संवत् अशुद्ध है। क्योंकि इन दोनों ही कवियों का यह कविता काल है। जन्म-काल नहीं है। इनके आश्रय-दाता बूँदी-नरेश राव भाऊसिंह, कुमाऊँ के राजा उदोतचन्द्र के अतिरिक्त भोजराज, शम्भूनाथ सोलंकी और छत्रसाल हाड़ा रहे। इनका सबसे अधिक समय बूँदी में ही बीता। कहा जाता है कि यह सम्राट जहाँगीर के यहाँ भी रहे थे। राजा स्वरूपसिंहदेव के यहाँ रहते हुए उन्होंने इन्हीं महाराज के नाम पर "वृत्त-कौमुदी" नामक ग्रन्थ की रचना की। 'वृत्त-कौमुदी' को प्रकाश में लाने का श्रेय काशी-नागरी-प्रचारणी सभा की संरक्षता में पुरानी पुस्तकों के अन्वेषणकर्ता श्री पं० भगीरथ प्रसाद दीक्षित को है। इस ग्रंथ में मतिराम ने अपने ऊपर विस्तृत रूप से लिखा है। ग्रंथ का लेखन-काल संवत् १७५८ की कार्तिक शुक्ल तेरस है। जैसा कि निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

"संवत सत्रह सौ बरस, अट्ठावन सुभ साल।
कार्तिक सुक्ल त्रयोदसी, करि विचार तेहि काल॥
वृत्त-कौमुदी ग्रन्थ की, सरसी सिंह स्वरूप।
रची सुकवि मतिराम सों, पढ़ौ सुनौ कवि रूप॥"

इसी ग्रन्थ में यह अपने सम्बन्ध में लिखते हैं:—

"तिरपाठी बनपुर बसै, वत्सगोत्र सुनि गेह,
विवुध चक्रमनि पुत्र तहँ गिरिधर गिरधर देह।
भूमि देव, बलभद्र हुव तिनहिं तनुज मुनि गान,
मंडित मंडित मण्डली मंडन मही महान।
तिनके तनय उदार मति विश्वनाथ हुव नाम।
दुतिधर श्रुतिधर को अनुज सकल गुनन को धाम।
तासु पुत्र मतिराम कवि निज मति के अनुसार,
सिंह स्वरूप सुजान को वरन्यो सुजस अपार।

यदि इसे प्रामाणिक माना जाय तो कविवर मतिराम वत्स गोत्री कान्यकुब्ज त्रिपाठी ब्राह्मण, बनपुर के निवासी तथा पं० विश्वनाथ त्रिपाठी के पुत्र हुए। भूषण जी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र तथा तिकवाँपुर के निवासी थे। इस प्रकार भूषण और मतिराम में सहोदर भ्रातृत्व की स्थापना करना गलत सिद्ध होता है। मतिराम के सम्बन्ध में इनके पंती बिहारीलाल जिन्होंने विक्रम सतसई की रस चन्द्रिका के नाम से टीका की है, लिखते हैं:—

बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिन्दी के तीर,
विरच्यो भूप हमीर जनु मध्यदेश को हीर।
भूषण चिन्तामणि तहां कवि भूषण मतिराम,
नृप हमीर सनमान ते कीन्हें निज निज धाम।

इसका अर्थ इस प्रकार किया जाता है, कि मध्य देश की हीरे के समान मूल्यवान भूमि त्रिविक्रमपुर में, राजा हमीर ने भूषण, चिन्तामणि और मतिराम को अलग-अलग निवासगृह बनवाकर, सम्मान के साथ बसाया। इसका अर्थ दूसरा यह भी है कि त्रिविक्रमपुर जो मध्यदेश की भूमि में हीरे के समान मूल्यवान है और जहाँ भूषण तथा चिन्तामणि रहते थे (वहीं) कविभूषण मतिराम को सम्मान के साथ राजा हमीर ने बसाया। सम्भवतः यह ठीक भी है क्योंकि यदि हमीर के द्वारा भूषण भी बसाये गये होते तो जहाँ उन्होंने अपने सम्बन्ध में लिखा है, इसका उल्लेख भी'अवश्य करते। दूसरी बात यह कि चिन्तामणि और मतिराम जैसे प्रतिष्ठित भाइयों का भी उन्होंने कहीं कुछ जिक्र नहीं किया, और न मतिराम की किसी रचना में भूषण जैसे उस समय के प्रतिनिधि कवि का कोई उल्लेख मिलता है, यह बात कम आश्चर्य की नहीं।

यदि ये तीनों ही सहोदर भाई होते तो कहीं भी कोई एक भाई प्रकाश अवश्य डालता। जहाँ दूसरों की प्रशंसा में इन कवियों ने पोथे रच डाले और सारा जीवन दूसरों की झूठी-सच्ची प्रशंसा में व्यतीत किया वहाँ अपने चारों भाइयों (चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, जटा-शंकर) की चर्चा भी करते। जटाशंकर के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है कि वे प्रसिद्ध नहीं थे या उनकी प्रतिभा ऐसी नहीं थी, परन्तु अन्य भाई तो एक दूसरे से बढ़कर हैं। हमारा मत है कि

ये चारों सहोदर भाई नहीं थे। मतिराम और भूषण को केवल त्रिपाठी होने तथा ख्यातिवान होने के कारण ही एक जगह लाकर एकत्रित करने का प्रयास किया गया है।

मतिराम के पन्ती बिहारीलाल हमीर के द्वारा मति-राम को लाकर बसाना लिखते हैं, दूसरी ओर कविभूषण अपनी जन्मभूमि के लिये 'सदा' शब्द का प्रयोग करके अपनी पूर्व परम्परा और प्रारम्भ से उस गाँव में बसने का गर्व के साथ उल्लेख करते हैं। भूषण के निम्नलिखित दोहे को देखिये:—

"द्विज कन्नौज कुल कस्यपी रत्नाकर सुत धीर,
बसत त्रिविक्रमपुर 'सदा' तरनि तनूजा तीर।

उपर्युक्त दोहे में भूषण कहीं से लाकर बसाये गये, इस प्रकार की कोई बात नहीं; विपरीत इसके दूसरे चरण में 'सदा' शब्द का प्रयोग बड़े गर्व और दृढ़ता से किया गया है। यदि भूषण किसी दूसरे ग्राम से आकर तिकवाँपुर में बसे होते तो वे "बसत त्रिविक्रमापुर सदा" नहीं लिखते। भूषण ने "सदा" शब्द का प्रयोग करके अपने पूर्वजों से ही वहीं रहने की घोषणा की है। अनुमान है कि वृत-कौमुदी में दिया हुआ मतिराम का अपना परिचय ठीक है। ये कानपुर के निवासी तथा विश्वनाथ के पुत्र थे। पीछे जैसा बिहारीलाल का कथन है, हमीर ने इन्हें सम्मान के साथ तिकवाँपुर में बसाया होगा। इस प्रकार भूषण से इनका सम्बन्ध घनिष्ट होना प्रतीत होता है। समकालीन, सजातीय तथा समान कर्मी होने के कारण इनका उनसे परिचय अवश्य रहा होगा, जो एक ही गाँव में आकर बस जाने से और भी दृढ़तर हुआ। आपस

में घुले-मिले रहने के कारण इनके भ्रातृत्व ने यदि सर्वसाधारण में घर कर लिया हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इसके पश्चात् एक ही कठिनाई सामने आती है और वह है गोत्र सम्बन्धी। भूषण अपने को कश्यप गोत्री लिखते हैं और मतिराम वृत्त कौमुदी के अनुसार वत्सगोत्री हैं। परन्तु मतिराम के प्रपौत्र बिहारीलाल अपनी 'रस-चन्द्रिका' में "हैं पंती मतिराम के" कहते हुए कश्यप गोत्री लिखते हैं। इसमें क्या रहस्य है, कहा नहीं जा सकता। अनुमानतः जान पड़ता है कि इन प्रसिद्ध महाकवियों को सहोदर भाई बनाने में, मतिराम के वंशज जो आगे चलकर अयोग्य और प्रतिभाहीन होते हुए भी अपने पूर्वजों के नाम से ही राज दरबारों में पुजते रहे, सहायक हैं। एक ही स्थान, जाति तथा समकालीन होने के कारण दोनों कवियों को इस प्रकार जोड़ देना कुछ कठिन काम भी नहीं था।

प्रायः देखा जाता है कि लोग अपने वंश के प्रसिद्ध पुरुषों से निकट सम्बन्ध प्रदर्शित करके अर्थ और यश का लाभ उठाया करते हैं। महाकवि भूषण अपने जीवन-काल तथा मृत्यु के पश्चात् हिन्दू राजाओं के ही नहीं वरन् हिन्दू मात्र में श्रद्धा के पात्र बन गये थे और उनके सम्मान में झुकना लोग गौरव समझते थे। कहीं यही कारण तो नहीं कि "वृत-कौमुदी" निर्माण संवत् १७५८ तथा रस चन्द्रिका की टीका संवत् १८७२ इस एक सौ चौदह वर्षों के लम्बे अर्से के बाद बिहारीलाल ने अपनी कुल-श्रेष्टता प्रदर्शित करने के लिये चिन्तामणि-भूषण-मतिराम को एक में मिलाने का प्रयास किया हो? चूँकि भूषण कश्यपगोत्री प्रसिद्ध थे, अतः इसी गोत्र को अपना लिया हो।

सम्भवतः एक परिवार से दूसरे परिवार में कोई पीढ़ी दत्तक बनी हो और इसी वजह से ऐसा प्रवाद चल पड़ा हो, अन्यथा कोई कारण ऐसा नहीं जान पड़ता कि ये चारों भाई या तीनों भाई सहोदर थे, और कहीं अन्यत्र से लाकर तिकवाँपुर में बसाये गये थे, जैसा कि बिहारीलाल ने लिखा है। इतिहास देखने से पता चलता है कि मतिराम के वंशज बहुत दिनों तक केवल अपनी पूर्व परम्परा की दुहाई ही देकर राजाओं से अर्थ-लाभ करते रहे।

इनके द्वारा रचित ग्रथों का विवरण मतिराम-ग्रंथावली के सुयोग्य सम्पादक श्री कृष्ण-बिहारी मिश्र ने इस प्रकार दिया है :—

(१) *फूल-मंजरी*—यह जहाँगीर के यहाँ लिखी गयी, जैसा कि इसके एक दोहे से जान पड़ता है :—

हुकुम पाय जहाँगीर को नगर आगरे धाम।
फूलन की माला करी मति सों कवि मतिराम॥

काव्य-कौशल की दृष्टि से इनकी यह प्रथम रचना प्रतीत होती है।

(२) **रसराज**—यह ग्रंथ इनका सर्वश्रेष्ठ और प्रसिद्ध है। यह किसी आश्रयदाता के पास नहीं रचा गया, ऐसा इस ग्रंथ के देखने से जान पड़ता है। इसमें नायिका-भेद वर्णन बड़ा ही विशद और श्रेष्ठता के साथ किया गया है। इसका रचना-काल कवि ने नहीं दिया। अंत में लिखा है :—

"समुझि समुझि सब रीझि हैं; सज्जन सुकवि समाज
रसिकन के रस को कियो; नयो ग्रन्थ रसराज॥"

उपर्युक्त दोहे से यह झलक मिलती है कि इसके पूर्व कोई ग्रंथ कवि लिख चुका था।

(३) *छंदसार पिंगल*—ये किन्हीं श्रीनगर के फतेहसाहि बुन्देला के लिये रचा गया था।

(४) *ललित ललाम*—यह ग्रंथ अलंकार शास्त्र सम्बन्धी है। बूँदी के महाराज भावसिंह के पास रह कर कवि ने इसे लिखा था। इसमें बूँदी और बूँदी नरेश का वर्णन किया गया है।

(५) *मतिराम सतसई*—ये किसी काव्य प्रेमी और पारखी श्री भोगनाथ नामक व्यक्ति के लिये लिखी गई थी। इसमें कुल ७०४ दोहे हैं। प्रारम्भ के चार दोहों में वन्दना तथा अंत के दोहों में भोगनाथ को आशीर्वाद तथा कवि की ईश्वर-प्रार्थना है। इसमें रचना-काल नहीं दिया है।

(६) *साहित्य सार*—यह ग्रंथ केवल दस पृष्ठों का है। इसमें नायिका-भेद का वर्णन है। इसकी हस्तलिखित प्रति संवत् १८३७ की दतिया राज्य पुस्तकालय में है।

(७) *लक्षण शृंगार*—इसमें भावों और विभावों का वर्णन है। यह ग्रंथ चौदह पृष्ठों का है। इसकी हस्तलिखित प्रति संवत १८२२ की बिजावर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित है।

(८) *अलंकार पंचाशिका*—यह ग्रंथ संवत १७४७ में कुमायूँ नरेश उदोतचन्द्र के पुत्र ज्ञानचन्द्र के लिये बनाया था।

उपर्युक्त ग्रंथों का निर्माण-काल श्री कृष्णबिहारी मिश्र ने बहुत खोज बीन के बाद निश्चित किया है। परन्तु फिर भी वे पूर्ण शुद्ध नहीं हैं।

लफ् मंजरी का निर्माण जहाँगीर के समय में हुआ, जैसा कि इसके एक दोहे से ज्ञात होता है। यह ग्रन्थ मतिराम-कृत नहीं हो सकता। भाषा वगैरह देखने से यह रचना बहुत ही साधारण कोटि की जान पड़ती है। ऐतहासिक दृष्टि से भी यह भ्रामक है, क्योंकि जहाँगीर की मृत्यु २८ अक्टूबर सन् १६२७ ई० (विक्रम संवत् १६८४) में हुई। इस समय तक मतिराम के जन्म में भी सन्देह है। मतिराम का जन्म अनुमानतः संवत् १६६० तथा मृत्यु १७७० के लगभग है। अतः फूल-मंजरी इनकी रचना नहीं हो सकती। मतिराम-सतसई के लिये ग्रन्थ-परिचय में कहा जा चुका है कि ये किन्हीं भोगनाथ नरनाथ के लिये लिखी गई थी। ये भोगनाथ कौन थे इसका पता अब तक ठीक-ठीक नहीं चल सका। कानपुर के कवि नामक ग्रन्थ में त्रिपाठी बन्धुओं ने भोगनाथ पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :—

"कानपुर जिले के दक्षिणी भाग में भोगनीपर नामक तहसील है जिसका सदर मुकाम आजकल पुखरायाँ है, पर भोगनीपुर का गाँव पुखरायाँ से दो मील दक्षिण कानपुर-झाँसी सड़क और मुगलरोड के चौराहे पर बसा है। कानपुर गजेटियर के अनुसार लगभग ३०० वर्ष पूर्व (गजेटियर सन् १६०६ में छपा था) भोगचन्द नामक एक कायस्थ ने भोगनीपर बसाया और इसी के पास भोग्गासागर नामक तालाब भी खुदाया है। सम्भव है यही भोगचन्द मतिराम के आश्रयदाता भोगनाथ हैं।"

कानपुर गजेटियर के भोगचन्द और मतिराम के भोगनाथ का समय यएक ही है। भोगनीपर से तिकवाँपुर लगभग २० मील दक्षिण-पूर्व है। अतः सम्भव जान पड़ता है कि इनके आश्रयदाता यही होंगे।

यह ब्रजभाषा में प्रथम श्रेणी के कवि हैं। भाषा का जितना सुन्दर और परिमार्जित स्वरूप इनकी कविता में मिलता है वैसा अन्यत्र कम ही है। रस और अलंकार शास्त्र के तो ये पंडित ही थे। रीति-युग

के श्रेष्ठ आचार्यों में ये गिने जाते हैं किन्तु इनका कवि-हृदय सर्वोपरि है। इनकी रचनाओं में अलंकारों का बाहुल्य है किन्तु उनका निर्वाह बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया गया है। कोई भी रचना अलंकारों के बोझ से न तो दबी है और न उसके प्रवाह तथा मधुरता में ही कमी आई है। शृंगार रस के यह सिद्ध कवि थे। इनके सतसई के दोहे विहारी से प्रतिस्पर्धा करते जान पड़ते हैं। देव जी की भाँति सवैये और घनाक्षरी इनके प्रिय छन्द हैं। कवि देव ने भाषा को तोड़ मरोड़ कर खेल सा किया है परन्तु मतिराम जी इस दोष से सर्वथा मुक्त कहे जा सकते हैं। इनकी रचनाओं में भाषा माधुर्य के साथ भावों की स्पष्टता विशेष स्थान रखती है। वीर रस में भी इन्होंने लिखा है जो बहुत अच्छा है।

इनकी रचनाओं को देखिए:—

कुन्दन को रंगु फीको लगै,
झलकै अति अंगन चारु गोराई।
आँखिनि में अलसानि,
चितौन में मंजु विलासनकी सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं,
मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि,
त्यों त्यों खरी निकरैसी निकाई।

× × × ×

खेलन चोर मिहीचनि आजु,
गई हुती पाछिले द्यौस की नाईं।
आली कहा कहौं एक भई,
मतिराम नई यह बात तहाँईं।
एकही भौन दुरे एक संग ही,
अंग सों अंग छुवायो कन्हाईं।

कम्प छुटो घन स्वेद बढ़्यो,
　　तन रोम उठ्यो अँखियाँ भरि आईं।

× × × ×

धुखान की धावन मानौं अनंग की,
　　तुंग ध्वजा फहरान लगी।
नभ मंडल ह्वै छिति मण्डल छ्वै,
　　छनदा की छटा छहरान लगी।
मतिराम समीर लगै लतिका,
　　विरही बनिता थहरान लगी।
परदेस में पीव सन्देस न पायौ,
　　पयोद घटा घहरान लगी।

× × × ×

दूसरे की बात सुनि परति न ऐसी जहाँ,
　　कोकिल कपोतन की धुनि सरसाति है।
छाई रहै जहाँ द्रुम बेलिन सौं मिलिमति
　　राम अलिकुलन अँध्यारी अधिकाति है।
नखत से फूल रहे, फूलन के पुंज घने,
　　कुंजन में होत जहाँ, दिन ही में राति है।
ता बन की बाट, कोऊ संग न सहेली साथ,
　　कैसे तू अकेली दधि बेचन को जाति है।

सतसई के दोहे:—

नागरि नैन कमान सर, करत न ऐसी पीर।
जैसे करत गँवार के, दृग-धनुहीं के तीर॥
तेरी औरहि भाँति की, दीप सिखा सी देह।
ज्यों ज्यों दीपति जगमगै, त्यों त्यों बाढ़त नेह॥
पानिप में घर मीन कौ, कहत सकल संसार।
दृग-मीनन को देखियत, पानिप पारावार॥

भाल लाल बेंदी दिए, उठे प्रात अलसात।
लौनी लाजनि गड़ि गई, लखे लोग मुसकात॥

ध्यान करत नँदलाल को, नये नेह में बाम।
तन बूड़त रँग पीत में, मन बूड़त रँग स्याम॥

नैन जोरि मुख मोरि हँस, नैसुख नेह जनाय।
आगि लेन आई हिये, मेरे गई लगाय॥

बिनु देखे दुख के चलहिं, देखे सुख के जाँहिं।
कहौ लाल इन दृगन के, अँसुवा क्यों ठहराहिं॥

कहा दवागिन के पिये, कहा धरे गिरि-धीर।
बिरहानल में जलत ब्रज, बूड़त लोचन-नीर॥

इनके बहुत से स्फुट छन्द मिलते हैं जिनमें इन्होंने छत्रपति शिवाजी एवं महाराज छत्रसाल की वीरता का सुन्दर वर्णन किया है:—

मोह मद छाके विरचेते वर बाँके ऐसे,
बकसे सिवा के कविराज लिये जात हैं।
धावत धरनि धरा धर धुकि धक्कन सौं,
चिक्करत जिन्हें देखि दिग्गज परात हैं।
तामसी तरुनि तामरस तोरि मतिराम,
गगन की गङ्गा में करत उतपात हैं।
मन्द गति सिन्धुर मदंध में विलन्दु विन्दु,
ग्यान-अरविन्द-कन्द चन्दहि चबात हैं।

× × × ×

बाजत नगारे जहाँ, गाजत गयंद तहाँ,
सिंह सम कीनों वीर संगम विहार हैं।
कहैं मतिराम कवि लोगन कौं रीझिकर,
दीने ते दुरद जे चुवत मदधार हैं।

सत्रुसाल नन्द राव भावसिंह तेग त्याग,
तोसे और औनितल आज न उदार हैं।
हाथिन बिदारबे कों हाथ हैं हथ्यार तेरे,
दारिद बिदारबे कौं, हथि ये हथ्यार हैं।

महाकवि भूषण:—कवि भूषण के सम्बन्ध में विद्वानों में भिन्न भिन्न मत और भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं, इनके असली नाम। वंश-परिचय, तथा कविता काल को लेकर बहुत कुछ बाद-विवाद हुआ है। कोई इन्हें शिवाजी के दरबार में न रहकर उनके पौत्र साहूजी के दरबार में रहना कहता है और कोई इन्हें चिन्तामणि मतिराम, जटशंकर का भाई मानता है। वस्तुत: इनके सम्बन्ध में तर्क के अतिरिक्त ऐसी कोई ठोस सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी जिसके द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके! किंवदन्ती के अनुसार क्रमशः चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटशंकर चार भाई थे। कुछ ग्रन्थकारों ने केवल तीन भाइयों का ही उल्लेख किया है। किसी ने भूषण को बड़ा माना है और किसी ने चिन्तामणि को। आश्चर्य की बात यह है कि चारों या तीनों को सहोदर भाई मानने वाले ऐसा कोई प्रमाण नहीं देते जिससे कोई स्वस्थ विचारधारा पर पहुँचा जा सके। चिंतामणि शिवाजी के पितामह मकरन्दशाह भौंसला के आश्रित थे और भूषण महाराज शिवाजी और उसके बाद साहूजी के पास रहे। पीढ़ियों का यह अन्तर दोनों भाइयों के बीच सामञ्जस्य में बाधक है। स्वयं भूषण ने अपने सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसमें भी उन्होंने अपनी जन्म तिथि तथा भाइयों का कोई जिक्र नहीं किया है। इनके शिवराजभूषण नामक ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ में रचनाकाल भी नहीं है।

उपर्युक्त भ्रान्तियाँ फैलाने वाला पहला ग्रन्थ 'शिवसिंह सरोज' है। सरोज तथा कुछ सुनी सुनाई बातों के आधार पर ही परवर्ती लेखकों ने इन्हें चार भाई मान लिया।

कवि मतिराम ने भी इस सम्बन्ध में कोई प्रकाश नहीं डाला। मतिराम के पौत्र बिहारीलाल त्रिपाठी की 'रस चन्द्रिका' नामक टीका से कुछ दोहे उद्धृत करके इन्हें तीन भाई सिद्ध किया गया है। चौथे का वहाँ भी कोई स्थान नहीं। टीका के वे दोहे निम्नलिखित हैं

"बसत त्रिविक्रमपुर नगर, कालिन्दी के तीर।
विरच्यो भूप हमीर जनु मध्यदेश को हीर॥
"भूषण चिन्तामणि तहाँ,कवि भूषण मतिराम।
नृप हमीर सनमान तें, दीन्हें निज निज धाम॥
"हैं पंती मतिराम के, सुकवि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती विदित, सीतल सुत सुभचाल॥
"कस्यप वंश कनौजिया,विदित त्रिपाठी गोत।
कवि राजन के वृंद में, कोविद सुमत उदोत॥

उपर्युक्त दोहे जिस टीका से प्रस्तुत किये गये हैं उसकी रचना संवत् १८७२ में हुई। इन दोहों से यह अर्थ निकलता है कि कवि बिहारीलाल त्रिपाठी मतिराम के पौत्र कवियों में माननीय और तिकवाँपुर के रहनेवाले थे जहाँ चिन्तामणि और भूषण रहते थे। 'भूषण चिन्तामणि तहाँ कवि भूषण मतिराम' से यह आशय किसी भी प्रकार नहीं निकलता कि यह तीनों इसी क्रम से सहोदर भाई थे।

इनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि यह प्रारम्भ में कुछ कमाते नहीं थे और बड़े भाई चिन्तरमणि के सहारे पड़े रहते थे। एक दिन भोजन करते समय इन्होंने अपनी भावज से नमक माँगा। इस पर भावज ने व्यंग्य करते हुए कहा कि "क्या नमक कमाकर रख दिया है जो लाकर दे दूँ।"

यह बात इन्हें बहुत चुभी और भोजन छोड़कर घर से चले गये। तत्पश्चात देवी पर अपनी जिह्वा काट कर चढ़ा दी और देवी को प्रसन्न करके महान कवीश्वर होने का वरदान प्राप्त किया। जब शिवाजी के दरबार में इन्होंने यश के साथ प्रचुर धन भी कमाया तब एक लाख रुपये का नमक खरीदकर भावज के पास भेजा। उस समय एक लाख रुपये का नमक कितना हुआ और इतने नमक का क्या हुआ होगा, समझने की ही बात है ? जो हो यह स्पष्ट मालूम होता है कि यह परस्पर सहोदर भाई नहीं थे बल्कि एक ही स्थान पर रहने के कारण और सजातीय होने के कारण घनिष्ट सम्बन्ध रहा होगा। सम्भवतः ऐसी ही कोई बात इस किंवदन्ती के इस रूप तक पहुँची है।

इनको सहोदर भाई मानने वाले सिद्धान्त को अस्वीकार कर देने से बहुत सी ऐसी घटनाओं को तोड़ना मरोड़ना भी नहीं पड़ेगा जो इतिहास प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगों ने इन्हें परस्पर भाई मानकर ही कुछ घटनाओं को अनावश्यक रूप से तोड़ा-मरोड़ा है। इनके आश्रयदाता और कविता-काल की दृष्टि से हम जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं उसी का विवरण यहाँ दे रहे हैं।

इनका जन्म लगभग संवत् १७०० के हुआ था। यह जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण, त्रिपाठी रत्नाकर के पुत्र तथा तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) तहसील घाटमपुर, कानपुर के निवासी थे। इन्होंने शिवराज भूषण में अपने सम्बन्ध में जो प्रकाश डाला है, वे दोहे निम्नलिखित हैं:—

दुज कन्नौज कुल कस्यपी, रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर सदा, तरनि-तनूजा तीर॥
वीर वीरवर से जहाँ, उपजे कवि और भूप।
देव बिहारीश्वर जहाँ, विश्वेश्वर तद्रूप॥
कुल सुलंक चितकूट पति, साहस सील समुद्र,
कवि भूषन पदवी दई, हृदयराम सुत रुद्र।

उपर्युक्त दोहों से इनकी जन्म-भूमि, निवासस्थान और पिता के सम्बन्ध में सही बात मालूम हो जाती है। कवि बिहारीलाल त्रिपाठी के दोहों से जो यह ध्वनि निकलती है, कि नृप हमीर ने सम्मान के साथ निज-निज धाम देकर चिन्तामणि, भूषण और मतिराम को बसाया, भ्रांतिमूलक है क्योंकि यदि ऐसा कुछ होता तो भूषण उसका उल्लेख अवश्य करते।

कवि भूषण ने ऊपर उद्धृत पहले दोहे में 'सदा' शब्द का प्रयोग किया है, जो उनके तिकवाँपुर में परम्परागत निवासी होने की ओर स्पष्ट संकेत करता है। आज भी तिकवाँपुर गाँव में भूषण की देहरी प्रत्येक शुभ कार्य में पूजी जाती है। यद्यपि अब उनका मकान खंडहर के रूप में ही विद्यमान है। ग्रामवालों की श्रद्धा भूषण के ही प्रति है और उन्हीं के नाम पर उस जगह की पूजा होती है, अन्य किसी भाई का नाम वहाँ इतनी श्रद्धा से नहीं लिया जाता। इससे भी भूषण का इस गाँव से बहुत पुराना सम्बन्ध सिद्ध होता है।

मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म संवत् १६६२ और मृत्यु संवत् १७७२ में लिखी है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्म संवत् १७३८ लिखा है और घटनाओं का उल्लेख इससे पूर्व का किया है। निश्चय ही 'सरोजकार' का जन्म संवत् अशुद्ध है। भूषण का यह जन्मकाल न होकर कविता-काल है। मिश्र-बन्धुओं का संवत् अधिक समीचीन था किन्तु वे मृत्यु सं० १७७२ में लिखते हैं। जब कि भूषण की रचना इसके बाद की भी मिलती है अतः इनका जन्म संवत् १७०० के लगभग अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। संवत् १७२४ में यह शिवाजी के यहाँ पहुँचे। इसके पूर्व कुछ दिन चित्रकूटाधिपति के यहाँ रह चुके थे। यहीं उन्हें भूषण की उपाधि भी मिली थी।

शिवाजी के यहाँ पहुँचने के समय इनकी आयु लगभग २४ वर्ष की रही होगी। इसके पूर्व २-३ वर्ष यह रुद्रराम सोलंकी के यहाँ भी रहे होंगे। इन्होंने अपनी १७-१८ वर्ष की आयु से ही कविता लिखना आरम्भ किया था। संवत् १७३१–१७३२ में यह छत्रसाल बुंदेला के यहाँ जाकर फिर शिवाजी के पास चले गये थे। संवत् १७३७ में शिवाजी का स्वर्गवास हुआ तब यह लौट कर अपने घर चले आये। इस बीच में कभी-कभी छत्रसाल बुन्देला के यहाँ जाते-आते रहते थे। संवत् १७६४ में शिवाजी के पौत्र साहूजी को दिल्ली की कैद से मुक्ति मिली तब यह साहूजी के पास आकर रहने लगे। भूषण की मृत्यु संवत् १७६७ या संवत् १७६८ के लगभग हुई होगी। संवत् १७६७ में 'भगवन्त राय खींची' की मृत्यु पर इनका निम्नलिखित छन्द मिलता है:—

उठि गयौ आलम सौं, रुजुक सिपाहिन को,
उठि गयौ बँधैया सबै वीरता के बाने को।
भूषण भनत उठि गयौ है धरा सों धर्म,
उठि गयो सिंगार सबै राजा राव राने को।
उठिगो सुकवि सुसील, उठिगो जसीलो डील,
फैलो मध्य देश में समूह तुरकाने को।
फूटे भाल भिक्षुक के, जूझे भगवन्तराय,
अरराय टूट्यौ कुलखंभ हिन्दुआने को।

उपर्युक्त छन्द के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। किसी का मत है कि यह छन्द इनका नहीं और किसी का कहना है कि इतनी अधिक आयु में इतनी जोरदार कविता लिखना कठिन है। किंतु यह दलीलें लचर हैं। अनेकों साहित्यकार ऐसे मिलेंगे जिन्होंने अत्यधिक आयु में सर्वश्रेष्ठ साहित्य का सृजन किया है। वर्तमान युग के, वार्धक्य काल में भी यशस्वी रचना करने वाले महात्मा गाँधी, योगी अरविन्द, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ, बाबू भगवानदास के अतिरिक्त हिन्दी जगत

के सुप्रसिद्ध कवि श्री बचनेशजी आदि इसी कोटि के साहित्यकार हैं जिन्होंने अपनी ८० वर्ष की अवस्था में अपने जीवन की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ कीं हैं। अतः यह कहना कि वृद्धावस्था में अच्छी रचना नहीं हो सकती, निरर्थक और बेबुनियाद है। सर्व विदित है कि भूषण अपने युग के राष्ट्रप्रेमी तथा देश और जाति की स्वतन्त्रता का गान करने वाले प्रमुख कवि थे। धन के लालच में घर-घर फिरने वाले चाटुकार वे कभी नहीं बने। उन्होंने उन इतिहास-प्रसिद्ध पुरुषों के गीत गाये जिन्होंने देश में प्राण फूँके और उसकी सम्मान रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहुति दी। भगवन्तराय खीचीं भी ऐसे ही एक बीर योद्धा, हिन्दू-हितैषी, सुकवि, सुशील दानी और राजन्यवर्ग के शृङ्गार थे। ऐसे पुरुष की मृत्यु पर भूषण के हृदय से शोकोद्गार कैसे नहीं निकलते? साहूजी भोंसला और छत्रसाल बुन्देला के बाद अकेले भगवन्तराय खींची उस परम्परा के पोषकों में रह गये थे, जिसे शिवाजी जैसे स्वाभिमानी राजाओं ने चलाई थी। इस परम्परा को मिटते देख उसी परम्परा के समर्थक कवि का हृदय यदि इतने वेग से फूट पड़ा हो तो उसमें आश्चर्य और सन्देह की बात क्या है? इस छन्द के बारे में मिश्रबन्धुओं ने अपने द्वारा सम्पादित और काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "भूषण-ग्रन्थावली" के पृष्ठ २२ में लिखा है:—"यद्यपि इस छन्द की शैली कुछ तो भूषण की कविता से मिलती-जुलती है किन्तु ऐसे प्रवाहपूर्ण थोड़े बहुत छन्द कई अन्य कवियों ने भी बनाये हैं। इस छन्द को भूषण विषयक बाद में एक महाशय ने लिखा था। पहले जसवन्तराय का नाम लिखा था और पीछे भगवन्तराय का बतलाया गया था। छन्द मध्यदेश के किसी राजा का कथन करता है किन्तु भगवन्तराय युक्त प्रान्त के निवासी थे। बाद कर्ता महाशय खींचतान करके युक्त प्रान्त ही को मध्यदेश बतलाते हैं। छन्द मुक्तक मात्र है और किसी प्रामाणिक रीति से इसका भूषणकृत होना सिद्ध नहीं किया गया।"

मिश्रबन्धुओं के निर्णय बिना किसी आधार के प्रायः हुए हैं। किसी भी प्राचीन छन्द तथा प्राचीन कवियों की रचनाओं की प्रामाणिकता, भाषा, शैली, विषय और काल से ही आँकी जा सकती है। यदि इस कसौटी पर कसने में आना-कानी की जाय तो संभवतः सम्पूर्ण प्राप्त पुरानी सामग्री की प्रामाणिकता संदिग्ध हो जायगी। दूसरा तर्क भगवन्तराय के स्थान पर जसवन्तराय का होना है। यह भूल पाठ-भेद के कारण हुई है, क्योंकि भगवन्तराय के स्थान पर जसवन्तराय का होना किसी भी दृष्टि से प्रमाणित नहीं होता। जसवन्तराय नाम का कोई भी राजा हिन्दू स्तम्भ, सुकवि तथा दानी के रूप में प्रसिद्ध नहीं है। और न कहीं इतिहास में इसकी चर्चा ही मिलती है। जब कि उपर्युक्त छन्द में एक दानी, हिन्दू हितैषी, सुकवि, वीर योद्धा तथा धार्मिक राजा का वर्णन है और यह सभी गुण भगवन्तराय में थे, यह इतिहास प्रसिद्ध है और अनेक कवियों ने इस पर लिखा भी है। तीसरी आपत्ति मिश्रबन्धुओं की "मध्यदेश" पर है। इस पर विचार आवश्यक है। इतिहास प्रसिद्ध है कि "मध्यदेश उस समय वर्तमान उत्तर प्रदेश का ही नाम था। मध्यदेश का अर्थ वर्तमान सी० पी० से लेना सर्वथा अग्राह्य है। उस समय की कविताओं में भी उत्तर प्रदेश के लिये मध्यदेश का प्रयोग हुआ है।

मतिराम के पौत्र बिहारीलाल त्रिपाठी ने भी अपने वंश परिचय में जन्म स्थान तिकवाँपुर को "मध्यदेश को हीर" लिखा है। इस प्रकार मिश्रबन्धुओं की आपत्तियाँ जो उन्होंने इस छन्द में की हैं, समाप्त हो जाती हैं।

छन्द की भाषा, शैली और भाव पर भूषण की छाप है। साथ ही इस छन्द में एक ऐसे कवि का हृदय बोल रहा है जो हिन्दी जाति का एकमात्र साहित्यिक प्रतिनिधि कवि के रूप में अपने युग में प्रतिष्ठित रहा। निसन्देह यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त छन्द भगवन्तराय विषयक है और भूषण-कृत भी।

"शिवराज भूषण" नामक ग्रन्थ के कुछ छन्दों के उदाहरण देते हुए कई विद्वानों ने भूषण को शिवाजी के समकालीन न मान कर साहूजी के यहाँ होना स्वीकार किया है। इन विद्वानों का कथन है कि 'शिवराज-भूषण' में कुछ छन्द ऐसे मिलते हैं जिन में शिवाजी को अवतार माना गया है, और ऐसे छन्द शिवाजी के जीवन-काल में नहीं लिखे जा सकते। यह बात बहुत अंशों में सही है परन्तु 'शिवराज-भूषण' महाकाव्य न होकर स्वतंत्र लक्षण-ग्रन्थ है। उसके छन्दों में न तो विषय-संबंद्धता है और न कोई घटना-क्रम ही। छन्दों में भिन्न-भिन्न घटनाओं का वर्णन, लक्षण की दृष्टि से किया गया है। इस ग्रन्थ का निर्माण—काल इस प्रकार दिया गया है :—

'सुभ सत्रह सै तीस पर, बुध सुदि तेरस मान।
भूषन सिवभूषन कियो, पढ़ियो सुनो सुजान॥'

इसके अनुसार 'शिवराज—भूषण' का निर्माण संवत १७३० शुक्ल पक्ष त्रयोदशी बुधवार निश्चित होता है। महीने का उल्लेख नहीं है। मिश्र बन्धुओं ने कार्तिक मास लिखा है। कुछ विद्वान 'दोहे' को बाद का जोड़ा हुआ मानते हैं। इस दोहे में कई प्रतिलिपियों में पाठ-भेद मिलता है। उपर्युक्त दोहे के अनुसार ग्रन्थ-रचना संवत् १७३० में हुई जबकि शिवाजी जीवित थे। 'शिवराज—भूषण' में बहुत सी ऐसी घटनाओं का वर्णन है जो काल की सीमाओं को तोड़ देता है। इससे यह जान पड़ता है कि 'शिवराज-भूषण' के छन्द स्फुट रचे गये होंगे। बाद में किसी ने उनका संग्रह करके शिवाजी के नाम के साथ उनके जीवन—काल की तिथि भी लिख दी होगी। संभवतः इसी कारण से न तो शिवराज भूषण में घटना क्रम है और न विषय की एकरूपता। अनुमान किया जाता है कि शिवाजी के साथ रह कर जो छन्द भूषण ने रचे और उनकी मृत्यु के पश्चात साहूजी के पास रह कर शिवाजी की प्रशंसा में लिखा, वह इस ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। साहूजी के दरबार में भूषण ने शिवाजी

को यदि अवतार मान कर वर्णन किया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि एक तो शिवाजी हिन्दूमात्र के पूज्य थे और दूसरे भूषण उनसे अत्यधिक प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त साहूजी को उनके दादा की कीर्ति-विस्तार के साथ सुनाकर उनसे उसी परम्परा को बनाये रखने तथा निभाने की ओर भी उनका ध्यान आकर्षित करना था। निश्चय ही जिन छन्दों में शिवाजी को अवतारकहा गया है वे उनकी मृत्यु के बाद रचे गये होंगे। 'शिवराज-भूषण' के इस प्रकार के छन्द भूषण को शिवाजी से पृथक नहीं कर देते।

भूषण पर विचार करते समय यह न भूलना चाहिए कि भूषण शिवाजी के साथ लगभग १३-१४ वर्ष तक रहे और उनकी मृत्यु के पश्चात लगभग ६० वर्ष और जीवित रहकर शिवाजी की चलाई परम्परा के पोषक और साहूजी तथा छत्रसाल बुन्देला जैसे राजाओं का यश वर्णन करते रहे। शिवाजी की कई लड़ाइयों का भूषण ने इस प्रकार वर्णन किया है जो आँखों देखने वाला व्यक्ति ही कर सकता था। कल्पना के द्वारा वह बात आही नहीं सकती जो उनके अनेक छन्दों में दिखाई पड़ती है। शिवाजी और भूषण का संबंध बिना सोचे समझे विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। यदि भूषण शिवाजीके साथ न रहे होते तो वे साहूजी का वर्णन अधिक करते, शिवाजी का कम। वस्तुतः शिवाजी के कुछ वर्षों के साथ ने, भूषण के हृदय पर अपनी ऐसी छाप डाल दी थी कि उनकी कविता शिवामय हो गई।

इनके लिखे हुए 'भूषण-उल्लास' 'दूषण-उल्लास' 'भूषण-हजारा' 'छत्रसाल-दशक' और शिवराज-भूषण' तथा 'शिवा बावनी' नामक ग्रन्थ कहे जाते हैं। भूषण-उल्लास और दूषण उल्लास का केवल नाम ही सुना जाता है और भूषण-हजारा का उल्लेख कालिदास त्रिवेदी ने अपने 'हजारा' में किया है। शिवराज-भूषण' 'छत्रसाल-दशक' तथा 'शिवा-बावनी' नामक ग्रन्थ प्राप्त हैं। सम्भवतः 'शिवा बावनी' में ऊपर लिखे ग्रन्थों के छन्द संगृहीत हों। वस्तुतः ये तीनों ही ग्रन्थ बाद को संगृहीत किये जान पड़ते हैं। 'शिवा-बावनी' के सम्बन्ध में एक जनश्रुति चली आती है

कि इसमें वे ही ५२ छन्द संगृहीत हैं जो भूषण ने सैनिक-वेषधारी शिवाजी को सुनाये थे। जो हो, इतना तो स्पष्ट है कि भूषण शिवाजी के साथ रहे थे।

यह अपने युग के महान प्रतिभाशाली कवि थे। धन के साथ यश-लाभ जितना इन्होंने किया उतना यश इस युग के अन्य किसी कवि को प्राप्त नहीं हुआ। इनकी कविता में ओज है, मधुरता है, शब्द-चयन और अलंकार-विधान श्रेष्ठ है। शब्दों की तोड़-मरोड़ भी इन्होंने कहीं कहीं की है। उपमाएँ सुन्दर और सुरुचिपूर्ण हैं। लक्षण-ग्रन्थ लिख कर इन्होंने आचार्यत्व का अच्छा परिचय दिया है। परन्तु रीति-काल के अन्य आचार्यों से ये आगे नहीं बढ़ सके। इन्होंने लक्षण उदाहरण सहित प्रस्तुत किये हैं, फिर भी यह आचार्य से अधिक कवि हैं। इनकी कविता आचार्यत्व के बोझ से नहीं लदी अपितु इनके आचार्यत्व पर इनके कवि का गहरा प्रभाव है। रचनाओं का उदाहरण :—

इन्द्र जिमि जंभ पर, वाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज हैं।
पौन बारि बाहु पर, संभु-रतिनाह पर
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
दावाद्रुम दंड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ वंश पर सेर सिवराज हैं।

× × × ×

इन्द्र निज हेरत फिरत गज इन्द्र अरु,
इन्द्र को अनुज हेरै, दुगध नदीस को।
'भूषन' भनत सुर सरिता को हंस हेरै,
बिधि हेरै हंस को, चकोर रजनीस को।

साहि तनै सिवराज करनी करी है तैं जु,
होत है अचम्भो देव कोटियौ तेंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस में हिराने निज,
गिरि कौ गिरीस हेरैं, गिरजा गिरीस को।

× × ×

तेरो तेज सरजा समत्थ ! दिनकर सोहै,
दिनकर सोहै, तेरे तेज के निकर सों।
भोंसिला भुवाल तेरो जस हिमकर सोहै,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो।
"भूषन" भनत तेरो हियो रतनाकर सो,
रतनाकरौ है तेरे हिय सुखकर सो।
साहि के सपूत सिवसाहि दानि तेरो कर
सुरतरु सोहै सुरतरु तेरे कर सो।

× × ×

प्रेतिनी पिसाचरु निसाचर निसाचरहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिमि डिमि डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछें सिवसों समाजु आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है।

× × ×

बद्दल न होंहिं दल दच्छिन घमंड माँहि,
घटा हू न होंहिं दल सिवाजी हँकारी के।
दामिनि दमंकि नाहिं खुले खग्ग वीरन के,
वीर सिर छाय लखु तीजा असवारी के।

देखि देखि मुगलों की हरमें भवन त्यागें,
उझकि उझकि उठैं बहत बयारी के।
दिल्ली मति भूली कहै बात घन घोर घोर,
बाजत नगाड़े ये सितारे गढ़धारी के।

भूषण ने शिवा जी के अतिरिक्त अपने अन्य आश्रयदाता एवं सम्मान-कर्ताओं पर भी छन्द लिखे हैं। इनमें 'छत्रसाल-दसक' नामक ग्रन्थ में छत्रसाल-हाड़ा बूँदी नरेश पर दो और छत्रसाल बुन्देला पर ८ छन्द संग्रहीत हैं। छत्रसाल बुन्देला हिन्दू जाति के रक्षकों में इतिहास प्रसिद्ध हैं। जो काम शिवा जी ने महाराष्ट्र में किया वही काम बुन्देलखण्ड में महाराजा बुन्देला ने किया। इन्होंने भूषण का अत्यधिक सम्मान किया था। कहा जाता है कि जब महाकवि भूषण इनके यहाँ पधारे तो इन्होंने [यह सोच कर कि भूषण को जितना कुछ शिवा जी दे चुके हैं; उतना तो क्या, उसका आधा भी देने योग्य मैं नहीं हूँ] भूषण के सम्मानार्थ उनकी पालकी में अपना कन्धा लगा दिया था। उनकी इस अनुपम एवं अपूर्व श्रद्धा से प्रभावित होकर भूषण जी पालकी से उतर पड़े और इनकी प्रशंसा में निम्न छन्द कहा:—

"राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गजतुरी पैदरि कतार दीन्हें,
'भूषन' भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को।
और राव-राजा एक मन में न ल्याऊँ अब-
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।*

*—इस पंक्ति को कुछ लोग इस प्रकार कहते हैं:—
"सिवा को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।"

छत्रसाल बुन्देला के सम्बन्ध में भूषण ने और भी छन्द लिखे हैं। जिनमें से दो यहाँ दिये जाते हैं:—

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलैभानु कैसी,
फारै तम-तोम से गयंदन के जाल को।
लागति लपटि कण्ठ बैरिन के नागिन सी,
रुद्रहि रिझावै दै दै मुण्डन के माल को।
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करबाल को।
प्रतिभट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को।

× × ×

भुज भुजगेस की है संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरिन बीच फँसि जात मीन,
पैरि पारजात परवाह ज्यौं जलन के।
रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज,
'भूषन' सकत को बखानि यों बलन को।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने वर छीने हैं खलन के।

बूंदी नरेश छत्रसाल हाड़ा मुगल राज्य के वफादारों में से थे और बहुत सी लड़ाइयों में अपने पराक्रम से मुगल बादशाह को विजय दिलाई थी। संवत् १७१५ में दारा और औरंगजेब की जो लड़ाई दौलतपुर में राज्यार्थ हुई उसमें इन्होंने औरंगजेब के विरुद्ध दारा का साथ दिया था। इसी युद्ध में इनकी मृत्यु हुई। इनकी प्रशंसा में जो छन्द भूषण ने लिखे हैं, वे बहुत सुन्दर हैं। प्रश्न उठता है कि जब वे दिल्ली तख्त के खैर-

ख्वाह थे तो भूषण जैसे कवि ने इनकी प्रशंसा क्यों की? सम्भवतः इसका कारण इनका औरंगजेब के विरुद्ध लड़ना तथा मुगल राज्य की रक्षा के लिए ही लड़ो, एक ऐसा हिन्दू वीर योद्धा के रूप में देखना था कि जिसकी प्रशंसा करना हिन्दू जाति की वीरता को प्रदर्शित करना था। इनकी वीरता पर भूषण मुग्ध थे। भूषण ने दोनों छत्रसालों की प्रशंसा करते हुए अन्तर भी स्पष्ट कर दिया है:—

इकहाड़ा बूंदी धनी-मरद महेवा बाल।
सालत नौरङ्गजेब को ये दोनों छतसाल॥
वै देखो छत्ता पता ये देखो छतसाल।
वै दिल्ली की ढाल ये दिल्ली ढाहनवाल॥

छत्रसाल हाड़ा विषयक दोनों छन्द नीचे दिये जाते हैं:—

चले चन्दवान घनवान औ कुहुकवान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रह्यो
चली जमडाढ़ैं बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ।
लोह आंच जेठ के तरनिमान वै रह्यो॥
ऐसे समै फौजें विचलाईं छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाये पाँय वीर रस च्वै रह्यो।
हय चले हाथी चले संग छोड़ साथी चले,
ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो।

× × ×

दारा साहि नौरंग जुरे हैं दोऊ दिल्ली दल,
एकै गये भाजि एकै गये रुँधि चाल में।
बाजी कर कोऊ दगाबाजी कर राखी जेहिं,
कैसे हू प्रकार प्रान बचत न काल में।
हाथी ते उतरि हाड़ा जूझो लोह लंगर दै,
एती लाज कामें जेती लाज छत्रसाल में।
तन तरवारिन में मन परमेसुर में,
प्रान स्वामि कारज में माथो हर माल में।

नीलकण्ठ—इनका उपनाम जटाशंकर था। चिन्तामणि, भूषण और मतिराम के ये छोटे भाई कहे जाते हैं। कुछ लोग इन्हें कवि भी नहीं मानते। पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा मिश्र बन्धुओं ने इनको भूषण के साथ तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें इतिहास में चिन्तामणि के साथ नामोल्लेख भर किया है। शिवसेंगर ने इनकी दो रचनाएँ 'सरोज' में उद्धृत की हैं। ठाकुर साहब ने लिखा है कि "दास जी ने इनकी प्रशंसा ब्रजभाषा जानने की है। इनका कोई ग्रन्थ हमने नहीं देखा।" काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की हस्तलिखित पुस्तकों की खोज रिपोर्ट सन् १९०३ में नीलकण्ठ त्रिपाठी की 'अमरेश-विलास' नामक ग्रन्थ प्राप्त होने की सूचना दी गई है। इस ग्रन्थ का रचना-काल संवत् १६९८ है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने नीलकण्ठ मिश्र और नीलकण्ठ त्रिपाठी भ्रमवश दो कवि लिखे हैं। इस भ्रम का कारण दास जी की निम्नलिखित पंक्ति है:—

"लीलाधर, सेनापति, निपट-निवाज, निधि,
नीलकण्ठ, मिश्र सुखदेव, देव मानिए।"

इस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट है कि नीलकण्ठ और सुखदेव मिश्र न कि नीलकण्ठ मिश्र और सुखदेव। दूसरी बात यह भी है कि जो दो-दो छन्द 'सरोजकार' ने दोनों कवियों के नाम से उद्धृत किये हैं उनकी शैली भी एक ही है।

उदाहरणार्थः—

"तन पर भारती न तन पर भारतीन,
तन पर भारतीन तन पर भार हैं।
पूजैं देवदार तीन पूजैं देवदारतीन,
पूजैं देवदार तीन पूजैं देवदार हैं।

नीलकण्ठ दारुण दलेल-खाँ तिहारी धाक,
नाकती न द्वार ते वै नाकतो पहार हैं।
आँधरे न कर गहे बाहरे न संग रहे,
बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार हैं।"

जहाँ तक इनके चिन्तामणि, भूषण, मतिराम के भ्रातृत्व का सवाल है उसमें कुछ सत्यता नहीं जान पड़ती। अगर ये चारों में से कोई भाई हो सकते हैं तो चिन्तामणि और नीलकण्ठ ही। 'सरोजकार' ने इनका जन्म संवत् १७३० लिखा है। वस्तुतः यह इनका रचनाकाल है और इसी के आसपास इनकी मृत्यु हुई। अनुमानतः इनका जन्म संवत् १६६५-१६७० के लगभग हुआ। अधिक ख्याति अर्जित न कर पाने के कारण इनके प्रति उदासीनता बरती गई है। इनके आश्रयदाता भी जन-प्रिय नहीं थे। सम्भवतः इसी कारण से इन्होंने जो कविता उनकी प्रशंसा में लिखी, वह समय के कराल गाल में चली गई।

इनकी कविता साधारण है। अनुप्रासों की छटा लगभग सभी छन्दों में है। यह ब्रजभाषा के महाकवि भले ही न हों पर कवि अवश्य ही थे। एक और रचना देखिये:—

खरी डर भरीभर भरी उर परी रहै,
भरी भरी जात ज्यों-ज्यों राति नियराति है।
मुख रस रीति प्रीति सखिन सौं राखत पै।
तन की न तन में प्रतीत अधिकाति है।
नीलकण्ठ सोहत सकुच भये गातन सों,
सुरति की बात न सुनति अनखाति है।
हिये तन ताकि कसि बाँधे अँगिया की तनी,
पिय तन ताकि प्यारी पीरी परी जाति है।

कालिदास त्रिवेदी—इनका जन्म संवत् १७१० के लगभग कानपुर की तहसील घाटमपुर के बनपुर नामक ग्राम में हुआ था यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पुत्र कवीन्द्र उदयनाथ तथा पौत्र कवि दूलह रीति-काल के प्रसिद्ध कवियों में हुए हैं। पहले ये औरंगजेब के साथ बहुत दिनों तक दक्षिण में रहे। संवत् १७०५ की गोलकुण्डा की लड़ाई का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन इन्होंने निम्न लिखित छन्द में किया है:—

गढ़न गढ़ी से गढ़ि, महल मढ़ी से मढ़ि
बीजापुर ओप्यो दलि मलि सुघराई में।
कालिदास कोप्यो बीर औलिया अलमगीर,
तीर तरवार गही पुहमी पराई में।
बूँद ते निकसि महि मंडल घमंड मची,
लोहू की लहर हिमगिरि की तराई में।
गाड़ि कै सुझंड़ा आड़ि कीन्हीं पातसाह ताते,
डकरी चमुन्डा गोलकुण्डा की लराई में।

ये जंबू नरेश महाराजा जोगाजीत के यहाँ भी रहे। इन्हीं के नाम पर "बारबधू विनोद" नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त इनके दो ग्रन्थ और प्रसिद्ध हैं पहला ग्रन्थ-कालिदास हजारा, और दूसरा ग्रन्थ 'जंजीरा बंद'। "बार बधू-विनोद' में नायिका-भेद तथा नख-शिख का विशद वर्णन है। यह ग्रन्थ संवत् १७४६ में बना जैसा कि इन्होंने स्वयं भी लिखा है :—

"संवत् सत्रह सौ उनचास, कालिदास किय-ग्रन्थ विलास।
वृत्तसिंह नन्दन उद्दाम, जोगाजीत नृपति के नाम॥"

कालिदास हजारा इनका अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें संवत् १४८० से लेकर १७५० तक के दो सौ बारह कवियों की एक हजार कविताएँ संग्रहीत हैं। ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है कि सरोज को तैयार करने में उन्हें इससे बहुत

सहायता मिली है। 'जँजीरा बन्द' बत्तीस सुन्दर घनाक्षरी छन्दों का संग्रह है। इसमें इनकी काव्य कुशलता का परिचय मिल जाता है। मिश्र-बन्धुओं ने अपने पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की मुद्रित प्रति का उल्लेख करके हुए लगभग ७० स्फुट छन्द और होने की सूचना दी है। सरोजकार ने तीनों ही ग्रन्थ अपने पास होना लिखा है। खोज में 'राधा-माधव-बुध मिलन-विनोद' नामक एक ग्रन्थ का और पता चला हैं। इनकी कविता बड़ी ही सरस तथा अलंकृत है। भाषा सानुप्रास और प्रवाह युक्त है। मिश्रबन्धुओं ने इन्हें पद्माकर की श्रेणी में रखा है जो अतिशयोक्ति है। महाकवि पद्माकर से इनकी तुलना नहीं की जा सकती। ये शृंगारी कवि थे :—

हाथ॰ हँसि दीन्हौं मीति अन्तर परसि कारो,
देखति ही छकी मति कान्हर प्रवीन की।
निकस्यौ झरोखा माँझि विकस्यौ कमल सम,
ललित अँगूठी तामै चमक चुनीन की।
कालिदास तैसी लाल मेंहदी के बुन्दन की,
चारु नख चन्दन की, लाल अँगुरीन की।
कैसी छबि छाजत है छाप औ छलान की,
सु कंकन चुरीन की जड़ाऊ पहुँचीन की।

× × ×

चूमौं कर कंज मंजु अमल अनूप तेरौ,
रूप के निधान कान्ह मोतन निहारि दे।
कालिदास कहै मेरे पास हँसि हेरि हरि,
माथे धरि मुकुट लकुटि कर डारि दे।
कुँवर कन्हैया मुख चन्द की जुन्हैया चारु,
लोचन चकोरन की प्यासन निवारि दे।
मेरे कर मेंहदी लगी है नन्दलाल प्यारे,
लट उलझी है नकबेसरि सँवारि दे।

कवीन्द्र उदयनाथ(१७३६-१८२०)—यह पुराबन निवासी कालिदास त्रिवेदी के पुत्र और कवि दूलह के पिता थे। यह अमेठी के राजा हिम्मत सिंह के यहाँ बहुत दिनों तक रहे।.इन्हीं महाराज के नाम से "रस-चन्द्रोदय" नामक ग्रन्थ दूलह को पढ़ने के लिए बनाया। इन्होंने स्वयं लिखा है:—

संवत् सकत अठारह चार, नायकादि नायक निरधार।
लह कविन्द लचित रस पंथ, किय विनोद चन्द्रोदय ग्रन्थ ॥

× × × ×

कालिदास कवि के सुवन उदय नाथ सरनाम।
भूप अमेठी ने दियो रीझि 'कविन्द' सुनाम ॥

तासु तनय दूलह भयो ताके पढ़िबे हेतु।
रस चन्द्रोदय तब कियो कवि कविंद करि चेतु ॥

राजा हिम्मत सिंह के पश्चात् उनके पुत्र गुरुदत्त सिंह के पास भी ये कुछ दिन रहे। तत्पश्चात् भगवन्तराय खींची, गजसिंह तथा राव बुद्ध हाड़ा बूँदी वाले के यहाँ गये जहाँ इनका बहुत सम्मान हुआ। इनके द्वारा रचित "जोग-लीला" नामक ग्रन्थ एक और प्राप्त है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल का पता नहीं चलता। लिपिकाल संवत् १९०४ है। मिश्रबन्धुओं ने इनकी शृङ्गाररस की रचनाओं की प्रशंसा करते हुये इन्हें पद्माकर जी की श्रेणी में रखने की सिफारिश की है। किन्तु यह सर्वथा अनुचित है। इन्होंने अपने सभी आश्रयदाताओं की प्रशंसा में छन्द लिखे हैं। रचनाएँ देखिये:—

शहर मँझारत पहर एक लागि जैहै,
छोर में नगर के सराय है उतारे की।

कहत कविन्द मग माँझि ही परैगी साँझ,
खबर उड़ानी है बटोही द्वैक मारे की।

घर के हमारे परदेस को सिधारे याते,
दया के बिचारे हम रीति राह बारे की।
उतरौ नदी के तीर बर के तरे ही तुम,
चौकौ जनि चौकी तहाँ पाहरू हमारे की।

× × ×

राजै रस में री तैसी बरसा समै री चढ़ी,
चंचला नचैरी चकचौंध कौंधा वारैं री।
व्रतीव्रत हारैं हिये परत फुहारैं कछू,
छोरैं कछू धारैं जलधर जलधारैं री।
भनत कविन्द कुंज भौन पौन सौरभ सो,
काके न कँपाय प्रान परहथ पारैं री।
काम के तुका से फूल डोलि-डोलि डारैं मन,
औरे किये डारैं येकदम्बन की डारैं री।

इन्द्रजीत त्रिपाठी—(जन्म संवत् १७३९) यह बनपुर ग्राम के निवासी तथा जाति के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। औरंगजेब के यहाँ नौकर थे। इनका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं। स्फुट रचनाएँ भी थोड़ी ही मिलती हैं। उदाहरण देखिए:—

चहचही चटकीली चुनि चुनि चातुरी सौं,
चोखी चारु चाँदनी की रँगी रँग गहरे।
कंचन किनारी तापै लागी छोरलौंहैं खुली,
दामिनी सी गोरे गात प्यारी सारी पहरे।
इन्द्रजीत धनुष सों कही न परत छवि,
आनन झलक चहुँ ओर ऐसी छहरे।
गहगही पँचरंग महमही सोंधे सनी,
लहलही ये लहरिया की लहरे।

संतन—यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण, वंसथी के पाँडे तथा जाजमऊ के निवासी थे। इनका कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं और न स्फुट छन्द ही मिलते हैं। इनके समकालीन संतन नाम के एक दूसरे कवि बिन्दकी में भी थे। कुछ लोग दोनों को एक समझते थे, परन्तु इन्होंने स्वयं ही अपने को बिन्दकी वाले संतन से अलग घोषित करते हुए दोनों के बीच का अन्तर भी स्पष्ट कर दिया है। यह गरीब थे और काने भी :—

वै वरुदेत लुटाय भिखारिन,
ये विधि पूरब दानि गऊ के।
द्वै अँखियाँ चितवैं उत वै,
इत ये चितवैं अँखिया यकऊ के।
वै उपमन्यु दुबे जग जाहिर,
पाँडे वनस्थी के ये मधऊ के।
वै कवि संतन हैं बिन्दुकी,
हम हैं कवि संतन जाजमऊ के।

दूलह—ये बनिपुरा के अंतर्गत नौगवाँ ग्राम के निवासी, कवि कालिदास त्रिवेदी के पौत्र एवं कवि उदयनाथ के पुत्र थे। इनकी काव्य-प्रतिभा अपने दादा और पिता दोनों से ही अच्छी थी। रीतिकालीन कवियों में इनका मुख्य स्थान है। ठा० शिवसिंह सरोज ने इनका जन्म संवत् १८०३ लिखा है। यह तो निश्चित है कि इनके पितामह संवत् १७४५ की बीजापुर गोलकुण्डा की लड़ाई में बादशाह के साथ थे और संवत १८०४ में इनके पिता ने 'रस-चन्द्रोदय' ग्रन्थ महाराज हिम्मतसिंह के नाम इन्हीं के पढ़ने के लिए बनाया था। मिश्रबन्धुओं ने इनका जन्म संवत् १७७७ और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने संवत् १७६१ के लगभग अनुमाना है। हमें मिश्रबन्धुओं का

मत ही अधिक समीचीन लगता है। यदि श्री रामनरेश जी के अनुसार इनका जन्म संवत १७६१ मानें तो 'रस-चन्द्रोदय' जो संवत् १८०४ में इनके पढ़ने के लिए बनाया गया था, उस समय इनकी आयु ४३ वर्ष की ठहरती है। इतनी प्रौढ़ावस्था में इन्हें काव्यशास्त्र का ज्ञान कराया गया हो, यह बात विश्वास करने योग्य नहीं।

इनका रचा हुआ 'कवि-कुल-कण्ठाभरण' नामक एक ही ग्रन्थ प्राप्त है। रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थों में 'कण्ठाभरण' का नाम सदैव आदर के साथ लिया जाता है। यह जितने ही सुन्दर कवि हैं, उतने ही अच्छे आचार्य भी। डाक्टर भगीरथ मिश्र ने अपने "हिन्दी-काव्य-शास्त्र के इतिहास" में लिखा है :—

'कवि-कुल-कण्ठाभरण' अलंकार का बड़ा ही प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें दूलह ने एक सौ सत्रह अलंकारों का बड़ी संक्षेप रीति और सफाई के साथ वर्णन किया है और यह ग्रंथ यथार्थ में ही कवि-कुल-कण्ठाभरण रहा है। दूलह के कवित्त एवं आचार्यत्व दोनों इसी में सुरक्षित हैं।'

इस ग्रंथ में ८१ छन्द हैं। संस्कृत-लक्षण-साहित्य के कुवलयानन्द और चन्द्रालोक के मत का इसमें प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ में रचना काल नहीं है, और न किसी को समर्पित ही किया गया है। निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इस ग्रंथ की रचना कब हुई। इनकी कविता सरस और सुन्दर है। शब्द-चयन और अलंकार-विधान उत्तम है। यह घोर शृंगारी कवि थे। इनकी रचनाओं में कहीं कहीं अश्लीलता अपनी चरमसीमा को पहुँची है। कुछ स्फुट छन्द भी इनके मिलते हैं। इनकी प्रशंसा में किसी ने लिखा है :—

'और बराती सकल कवि, दूलह दूलहराय'

रचनाओं का उदाहरण :—

सारी की सरौंटैं सब सारी में मिलाय दीन्हीं,
भूषन की जेब जैसे जेब जहियत है।
कहै कवि दूलह छिपाये रद छद मुख,
नेह देखे सौतिन की देह दहियत है।
बाला चित्रसाला ते निकरि गुरुजन आगे,
कीन्हीं चतुराई सो लखाई लहियत है।
सारिका पुकारैं हम नाहीं हम नाहीं एजू,
राम राम कहौ नाहीं नाहीं कहियत है।

× × × ×

पौढ़ी परजंक पर कोमल कनकलता,
लागे द्वै कनकगिरि कनक विसाल है।
कहै कवि दूलह सुअंगन सहित तामें,
तरुन तमाल छवि झलकत जाल है।
कमल के नाल पर राजत जुगल रम्भा,
रम्भा पै कमल जुग सोभित सनाल है।
कमल पै कुरविंद कुरविंद पर चन्द,
चन्द पर चढ़े चारु बोलत मराल है।

× × × ×

धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं, पाँय-
दियो पलकाहीं नाहीं नाहीं कै सुहाई हौ।
बोलत में नाहीं पट खोलत में नाहीं कवि,
दूलह उछाहीं लाख भाँतिन सुहाई हौ॥
चुम्बन में नाहीं परिरम्भन में नाहीं सब,
आसन बिलासन में नाहीं ठीक ठाई हौ।
मेलि गलबाँहीं केलि करी चितचाही यह,
हाँ ते भली नाहीं सो कहाँ से सीखि आई हौ॥

गुरुदत्त—ये तहसील बिल्हौर में मकरन्दपुर कहिंजरी ग्राम के निवासी तथा कान्यकुब्ज शुक्ल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम सबली था। यह तीन भाई थे। ये, शिवनाथ और देवकीनन्दन। 'पक्षी-विलास' नामक इनका लिखा हुआ ग्रन्थ प्राप्त है। इनकी कविता अनुप्रासयुक्त तथा सरस है।

उदाहरण देखिये:—

यह बंधु अहै बड़वानल कोंनथ मोती यों ज्वाला से जागत है।
यह सीस के फूलहु ताप करैं तन नागर मों विष पागत है।
मृदुहार हिये कसकै गुरुदत्त कठोर उरोजन लागत है।
यह दाग कपोलन में सितलान को दाग करेजे में दागत है।

× × × ×

सुख बालपने को भयो सपनो मुख मातु पिता को न साथ चरो।
जग-जीवन हू को न स्वाद मिलो जुवती-उन्माद सो वादि टरो॥
पनतीजे में तू अपने मन में गुरुदत्त कहा धौं गरूर करो।
अब टेक यहै करिये सुकजू भजौ राम अजौं पिंजरा में परो।

शिवनाथ शुक्ल—ये देवकीनन्दन के भाई थे। इन्होंने रीवाँ के राज्यपरिवार की वंशावली बनाई है। ये 'नाथ' उपनाम से लिखते थे। 'नाथ' नाम के कई कवि समकालीन होने के कारण इनकी रचनाओं को छाँट कर अलग करना बड़ा कठिन हो गया है।

प्रति प्रीति प्रिया विपरीत रची रति रंग तरङ्ग बहारन को।
नचै वेग ते वेसर को मुकता चित वित्त हरै दृग सारन को।
वह नाथ के सौंहें न डीठि करै गड़जात है नीठि निहारन को।
रति कूजति गान की तान मनो निहुरे ससि लेत है तारन को।

देवकीनन्दन—(१८०१-१८७७) ये मकरन्दपुर ग्राम के निवासी और शिवनाथ तथा गुरुदत्त के भाई थे। अन्य भाइयों से इनकी रचना सुन्दर है। इनके बनाये हुए 'श्रृंगारचरित' "अवधूत भूषण" तथा "सरफराज-चन्द्रिका" नामक एक और ग्रन्थ का पता चला है। उदाहरण:—

मोतिन की माल तोरि चीर सब चीर डारे,
फेरि के न जैहों आली दुख विकरारे हैं।
देवकीनन्दन कहें धोखे नाग छौनन के,
अलकें प्रसून नोचि नोचि निरवारे हैं।
मानि मुख-चन्दभाव चोंच दई अधरन,
तीनों ये निकुंजन में एकै तार तारे हैं।
ठौर ठौर डोलत मराल मतवारे तैसे,
मोर मतवारे त्यौं चकोर मतवारे हैं।

× × × ×

वैद गुनी के छुए ससकें, करवार सी पातरी जो मैं चढ़ावों।
दाँतन दाबतीं जीभ इतै, उतै बाल की आँख रुखाई बचावों।
देवकीनन्दन मोकों कहा दुख, कासों कहौं इत काहि लखावों।
छोड़िहौं गाँव बवा किसौं कान्ह, चुरी पहिरावन मैं नहिं आवों।

शीतल त्रिपाठी—ये तिकवांपुर निवासी मतिराम के पौत्र तथा बिहारीलाल के पिता थे।

उदाहरण:—

"आजु अकेली उताहिली है तट लौं पहुँची तुम आई करार में।
साथ सखीन के हाहा किए, पग हौं हूँ दियो जल केलि विहार में।
सीतल गात भये सिथिले, उधरी तौ मरूकर केतिकै बार में।
कान्ह जो धाइ धरै न अली, तौ बही हुती हौं जमुना जलधार में।

महाकवि पद्माकर—रीतिकाल के कवियों में पद्माकर जी ही अंतिम कवि हैं जिन्हें कविता के द्वारा पर्याप्त अर्थ और यश का लाभ हुआ। इनका जन्म संवत् १८१० में बाँदा के तैलंग ब्राह्मण पं० मोहनलाल भट्ट के यहाँ सागर में हुआ था। यह संस्कृत और प्राकृत भाषा के पंडित थे। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है कि "रीतिकाल के कवियों में सहृदय समाज इन्हें बहुत श्रेष्ठ स्थान देता आया है। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी को छोड़ दूसरा नहीं हुआ। इनकी रचना की रमणीयता ही इस सर्वप्रियता का एक मात्र कारण है। रीतिकाल की कविता इनकी और प्रतापसाहि की वाणी द्वारा अपने पूर्ण उत्कर्ष को पहुँच कर फिर ह्रासोन्मुख हुई। अतः जिस प्रकार ये अपनी परम्परा के परमोत्कृष्ट कवि हैं, उसी प्रकार प्रसिद्धि में अन्तिम भी। देश में जैसा इनका नाम गूँजा वैसा फिर आगे चल कर किसी और कवि का नहीं।"

यह कई स्थानों में गये और सभी जगह इनका बड़ा सम्मान हुआ। हिम्मतबहादुर के नाम से इन्होंने "हिम्मतबहादुर-विरुदावलि" नामक वीर-रस की श्रेष्ठरचना की। संवत् १८५६ में यह सितारा के महाराज रघुनाथ राव (राघोबा) के यहाँ गये। राघोबा की प्रशंसा में इन्होंने निम्नलिखित छन्द पढ़ा :—

"संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै कहूँ,
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पदमाकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन को वितर विचारै ना।
गंज गज बकस महीप रघुनाथराव,
यही गज धोखे कहूँ तोहि देइ डारै ना।
यही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि ते गरे ते निजगज को उतारै ना।

इस छन्द पर प्रसन्न होकर राघोबा ने इन्हें एक लाख रुपया, एक हाथी और १० गाँव दिये थे। इस के बाद ये जयपुर नरेश प्रतापसिंह के पास रहे। यहाँ इन्होंने अपना प्रसिद्ध काव्य ग्रंथ 'जगद्विनोद' तथा "पद्माभरण" नामक अलंकार ग्रन्थ की रचना की। एक बार यह उदयपुर के राजा भीमसिंह के यहाँ भी गये थे। राणा ने स्वागत सत्कार करके अपने यहाँ के गनगौर मेले का वर्णन करने के लिये इनसे कहा। इन्होंने इस मेले का वर्णन बड़ा ही प्रभावोत्पादक निम्नलिखित छन्द में किया :—

द्यौस गनगौर के सुगिरिजा गुसाइँन की,
छाई उदैपुर में बधाई ठौर ठौर है।
देखौ भीम राना या तमासो ताकिबे के लिए,
माची आसमान में विमानन की भौर है।
कहै पदमाकर त्यों धोखे में उमा के गज,
गौनन की गोद में गजानन की दौर है।
पारावार हेला महामेला में महेस पूँछैं,
गौरन में कौन सी हमारी गनगौर है।

इसके बाद ये सिन्धिया महाराज दौलतराव के पास गये। यहाँ से बूँदी और फिर अपने निवासस्थान बाँदा में आकर रहने लगे। कहा जाता है कि जयपुर की यात्रा इन्होंने दूसरी बार भी की थी। जब यह दूसरी बार जयपुर गये तो तत्कालीन राजा जगत्सिंह से भेंट न हो सकी। इन्होंने कारण का पता लगाया तो जान पड़ा, कि महाराज अपने गुरु के साथ एक समस्या पूर्ति में जुटे हुए हैं, पर पूर्ति नहीं होपा रही। इन्होंने समस्या का पता लगाया और उसकी पूर्ति करके पहुँचे। समस्या थी :—

"सारे नभमण्डल में भारगव चन्द्रमा"

इन्होंने निम्न छन्द में उसकी पूर्ति की :—

सम्भु के अधर माँहि काहे की सरेख राजै,
गायी जाति रागिनी सु कौन सूर मन्द्रमा।
देत छवि को है कोकनद में नदी में कहो,
नखत विराजै कौन निसि में अतन्द्रमा।
एक दृग को है कौन बर्नन असम्भवित
घटे बढ़े सो तो दिन पाय पाय पन्द्रमा।
काली जू के कज्जल की ललित लुनाई सो तो,
सारे नभ मण्डल में भारगव चन्द्रमा।

इतनी अच्छी समस्यापूर्ति से राजा बहुत प्रभावित हुए और दूसरे दिन इन्हें दरबार में बुलाया। दरबार में उपस्थित होकर इन्होंने अपना परिचय निम्नलिखित छन्द में दिया :—

भट्ट तिलँगाने को बुन्देलखंड वासी कवि,
सुजस प्रकासी पद्माकर सुनामा हौं।
जोरत कवित्त छन्द छप्पय अनेक भाँति,
संस्कृति प्राकृत पढ़े जु गुन ग्रामा हौं।
हय रथ पालकी गयन्द गृह ग्राह चारु,
आषर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगतसिंह
तेरे जान तेरो वह विप्र हौ सुदामा हौं।

इस पर राजा ने प्रसन्न होकर इनको अपना राजकवि बना लिया।

पद्माकर जी ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। भाटपन का प्रदर्शन खूब किया है। इनकी ऐसी ही कविताओं का उदाहरण देकर कुछ लोग पद्माकर को हीन कोटि का कवि कह देते हैं। यह ठीक है कि पद्माकर, रीतिकालीन कवियों की चाटुकारी परम्परा का उल्लंघन नहीं कर सके, और न वातावरण से

ऊपर उठकर समाज का नेतृत्व करने की शक्ति इनमें थी। फिर भी पद्माकर की आत्मा मर चुकी हो ऐसी बात नहीं। स्वाभिमान को इन्होंने छोड़ नहीं दिया था। स्वयं रसिक होने के नाते तथा वातावरण के अनुसार भी इन्होंने अपने को ढाल लिया था। फिर भी उनके स्वाभिमान में कमी-कभी नहीं आई। चरखारी नरेश जब गद्दी पर बैठे तब यह उनसे मिलने गये थे। परन्तु उन्होंने इनसे मिलना अस्वीकार कर दिया। इस पर इन्होंने निम्नलिखित छन्द लिख कर उनके पास भेज दियाः—

तुम गढ़ किल्ला सदा जोर कर जीतत हौ,
पिंगल अमरकोष जीतत जहाज हैं।
तुम सदा साम दाम दंड भेद न्याय करौ,
चारौ वेद हमहूँ सुनावत समाज हैं।
हाथी घोड़े रथ ऊँट पैदल तुम्हारे साथ,
राखत सदा ही हम छप्पय छन्द साज हैं।
तुमसों औ हमसों बराबरी को दावा गिनों,
तुम महाराज हौ तौ हम कविराज हैं।

इस पर महाराज रतनसिंह ने अपने व्यवहार पर लज्जित होकर क्षमा-याचना की, और इन्हें रहने के लिये कहा, परन्तु इस घटना से पद्माकर जी का मन ग्लानि से भर गया। यह वहाँ बिलकुल नहीं रुके और न बाँदा ही गये। सीधे कानपुर की ओर चल पड़े। मार्ग में ही इन्होंने गंगा जी की स्तुति में छन्द-रचना प्रारम्भ कर दी जो कानपुर आकर "गंगा-लहरी" के रूप में पूर्ण हुई।

जीवन के अन्तिम दिनों में यह रोग-ग्रस्त रहने लगे थे। भक्ति रस-पूर्ण विरागात्मक-ग्रन्थ प्रबोध-पचासा, इनकी इसी समय की रचना है। कहा जाता है कि इन्हें कोढ़ हो गया था। जिससे दुखी होकर तथा अपना अन्तिम समय समझ कर यह कानपुर चले आये थे और यहीं

पुण्य सलिला गंगा भागीरथी के तट पर लगभग सात वर्ष निवास करके संवत १८६० में अपनी ८० वर्ष की अवस्था में प्राण छोड़ दिये। कानपुर के गंगा-तट पर बैठ कर ही इन्होंने अपनी सर्वोकृष्ट रचना "गंगा-लहरी" लिखी थी। यहाँ आकर वह कुष्ट तथा अन्य रोगों से मुक्त होकर स्वस्थ हो गये थे किंतु उसे गंगाजी का आशीर्वाद समझकर घर लौट कर नहीं गये और मृत्यु पर्यन्त यहीं रहे।

शृंगार तथा वीररस के यह सिद्ध कवि थे। भक्ति रस की इनकी रचनाएँ भी अत्यन्त सुन्दर और श्रेष्ठ हैं। "गंगा-लहरी" के छन्द बड़े ही ओज पूर्ण और प्रभावशाली हैं। वाल्मीकि रामायण के आधार पर लिखा गया 'राम-रसायन-चरित-काव्य' इनका एक और ग्रन्थ खोज में मिला है। 'हितोपदेश' का भाषानुवाद भी इन्होंने किया था। मिश्र बन्धुओं ने अपनी विचित्र तुला पर तौल कर इन महाकवि को तृतीय श्रेणी का पद प्रदान किया है। मिश्रबन्धुओं ने श्रेणी-विभाजन में प्रायः भारी भूलें की हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे कि ठाकुर शिवसिंह ने सरोज में कवियों के जन्म-संवत में। कवि देवजी का महत्व प्रदर्शित करने के लिए मिश्र-बन्धुओं ने सभी रीति कालीन महाकवियों को मनचाहे ढंग से ऊँची-नीची श्रेणियों में रखने का असफल प्रयास किया है। निश्चय ही पद्माकर जी का काव्य कौशल अनोखा और आनन्द देने वाला है। पद्माकर जी के परवर्ती कवियों का अध्ययन करने से जान पड़ता है कि उनमें से अधिकांश पद्माकर जी की काव्य शैली से प्रभावित हुए हैं। पदमाकर जी की रचनाओं में शैली, भाव और भाषा साम्य तो ऐसा हुआ है, जैसा सम्पूर्ण रीतिकाल में देखने को नहीं मिलेगा। हिन्दी गद्य के उत्थान युग में ब्रजभाषा की रचनाओं पर पद्माकर का प्रभाव स्पष्ट है। कानपुर के रसिक समाज के कवियों की कविताएँ देख कर ऐसा लगता है जैसे वे पद्माकर स्कूल की ही हैं। सच तो यह है कि पद्माकर की कोटि के कवि रीतिकाल में दो चार से अधिक नहीं निकलेंगे।

रचनाओं का उदाहरण :—

पीतम के संग ही उमगि उड़िजैबे को न,
एती अंग-अंगनि परंद पखियाँ दई।
कहै पदमाकर जे आरती उतारैं चौर—
ढारैं, श्रम हारैं पै न ऐसी सखियाँ दई।
देखि दृग द्वै ही सों न नेकहू अघैये इन,
ऐसे झुका झुक में झपाक झखियाँ दई।
कीजै कहा राम स्याम-आनन विलोकिबे को,
बिरचि बिरंचि न अनंत अँखियाँ दई।

× × ×

ए ब्रजचन्द चलौ किन वाँ ब्रज लूकें वसंत की ऊकन लागी।
त्यौं 'पदमाकर' देखौ पलासन पावक-सी मनौ फूकन लागी।
वै ब्रजवारी विचारी वधू वनवारी-हिये लौं सु हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइनैं ये सु कुहू कुहू कैलिया कूकन लागी।

× × × ×

एकै संग धाये नंदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगनि गये जु भरि आँनद मढ़ै नहीं।
धोइ धोइ हारी 'पदमाकर' तिहारी सौंह,
अब तो उपाय एकौ चित्त पै चढ़ै नहीं।
कैसो करौं, कहाँ जाऊँ, कासों कहौं, कौन सुने,
कोऊ तौ निकासौ जासों दरद बढ़ै नहीं।
एरी मेरी वीर, जैसे-तैसे इन आँखिन तें,
कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं।

हँसि-हँसि भाजैं देखि दूलह दिगंबर को,
पाहुनी जे आवें हिमाचल के कछाह में।
कहै 'पदमाकर' सु काहू सों कहै को कहा
जोई जहाँ देखै सो हँसेई तहाँ राह में।
मगन भयेऊ हँसें, नगन महेस ठाड़े
औरौ हँसे येऊ हँसि हँसि के उमाह में।
सीस पर गंगा हँसें भुजनि भुजंगा हँसे,
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में।

× × ×

कूरम पै कोल, कोल हू पै सेस-कुंडली है,
कुंडली पै फवी फैल सुफन हजार की।
कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फवी है भूमि,
भूमि पै फवी है तिथि रजत-पहार की।
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर ज्योति जटाजूट की अपार की।
संभु जटाजूटन पै चन्द की छुटी है छटा,
चन्द की छटान पै छटा है गंग धार की।

× × × ×

सुचित गोविन्द ह्वै कै सेवते कहाँ धौं जाइ,
जलजंतु-पंति जरि जैबै को अभिलती।
कहैं 'पदमाकर' सु जादा कहौं कौन अब,
जाती मरजादा ह्वै मही की आन मिलती।
जल-थल अंतरिच्छ पावते क्यों पापी मुक्ति,
मुनि-जन जापकन जो न दुरि मिलती।

सूखि जातो सिन्धु बड़वानल की झारन सौं,
जो न गंगाधार ह्वै हजार धार मिलती।

× × × ×

रेनुका की रासन में कीच कुस-कासन में,
निकट निवासन में आसन लदाऊ के।
कहै 'पद्माकर' तहाँई मंजु सूरन में,
धौरी धौरी धूरन में पूरन प्रभाऊ के।
वारन में पारन में देखहु दरारन में,
नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के।
कूल औ कछारन में गंगाजल-धारन में,
मँझरा मँझारनमें झारन में झाऊ के।

जानकीराम—ये कान्यकुब्ज त्रिपाठी ब्राह्मण तथा कुन्दौली ग्राम, तहसील घाटमपुर के निवासी थे। इनका जन्म अनुमानतः संवत् १८३४ के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम लालमणि त्रिपाठी था। ये पाँच भाई थे। इनके द्वारा रचित एक हस्तलिखित ग्रन्थ हमें सुप्रसिद्ध इतिहास-शास्त्री पं० लक्ष्मीकांत जी त्रिपाठी के पुस्तकालय में देखने को मिला। ग्रन्थ के नाम का पता नहीं चलता। तिरसठ पृष्ठों के इस ग्रन्थ में मध्य के सात से लेकर चालीस की संख्या तक के पृष्ठ अप्राप्य हैं। शेष बचे हुए पृष्ठों में ६० छन्द हैं। इन छन्दों में बारहमासा शीर्षक में प्रत्येक महीने पर सवैया लिखे गये हैं। इनकी अन्य रचनाओं में बारहमासा के सवैये ही अधिक श्रेष्ठ बन पड़े हैं। पं० लक्ष्मीकांत जी त्रिपाठी के ये प्रपितामह थे और त्रिपाठी जी ने ही इनके सम्बन्ध में विशेष विवरण खोजकर जबलपुर से प्रकाशित होने वाली हिंदी मासिक पत्रिका "श्री शारदा" सन १९२३ के जनवरी और

मार्च महीनों के अंक में प्रकाशित कराया। रचना इनकी अच्छी है।
उदाहरण:—

फूले हैं फूल जलौं थल फूलि कै भौंर की भीर भली तन पोषो।
कोकिल कीर कपोतन के कुल घोष घरी हूँ घरी घन घोषो॥
चाँदनी चन्द की मन्द समीर सुगन्ध सों तीर चलै अति चोषो।
प्यौ परदेस पग्यौ सजनी हमें देत है चैत निदाघ को धोषो।

× × × ×

जोर झकोर सों वायु बहै, लगे लोग निवास बनावन छावन।
कोकिल के कुल चातक चोप कै मोर हूँ सोर लगे सरसावन।
प्यौ परदेस सँदेस बिना भये गाढ़ असाढ़ के द्यौस भयावन।
धूँधरे धूँधरे धूमरे धीर धुकारत ये धुरवा लगे धावन।

× × × ×

चंचल चारु चलै चपला घन, घेरि घनो नभमण्डल छायौ।
पापी कलापी अलापी भये पपिहा पगि प्रेम पियै रह ल्यायौ।
जानकीराम अराम स्वयाम मैं आठ हूँ जाम सबै सुख पायौ।
आयौ न भावन मो मन कौ सखि सावन मोहिं सतावन आयौ।

देवदत्त—ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्म सं० १८३९ तथा ग्राम लाढ़ का निवासी लिखा है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज रिपोर्ट सन् १९०३ में इन्हें जाजमऊ का कहा गया है, और उनके तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है। ग्रन्थों के नाम हैं—सज्जन विलास, लालित्य-लता और द्रोण-पर्वभाषा-

कविता में ये अपने को "दत्त" लिखते थे। चरखारी के महाराज खुमानसिंह के यहाँ ये बहुत दिनों तक रहे। चरखारी-नरेश ने इनके

"धारा बाँधि छूटत फुहारा मेघमाला" वाले छन्द पर प्रसन्न होकर काफी धन दिया था। इन्हें अपने ब्राह्मणत्व की बड़ी ठसक थी। सम्भवतः किसी के द्वारा इनको कष्ट पहुँचाने पर निम्नलिखित छन्द में चेतावनी भी दी है:—

कीन्हें द्विज-द्रोह गये स-कुल सहसबाहु,
नहुष भुजंग भये सिविका धराये ते।
भूपति परीछित को तच्छक प्रसिद्ध डस्यो,
जूझि गये जादव कुमति उर आयेते।
सगर की संतति अनेक जरि छारभईं,
इन्द्र के सहस भग मुनि साप पायेते।
कहै कवि दत्त कोऊ भूलिहू न बैर करौ,
पाला से विलाय जात विप्रन सतायेते।"

कविता इनकी अच्छी हुई है। भाषा तथा भावों की स्पष्टता, इनकी विशेषता है। उदाहरणः—

अंबर अतर तर चंदक चहल तन,
चन्दमुखी चन्दन महल मैंनसाला से।
खासे खसखाने तहखाने तर ताने तने,
ऊजरे वितान छुए लागत हैं पाला से।
'दत्त' कहै ग्रीषम गरम की भरम कौन,
जिनके गुलाब आब हौज भरे ताला से।
झाला सों झरत झर झाँपन सों बारा बाँधि,
धाराबाँधि छूटत फुहारा मेघमाला से।

× × ×

डोलै पौन परसि परसि जल बूँदन सों,
बोलै मोर चातक चकित उठी डरि में।

कहाँ लौं बराऊँ दई मारे मैन बानन सों,
थकि रही केतिकौ उपाय करि-करि मैं।
दत्त कवि प्यारे मनमोहन न पाऊँ कहौं,
मन समझाऊँरी कहाँलौंधीर धरि मैं।
छाये मेघ मगन सुहाये नभ मंडल में,
आये मन भावन न सावन की झरि मैं।

भूपनारायण—ये काकूपुर ग्राम, तहसील बिल्हौर के निवासी तथा ब्रह्मभट्ट थे। सरोजकार ने "नारायण" जन्म १८०९ तथा भूपनारायण जन्म संवत् १८५६ काकूपुर निवासी कह कर दो कवियों का परिचय दिया है और दोनों के विवरण में लिखा है कि इन्होंने शिवराजपुर के चन्देल क्षत्रिय राजाओं की वंशावली छन्दों में बनाई। वस्तुतः ये दो न होकर एक ही कवि हैं। इनकी रचनाओं में कहीं "भूप" तथा कहीं "नारायण" नाम आने के कारण ही यह भूल हो गई है। इन का जन्म संवत् १८०९ के लगभग और कविता काल १८५६ के आगे तक है इन की रचना साधारण है :—

भूप कहै सुनियो सिगरे मिलि भिच्छुक बीच परौ जनि कोई।
कोई परौ तौ निकेहि करौ न कि, केहि करौ तौ रहौ चुप सोई।
जानत हौ बलि-वामन की गति, भूलि कुपंथ भलो नहिं होई।
लेइ कोई अरु देइ कोई पर शुक्र ने आंख अकारथ खोई।

लोकनमिश्र—ये किस ग्राम के निवासी थे, कहा नहीं जा सकता। इनका लिखा हुआ 'रस रीति' नामक एक ग्रन्थ की हस्त-लिखित प्रति तहसील बिल्हौर के सकरवाँ ग्राम से प्राप्त हुई है। इसका

रचना काल चैत्र कृष्णा १४ संवत् १८३३ और लिपि काल चैत्र कृष्ण २ संवत १८४२ है। प्रतिलिपिकार हैं गुणाकर के पुत्र जयसुखराम नागपुर ग्राम निवासी। संभवतः यह गंगा-किनारे जाजमऊ के समीप बसा हुआ नागापुर ग्राम है। इस ग्रन्थ में ३५१ दोहे हैं। नायक नायिका का वर्णन है।

अति विलास रसकी सुमति बढ़त अमित मन मौज।
सो सिंगार जानौ सुकवि, हरषित उदित मनौज॥
मिलैनिकुंजन बीचमैं, राधा कान्ह सुजान।
हरषित चित्र विचित्र गति दोऊ दोउन प्रान॥

लालकवि—इनका पूरा नाम बिहारी लाल त्रिपाठी था। ये मतिराम के वंशज तिकवाँपुर ग्राम के निवासी थे। अपने कुल में कीर्ति अर्जित करने वाले ये अन्तिम कवि तथा चरखारी में महाराज विक्रमादित्य के राजकवि थे। उक्त महाराज की लिखी "विक्रम सतसई" की टीका इन्होंने की है। "सरोज में इनका जन्म संवत १८८५ तथा "कानपुर गजेटियर" में १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में होना लिखा है। इन्होंने रसचन्द्रिका नामकी टीका संवत् १८७२ में लिखी थी और इनके आश्रयदाता का कार्य काल भी संवत् १८८५ में समाप्त होता है। अतः सरोजकार का इन का जन्म १८८५ में निर्धारित करना सर्वथा गलत है। मिश्रबन्धुओं ने इनका कविता-काल १८६७ माना है, जो उचित है। त्रिपाठी-बन्धुओं ने इनका जन्म संवत १८४२ के आस-पास माना है। इनकी रचना अच्छी हुई है "रस चंद्रिका" में इन्होंने अपना वंश परिचय देते हुए लिखा है :—

हैं पंतो मतिराम के, सुकवि बिहारी लाल।
जगन्नाथ नाती विदित, सीतल-सुत सुभ चाल॥

कश्यप वंश कनौजिया, विदित त्रिपाठी गोत।
कविराजन के वृन्द में, कोविद सुमति उदोत॥
विविध भाँति सनमानि करि, लाये चलि महिपाल।
आए विक्रम की सभा, सुकवि बिहारी लाल॥

उपर्युक्त दोहों से स्पष्ट है कि ये महाकवि मतिराम के प्रपौत्र, जगन्नाथ के पौत्र और सीतल के पुत्र थे। रचनाओं के उदाहरण देखिए :—

सूनों परो कब को यह गेह है, साँकरो यामें न सूर प्रकास है।
जौन बतायो पठायो यहाँ तिन, कीन्हों खरो तुम्हरो उपहास है।
आई हौं या गिरि हौं अनतै कहुँ, आली कहौ यामें कौन सुपास है।
भीतर कारे भुजंग बसैं अरु, ऊपर चौक-चुरैल को बास है।

× × × ×

ऊजरी होय न केहूँ अली, तिरछी चितवै हरि सों अनुरागी।
लाज कहै नहीं छूटत दाग, दगा दै सुनार बनावत दागी।
भेंट भई जमुना तट में, तकि दोऊ रहीं न टरै अनुरागी।
गूजरी ठाढ़ी कहै चलु गूजरी, गूजरी भाजन गूजरी लागी।

शीतलाप्रसाद तिवारी—ये डेरापुर के निवासी पंडित लोकनाथ तिवारी के पुत्र थे। इनका जन्म अनुमानतः संवत् १८३२ और मृत्यु संवत् १८९५ में माघ शुक्ल त्रयोदशी को हुई। इनकी छोटी अवस्था में ही माता का निधन हो गया था। सौतेली माता का व्यवहार इनके साथ अच्छा नहीं था। मातृवियोग से दुःखी और सौतेली माँ के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर इन्होंने निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं:—

कौन कैहै लाल, कौन पूछि है हाल मेरो,
फेरि पीठि हाथ को अब हिय में लगैया है।
कौनसे सराप सौतेलिन बस बाप भये,
हाय शीतलाप्रसाद रोवत बिन मैया है।

सौतेले भाइयों का व्यवहार भी इनके साथ खराब था। इससे क्षुब्ध होकर ये छपरा (विहार) के नवाबनासिरअली के पास गये और अपनी वेदना उनसे कही:—

भाइन के हैं वचन मोहिं, लागत बान समान।
काहूभाँति उबारिए, नासिरअली दिवान॥

दीवान साहब ने इनकी जीविका को व्यवस्था कर दी और ये वहीं रहने लगे। यहीं से इन्होंने मराठी रियासतों तथा अन्य स्थानों का भ्रमण किया। इनकी कविता साधारण है।

बेनीप्रगट—ये ब्राह्मण कवीन्द्र नरवल निवासी के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १८८० के आसपास है। सरोज कार ने लिखा है "इनका काव्य महा सुन्दर है"। परन्तु इसमें अतिशयोक्ति ही जान पड़ती है। बेनी नाम के भी कई कवि हुए हैं, हो सकता है यह भी इनकी अच्छी रचनाएँ प्रकाश में न आने का कारण हो। उदाहरण—

जलसे सुथल पर थल ते सुजल चल,
महाबल मल जुद्ध क्रुद्ध उनमाथीको।
बरस कितेक बीती जुगति चलै न कछू,
बिना दीनबन्धु होत सांकरे मेंसाथो को।
मन वच करम पुकारत "प्रगटबेनी"
नाथन के नाथ औ अनाथन सनाथी को।
बल करि हारे हाथा-हाथी सब हाथी तब,
हाथी-हाथा हरषि उबार्यौ हरि हाथी को।

रामदीन त्रिपाठी—ये तिकवाँपुर ग्राम के निवासी तथा मतिराम के वंशज थे। चरखारी के राजा रत्नसिंह के यहाँ रहते थे। राजा साहब से अनादृत होकर इन्होंने निम्नलिखित दोहे में उनसे अपनी परम्परा निभाते रहने की याचना की है:—

जो बाँधी छत्रसाल जू हृदय साहि जगतेस।
परिपाटी छूटै नहीं महाराज रतनेस॥

खुशहाल तिवारी—ये ग्राम बिनौर के निवासी तथा शीतला प्रसाद के शिष्य थे इनका निम्नलिखित दोहा अधिक प्रसिद्ध है:—

कै सी-सी पिय सेज पर, कै सी मरती बार।
कै सी करमनि हार घर, कै सी परत तुषार॥

इनके अतिरिक्त अन्य कवियों में शिवनाथ द्वितीय अकबरपुर, लोकनाथ तिवारी डेरापुर, मनीराम मिश्र, लेखराज कायस्थ का नाम उल्लेखनीय है, बेनीप्रवीन बाजपेयी लखनऊ निवासी भी कुछ दिन तक बिठूर में रहे थे। इन्होंने नानाराव प्रकाश ग्रन्थ लिखा था जो मिश्र बन्धुओं के कथनानुसार सन् १८५७ के गदर में जाता रहा।

चतुर्थ अध्याय

ब्रजभाषा के आधुनिक कवि

भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भारतेन्दु से प्रारम्भ होता है। भारतेन्दु के उदय से गद्य-क्षेत्र तो आलोकित हुआ ही, पद्य भी भाषा की दृष्टि से तो नहीं; विषय की दृष्टि से बहुत कुछ आगे बढ़ा। रीति-काल के अवशेष स्वरूप ब्रजभाषा की शृंगारिकता इस समय तक हिन्दी काव्य पर एकाधिपत्य किये थी। खड़ी बोली में उत्तम कविता की जा सकती है; यह विचार तब तक किसी के मन में नहीं थे।

राजनीतिक उथल-पुथल का वह युग था। धार्मिक चेतना ने भी गदर के बाद एक मोड़ लिया था। हिन्दू हिन्दी और हिन्दुस्तान का नारा उस समय के प्रायः सभी प्रतिष्ठित जनों की ज़बान पर था। अंग्रेजी राज्य की प्रबल शक्ति को रोकने की क्षमता देश में नहीं रह गई थी। परस्पर वैमनस्य और व्यक्तिगत स्वार्थों की लड़ाई ने देश की सारी शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया था। ब्रिटिश कूटनीतिकता की जड़ें प्रत्येक भाग में गहरी समा चुकी थीं। अतः जब भी कहीं स्वातन्त्र्य-युद्ध का सूत्रपात हुआ, उसे चूर-चूर होना पड़ा। विस्तृत दृष्टिकोण न तो उस समय के छोटे-छोटे भागों में बँटे हुए राजाओं और नवाबों में था और न उस वातावरण में साँस लेने वाली जनता में ही। दृष्टिकोण की

संकुचितता ने देश को तबाही और बर्बादी के बीच लाकर खड़ा कर दिया था।

शासकों की विलासिता, अत्याचार और अन्यायी प्रवृति ने जनता को राज-भक्ति से विरत करना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु सुदृढ़ संगठन और सुयोग्य मार्ग-निर्देशक के अभाव में वाह्य रूप से कुछ न हो सका। देश की दरिद्रता ने नागरिकों को इतना उलझा दिया था, कि धर्म, समाज और राष्ट्र की चिन्तना भी सब का कर्तव्य है, यह बात तब सोचने वाले बहुत कम थे। साधारण से प्रयास में ही विदेशी ताकत सारे देश में फैल गई, इसके अनेक कारणों में एक मुख्य कारण भारतीय जनता की वह निःशक्तिवादी मनोवृत्ति भी थी, जो तत्कालीन शासकों की ओर से प्रचारित की गई थी।

गदर पूर्व का भारतीय समाज अपने को गोस्वामी तुलसी की "कोऊ नृप होइ हमें का हानी, चेरी छाँड़ि न होउब रानी" को मूल मन्त्र बनाकर अपना जीवन यापन कर रहा था। वातावरण की प्रतिकूलता ने यद्यपि इस ओर से भी मन को उचाट दिया था किन्तु रूढ़ि परम्पराओं ने इन भावनाओं को जीवित रखा और "हारे को हरिनाम" वाली कहावत हिन्दू समाज पर चरितार्थ होती रही। सदियों से खोई वीरता के फलस्वरूप जो कृत्रिम विलासी संस्कारों की छाप पड़ी थी और जिसकी जड़ें रीति-कालीन युग में काफी गहरी पहुँच गई थीं, उसके परिणामस्वरूप रीतिकाल समाप्त हो जाने के बाद भी, काव्य की भाषा तो ब्रज भाषा रही ही, साथ ही रीति-कालीन साहित्य के वे सारे संस्कार भी इस युग के कवियों पर पड़े, जो रीति-परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

दासता की कठोर शृंखलाओं में जकड़ा हुआ भारतीय समाज निरवलंब छटपटा रहा था। शक्तिशाली साम्राज्य की तलवार आत्मविस्मृत नागरिकों की गर्दन पर लटक रही थी। विद्रोह के बीज भीतर ही भीतर पनप चुके थे। देश की स्थिति विषमता के शिखर पर पहुँची हुई थी। इसी समय भारतेन्दु का जन्म हुआ। भारतेन्दु की शीतल और शक्ति-

शाली किरणें जब तक प्रकाशित हों कि पहले ही सैनिक विद्रोह हुआ। यद्यपि उसमें परिणाम की दृष्टि से सफलता नहीं मिली किन्तु जन-मानस को झकझोरने का श्रेय उसी को है।

विद्रोह असफल होने के पश्चात् अंग्रेजी शासन का आतंक पूर्णरूप से जम गया। गोरे प्रभुओं को प्रसन्न करने की होड़ भी लगने लगी और उसका लाभ भी लोगों को मिलने लगा। एक ओर तो सुख शांति और सुधार के नाम पर भारतीयता की जड़ पर प्रकारांतर से प्रहार किया जा रहा था और दूसरी ओर वर्ग भेद पैदा करके परस्पर ही शोषण करने की छूट देकर साम्राज्य को चिरस्थाई बनाने की चाल चली जा रही थी। धर्म-भाषा आदि के बखेड़े खड़े करके चिंताशील मस्तिष्कों को उलझा दिया गया था। जो लोग राजनीतिक स्वतंत्रता और जीवन की आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिलाने वाले थे उन्हीं को संस्कृति, धर्म और भाषा की रक्षा के लिए लड़ना पड़ा। अंग्रेजों की नीतिज्ञता से यह लड़ाई भी सीधे राज्य से न होकर सम्प्रदायों में होने लगी। भारतेन्दु का प्रकाश ऐसी ही परिस्थितियों में फैला। यद्यपि भारतेन्दु जी ने घटाटोप अंधकार को नष्ट करने में कसर नहीं की किन्तु मौजी और भोले होने के कारण वे राजनैतिक दूरदर्शिता प्राप्त नहीं कर सके। यह कमी प्रतापनारायण मिश्र में नहीं थी। वे अंग्रेजों की चालों का भंडा फोड़ बराबर करते रहे। भारतेन्दु जी को भाषा-रक्षा के लिए राजाशिवप्रसाद जैसे व्यक्ति के विरुद्ध भी खड्गहस्त होना पड़ा था। राजासाहब और भारतेन्दुबाबू के बीच भाषा के स्वरूप को लेकर जो द्वन्द हुआ उसका लाभ गद्य को ही मिला। पद्य को नवीन ढाँचें में ढालने का अवसर उस समय भारतेन्दुबाबू को भी नहीं मिल सका। यही कारण है कि भारतेन्दु युगीन गद्य-साहित्य में जहाँ हम संघर्ष की व्यकुलता और विकास के बीज पाते हैं, वहीं पद्य में घिसी पिटी उक्तियाँ तथा ह्रास का बिम्ब मिलता है। स्वयं भारतेन्दु जी के गद्य में जिस तीव्रता का दर्शन होता है वह उनके पद्य में नहीं।

खड़ी बोली की खड़खड़ाहट अभी दूर नहीं हुई थी और हिन्दी कविता ब्रज-भाषा माधुरी को छोड़कर तड़ातड़ी-भड़ाभड़ी में लौटने को तैयार नहीं थी। अतः हिन्दी-काव्य को शृंगार और भक्ति तक सिमिट कर रह जाना पड़ा। इस युग के गद्य में पौरुष था और पद्य में तटस्थता और नैराश्य। स्वयं भारतेन्दु जी ही इस कसौटी पर रखकर कसे जा सकते हैं।

ग़दर के बाद राजनीतिक चेतना को भीतर ही भीतर बल मिला। अपरिपक्व योजना की असफलता लोग देख ही चुके थे। फिर भी व्यक्तिगत रूप से राजनीतिक चेतना में स्थिरता आई और अंग्रेजी शिक्षा ने पढ़े-लिखे लोगों के मस्तिष्क में राजनीतिक स्वतन्त्रता के बीज बोने शुरू कर दिये। शक्ति हीन का आन्दोलन विनय के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। इसी रूप को लेकर सन् १८८५ में राष्ट्रीय महासभा काँग्रेस की स्थापना हुई। इसके पूर्व का साहित्य राधाकृष्ण के रास पर मोहित तथा मन की आनन्दमयी स्थिति में रहा।

समाज-सुधार का आन्दोलन ही एक मात्र उस समय के जागरूकों का लक्ष्य था। गद्य का स्वीकृत विषय भी वही बना। पद्य में जो कुछ नवीनता आई वह अत्यंत मन्थर गति से। पंडित प्रतापनरायण मिश्र जी इस युग के ऐसे कलाकारों में से हैं कि जिनकी विचारधारा चतुर्मुखी होकर प्रवाहित हुई। हिन्दी प्रचार व साहित्य सृजन के साथ समाज-सुधार, राजनीतिक स्वतन्त्रता, धर्म और दर्शन सभी क्षेत्रों में उनकी लेखनी और वाणी ने अपूर्व काम किया। भारतेन्दु युगीन साहित्यिकों में पं० प्रतापनारायण मिश्र और पं० बालकृष्ण भट्ट ये दो ऐसे अद्भुत व्यक्तित्व सामने आते हैं जो अपनी निर्भीकता, स्पष्टवादिता, उच्च चिंतन, दूरदर्शिता के साथ आदर्श लोक जीवन की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील रहे।

प्रतापनारायण मिश्र—क्रियात्मक दृष्टि से मिश्र जी का प्रभाव गद्य और पद्य दोनों पर समान रूप से पड़ा। यद्यपि प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु जी को अपना सखा और गुरु मानते थे परन्तु कार्य की तुलना करने से भारतेन्दु जी और मिश्र जी में वही अन्तर है जो रामानन्द और कबीर में। रामनन्द जी जहाँ अपनी बात को संवार सुधार कर कहते पाये जाते हैं, वहीं कबीर अपनी अटपटी वाणी, वक्रता-पूर्ण शैली और भाषा के साथ खिलवाड़ करते दिखाई पड़ते हैं। यही वे गुण हैं, जो रामानन्द के शिष्य होते हुए भी कबीर का, स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने के लिये पाठक को बाध्य कर देते हैं। ठीक इसी प्रकार मिश्र जी भी अपनी भाषा, शैली और विषय के अनुसार भारतेन्दु जी से स्पष्ट ही साहित्य में दूसरी धारा का नेतृत्व करते हैं। मिश्र जी की भारतेन्दु के प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम देखकर ही हिन्दी-इतिहासकारों ने उनके स्वतन्त्र गुणों की उपेक्षा की है औरसर्वथा मौलिक भेद होते हुए भी मिश्र जी का कृतित्व भारतेन्दु में समाहित करके इस महत्वपूर्ण विवेचना की धारा को रुद्ध कर दिया है। भारतेन्दु की और प्रताप नारायण जी की राजनीतिक विचारधारा में भी बड़ा अन्तर है। भारतेन्दु जी कहते हैं:—

"अंग्रेज राज सुख साज सजे बहुभारी।
पै धन बिदेश चलि जात यहै अतिख्वारी ॥"

परन्तु मिश्र जी दबंगी के साथ कहते हैं:—

"जिन धन धरती हरी सो करिहैं कौन भलाई,
बन्दर काके मीत कलन्दर केहिके भाई ?"

भाषा के सम्बन्ध में भारतेन्दु जी कहते हैं:—

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति कौ मूल,
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय कौ शूल"

मिश्र जी और भी आगे बढ़कर कहते हैं:—

'चहहु जो साँचो निज कल्यान तौ सब मिलि भारत संतान"

"जपौ निरन्तर एक जवान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान"

मिश्र जी की यह धारा आगे चल कर खड़ी बोली काव्य में खूब फूली फली। व्रज भाषा के काव्य पर रीतिकालीन संस्कारों की ऐसी गहरी छाप पड़ी थी जो हटाई न जा सकी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रति मिश्रजी की अपार श्रद्धा थी। उनके निधन पर लिखी हुई इनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ बड़ी ही करुण और मार्मिक हैं:—

"कहाँ गयौ कित ढूँढ़िये, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
निशि दिन अँधियारे लगत, अस्त भये हरिचन्द।'

× × ×

कौन के भरोसे पै चलेंगे समाचार-पत्र,
कविता विचारी हा! सुहाग कहाँ पावेगी।
कासिकादि रसिक समाजन में पुनि पुनि
रसना रसीली काकी रस बरसावेगी।
तेरे मुख चन्द की चकोरी हरिचन्द प्यारे,
कौन के सहारे दुखी जीवन बितावेगी।
साजि के सिंगार दरबार में प्रविशि हाय,
कौन के सुफल हिन्दी नागरी कहावेगी।

देश और समाज की दशा पर मिश्र जी का व्यंग बड़ा ही तीखा होता था। कविता में उनकी यह स्थिति मनोरंजन के साथ ही विचार-धारा को मोड़ देने की भी शक्ति रखती है। स्पष्ट वादी तथा स्वच्छन्द कला-कारों में मिश्र जी का नाम अग्रगण्य है।

पढ़ि कमाय कीन्हयौं कहा, हर्‌यो न देस कलेस
जैसे कंता घर रहे, तैसे रहे विदेस।

× × ×

सब धन लिहे जात अँगरेज,
हम केवल लैक्चर के तेज।

ककाराष्टक में वे कहते हैं:—

> कलह करावन हार परम पंडित कलुषाकर,
> कोटिन कलित पथ-प्रचार सद्धर्म नीति हर;
> काम कला सिसुताहि माँहि सिखवत बल नासत,
> कहुँ मँहगी तजि कहुँ कुरुज भाँति भाँतिन परकासत।
> करके मिस दीन प्रजान कर सब प्रकार सर्वस हरन
> कलिराज कपटमय जयति जय भारत कहँ गारत करन।

कविता में लोकोक्तियों का प्रयोग बड़ी ही उत्तमता के साथ इनकी रचनाओं में मिलता है :—

> "स्यार आपनी खोह में, परे मरे सरि जाहिं,
> सिंह पराये देस में, जहँ मारैं तहँ खायँ।
> का भवनिधि में नाँहि नै, कर समेट मत बैठ,
> जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।

भक्ति-प्रधान गीतों की रचना करके सन्त कवियों की गीत-परम्परा में इन्होंने भी एक अध्याय जोड़ा है।

> जागो भाई जागो, रात अब थोरी।
> काल चोर नहिं करन चहत है, जीवन-धन की चोरी॥
>
> औसर चूके फिर पछितैहो हाथमींजि सिर फोरी।
> काम करो नहिं काम न ऐहैं बातें कोरी कोरी॥
>
> जो कुछ बीती बीति चुकी सोइ चिंता ते मुख मोरी।
> आगे जावै बनै सो कीजै करि तन-मन इक ठौरी॥
>
> कोऊ काहू को नहिं साथी, मात पिता सुत गोरी।
> अपने करम आपने संगी और भावना भोरी॥
>
> सत्य सहायक स्वामि सुखद से लेहु प्रीति जिय जोरी।
> नाहिं तो फिर प्रताप हरी कोउ बात न पूँछेहि तोरी॥

समस्या पूर्तियों का वह युग था। इनकी समस्या पूर्तियों में रसिकता और बाँकपन के साथ गम्भीरता का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है।

कल पावै न प्रान तुम्हें बिन देखे इन्हैं अधिकौ कलपाइए ना।
परतापनरायणजू के निहारे पिरीत प्रथा बिसराइए ना॥
अहो प्यारे विचारे दुखारिन पै इतनी निठुराई जताइए ना।
करि एक ही गाँव में बास हहा मुख देखिबे को तरसाइए ना।

× × ×

बनि बैठी है मान की मूरति-सी मुख खोलत बोलत नाहीं न हाँ।
तुम ही मनुहार के हारि परे सखियान की कौन चलाई कहाँ।
बरखा है प्रतापजू धीर धरौ अब लौं मन को समुझायो जहाँ।
वह ब्यारि तबै बदलैगी कछू पपिहा जब पूछिहै पीव कहाँ।

× × × ×

यों हूँ हँसैं हँसिहैं सब वोहूँ, दुहूँ विधि सों उपहास तौ हैए।
तौ परताप वियोग की ताप में क्यों फिर आपनो जीव जरैए॥
हानी जु होय सु होय भले खुलि खेलिये और उपाय न पैए।
यों मन होत रहै सजनी मन मोहनै लैके कहूँ कढ़ि जैए।

× × × ×

कारे कारे बादर मतंग मतवारे जासु—
लाले लाले लसत रिसालेन को साज है।
चपला की चमक पताका फहरात भौन,
घन घहरात तौन दुन्दभि अवाज है।
पावन पवन यश गावत चकोर मोर,
राजत प्रताप सब राजसी समाज है।
कैसे कविराज धौं बसंतै रतिराज कहै,
बीस बिसे देख्यो बरषा ही रितुराज है।

रसिक समाज

हिन्दी काव्य-धारा को बराबर बल देने वालों में काशी, प्रयाग और कानपुर का नाम प्रमुख है। काशी का "कवि-समाज" और कानपुर का "रसिक-समाज" व्रजभाषा काव्य के प्रचार में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। काशी का 'कवि समाज' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० अम्बिका दत्त व्यास और बाबू रामकृष्ण वर्मा के बल-बूते पर चलता था। इसी प्रकार कानपुर का 'रसिक समाज' रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', ललित, रत्नेश, सेवक, गदाधर भट्ट, मन्नीलाल मिश्र आदि के सहारे चलता था। 'रसिक समाज' के द्वारा कानपुर ने तत्कालीन साहित्य की धारा को गतिवान तथा पुष्ट बनाया।

'रसिक-समाज' की स्थापना २० दिसम्बर सन् १८९६ को हुई थी। इसके सभापति श्री ललित जी और प्रधानमंत्री श्री रत्नेश जी थे। सन् १९०१ में ललित जी के निधन से रत्नेश जी सभापति और सेवक जी प्रधान मंत्री चुने गये। रायदेवीप्रसाद पूर्ण प्रारम्भ से ही उसके उप-सभापतिपद को सशोभित करते रहे। यद्यपि 'रसिक समाज' के जीवन प्राण पूर्ण जी ही थे। पूर्ण जी के निवास-स्थान पर ही समाज की गोष्ठियाँ होती थीं। कवियों के आदर सत्कार तथा सहायता आदि का भार पूर्ण जी पर ही था। "रसिक-समाज" जन्म के पश्चात् बड़ी तीव्र गति से आगे बढ़ा। जन्म के पाँच महीने बाद ही इसके द्वारा अप्रैल १८९७ से रसिक वाटिका नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी होने लगा था। इस पत्र में समाज की पाक्षिक गोष्ठियों में पठित कविताएँ, समस्यापूर्तियाँ, लेख तथा आलोचनाएँ प्रकाशित होती थीं। कई वर्ष तक इसका प्रकाशन होता रहा। अन्त में अर्थाभाव की कठिनाई से 'रसिक-वाटिका' का निकलना बन्द हो गया।

ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित'—ये मल्लावाँ जिला हरदोई के निवासी तथा काव्यकला के मर्मज्ञ थे। प्रारम्भ में राजा दिग्विजय सिंह के यहाँ रहे। इन्हीं राजा साहब के नाम पर संवत् १६३० के लगभग इन्होंने अपना "दिग्विजय-विनोद" नामक ग्रन्थ बनाया। बाद को राजा साहब से रुष्ट हो जाने के कारण इन्होंने, काव्य से जीवन-निर्वाह करना छोड़ दिया और कानपुर में एक गल्ले की दूकान पर काम कर लिया। कानपुर की साहित्यिक धारा को प्रवाहित रखने का बहुत कुछ श्रेय इन्हीं को है। रसिक समाज की स्थापना होने पर सर्वप्रथम यही उसके सभापति चुने गये। लगभग ५ वर्ष तक रसिक समाज का सभापतित्व करते हुए संवत् १६५८ में इनकी मृत्यु हुई।

स्वभाव के ये सरल तथा सौम्य थे। मुद्रित काव्य ग्रन्थ "दिग्विजयविनोद" 'सुमतिमनरंजन' नाटक के अतिरिक्त रायमशादर्पण नाटक जिसका प्रयोग कानपुर जिले के आस-पास धनुष-यज्ञ के अवसर पर आज भी किया जाता है तथा "ख्याल-तरंग" नामक ग्रन्थ लिखे हैं। समस्या पूर्तियाँ तथा अन्य स्फुट रचनाएँ इनकी काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय देती हैं।

मार लजावनहार कुमार हौ देखिवे कों दृग ये ललचात हैं।
भूले सुगन्ध सों फूल सरोज से आनन पै अतिहू मँडरात हैं।
नेक चले मग में पग द्वै ललिते श्रम सीकर हू सरसात हैं।
तोरिहैं कैसे प्रसून ललाये प्रसून हू से अति कोमल गात हैं।

× × ×

बोरि गईं उनईं ये घटा मन कोरि गईं लतिका जिति छूकैं।
घोरि गईं विष कोयलैं सोरिकैं, दौरि गईं जुगुनू नहिं चूकैं।
प्रान पियारी सिया बिन ए चलि झोरि गईं हैं समीर की झूकैं।
तोरि गईं तड़िता तन को हिय फोरि गईं मुखान की कूकैं।

× × × ×

भ्रमर कदम्बन पै गान के उड़ान लागे,
होत बलहीन विरहीन तन थर-थर।
'ललित' हरित लहरान लागे तरुवर,
सीरी-सीरी चलन समीर लागी सर-सर।
दामिनि के जारे चहुँ ओर से लखान लागे।
चातक चकोर मोर सोरन के भर-भर।
झर-झर धर-धर धार बाँधि धूमि घन,
नभ में सघन घहरान लागे घर-घर।

रामरत्न सनाढ्य 'रत्नेश' (१९१८-१९९३)—इनका जन्म कालपी जिला जालौन में हुआ था। ये बड़े ही साधु स्वभाव तथा सात्विकी व्यक्ति थे। १८ वर्ष की आयु में ही इन्हें व्याकरण, ज्योतिष और आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ कण्ठस्थ हो गये थे। पहले ये लखनऊ के रईस मोहनलाल सरिस्तेदार के यहाँ रहे। तत्पश्चात् कानपुर आकर वैद्यकी करने लगे। रसिक समाज की स्थापना होने पर ये सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री और फिर ललित जी की मृत्यु के पश्चात् उसके सभापति रहे। ये राधाकृष्ण के अनन्य भक्त और उन्हीं के लीला-वर्णन में तन्मय रहने वाले कवि थे।

इन्होंने 'रत्नेश-शतक' 'राधा सुधानिधि का भाष्य" "दिनचर्या और कर्मपद्धति" "ध्वनि-व्यञ्जना" तथा "नायिका-भेद" नामक ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें "रत्नेश-शतक" ही प्रकाशित हुआ। पूर्णजी की मृत्यु से इन्हें अत्यधिक शोक हुआ था। उन्हें अपनी शोकाञ्जलि देते हुए इन्होंने बारह छन्द बड़े ही मार्मिक लिखकर अपनी लेखनी को विराम सा दे दिया था।

इनकी कविता सरस और प्रभावपूर्ण है। कहीं-कहीं उर्दू के बेढंगे प्रयोग खटकते हैं। "जान" 'तसवीर" "हाजिर हुकुम में समूह हैं

गुलाम के" जैसी शब्दावली ब्रज-माधुरी में खटकती है। इनकी काव्यगत विशेषता में प्रसादगुण, अलंकार विधान और सशक्त-शब्दों का चयन मुख्य है।

आनन अमंद अवलोकि चंद मंद भयो,
नासिका निरखि कीर कानन लुकाने हैं।
श्रुति दुति देखि सीपी बूड़ि गई दह बीच,
अधर ललाई लखि बिम्ब उरझाने हैं।
दंत छवि तकत दरार खाई दाड़िम ने,
मृदुल कपोल देखि पाटल लजाने हैं।
भृकुटी बिलोकत ही इन्द्रधनु लोप भयो,
नैनन निहारि कै सरोज सकुचाने हैं।

× × × ×

दामिनी सी दसहू दिसनि में दमकि जात,
कामिनि करेजे काटिबे को महा बिकराल।
लाज के सिपाहिन पै गाज सी गिरत गाज,
गृह काज नासिबे को होत सिरताज हाल।
रतनेस काम कारीगर को बनाइ बेस,
वेद को निदेस दूरि करिदेत ततकाल।
अधर मियाँनते कढ़त ही हरत प्रान,
कान्ह मुसकान धरी सान कैधों करवाल।

× × × ×

नैनन की नोक वारी मार ना सम्हार सकैं,
कोमल हिये के मन मोहन बिचारे हैं।
तिन्हें कोर उरज दिखाय झकझोरै वृथा,
निवल पै चोट वीर ऐसे नहिं मारे हैं।
प्रीतम बृजेस को न दीजै भूलि त्रास ऐसी,
वे तो रतनेस तेरी ढार ही के ढारे हैं।

अनायास निरखि बँधे हैं तटपास ही में,
सांवरे निरंकुस गयंद मतवारे हैं।

× × × ×

कहि दिन द्वैक को लिवाय गयो मथुरा कों,
काहू ने न रोको बुद्धि सबकी बिनासी है।
सुफलकसुत ने कियो है यो कुफल महा,
घर बन जासों मोहिं लगत उदासी है।
रतनेस देवकी सों बिनती हमारी एती,
जाय कहि दीजियो जसोदा तुव दासी है।
छौना प्रान प्यारे मेरे ब्रज में पठाय दीजै,
रावरे की भावत न ऐसी हमें हाँसी है।

गदाधरप्रसाद ब्रह्मभट्ट 'नवीन' (१८९८-१९७८)—
इनका जन्म जिला फरुखाबाद में हुआ। बाल्यकाल ननिहाल बिलग्राम हरदोई में बीता। तत्पश्चात ये कानपुर में बस गये। ये हिन्दी तथा संस्कृत के पण्डित औा रसिक समाज के प्रमुख व्यक्तियों में थे। इन्होंने स्फुट कविताओं तथा समस्या-पुर्तियों के अतिरिक्त संस्कृत के कई ग्रन्थों के छन्दोवद्ध अनुवाद किये। धर्म और वेदान्त में इनकी रुचि अधिक थी। 'श्रीमद्भगवद्गीता' 'उपनिपद-प्रदीपिका', 'रामोपदेश-चन्द्रिका' 'शिव-ताण्डव' 'शिव-महिम्न स्त्रोत' इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

कालिंदी महाय बैठी चंदन की चौकी आय,
बाल अलबेली प्रान प्यारी नँद नंद की।
सारी जरतारी दर दामन किनारी बारी,
साजि कै नवीन छबिहू में छबि मंद की।

दोऊ कर कुचन उठाय पीठ पाछे डारे,
सोभा तासमय की बनमाली यों पसंद की।
आपनो सहोदर बिलोकि तम फंद फसो,
कंजन निवारी विपदा है मनो चंद की।
× × × ×
कनक बरन अंग भ्राजत नवीन सारी,
मोतिन किनारी वारी सुन्दर सुहावती।
उदित उदार गल सोहत जलज हार,
अति सुकुमार चारु सोभा सरसावती।
धारे सुचि अंगन अभूषण जड़ाऊ वेष,
सुखमा अनूप कोऊ उपमा न भावती।
वाम दिसि बैठी कमलासन के वीना लिये,
बानी निजबानी सों पियूष बरसावती।

मुंशी कालीचरण 'सेवक' (१९११-१९७९)—ये ग्राम नरबल के श्री गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव के पुत्र थे। इन्हें संगीत, चित्रकला और गणित का ज्ञान अच्छा था। अपने ग्राम के धनुष यज्ञ में ये बचपन से ही भाग लेते थे। बाद को ये उसके सर्वेसर्वा रहे तथा उसके लिए कविताएँ रचते रहे। समाज-सुधार के कार्य में ये काफी दिल-चस्पी लेते थे। 'रसिक-समाज' के मंत्री तथा 'कायस्थ-सभा' के कई वर्ष तक उच्च पदाधिकारी रहे। "कायस्थ-कान्फ्रेन्स-गजट" नामक पत्रिका का लगभग ६ वर्ष तक इन्होंने सम्पादन किया। रचनाओं का विषय-शृङ्गार भक्ति और वेदान्त रहा। प्रकाशित 'नवीनगङ्गालहरी' में गङ्गा की प्रशस्ति में सर्वोत्तम ५२ छन्द संगृहीत हैं। इनकी कविताएँ सरस और सुन्दर हैं।

कैधों अरविन्दन पै भीर है मिलंदन की,
कैधों ससि मंडल पै नाग बृन्द छाये हैं।
पूनम अमावस मिलैं धौं अंकलाय कैधों,
परकास तम दोनों एक संग भाये हैं।
कैधों सतोगुन पै तमोगुन चढ़ाई कैधों,
रूप की घटा पै घन कारे घिरि आए हैं।
कैधों रैन कामिनि मयंक को भरत अंक,
कैधों केस भामिनि के आनन पै छाये हैं।

× × ×

हरि चरचा के अमी बुन्द से न मोद बढ़ै,
सूखत जवास जैसे मेघ की फुहारी में।
आनाकारी करै सुनि साधु उपदेस जैसे,
पातना बसंत में करीलन की डारी में।
झूठी वासना में परि भ्रमै जीव मूढ़ महा,
जैसे बन घूमै मृग भूलो भ्रम भारी में।
वासना विषय ही में मानत परम सुख,
मगन उलूक जैसे रैन अँधियारी में।

× × ×

बाँको दरबार है बखानो जह्नु नन्दिनी को,
ठाढ़े रुख जाके सब विबुध निहारा करैं।
देखि छवि पुंज त्यों तरंगन के रंगन को,
सेवक सुरेस सुरलोक छवि वारा करैं।
पापिन उधारिबो अनोखी है बिरद तेरो,
आठो जाम बेद चहुँ द्वार पै पुकारा करैं।
ठाढ़े सारदादि रंभा चौंर लिए ढारा करैं,
दारा देवतान की सुआरती उतारा करैं।

रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण'—पूर्ण जी हिन्दी के उन गिने चुने कलाकारों में थे जिनको पाकर साहित्य धनी बनता है। ये बड़े ही प्रतिभा सम्पन्न, स्वभाव के मधुर तथा निरभिमानी थे। कानपुर "रसिक-समाज" के प्राण, सनातन धर्म के स्तम्भ; साहित्य के मर्मज्ञ, और मनुष्यता के प्रतीक थे।

इनका जन्म घाटमपुर तहसील के भदरस (भद्रपुर) नामक ग्राम में सुप्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में मार्गशीर्ष कृष्णत्रयोदशी संवत् १९२५ में हुआ था। 'राय' की उपाधि इनके पूर्वजों को मुसलमानी-काल में किसी बादशाह के द्वारा मिली थी। इनके पिता राय वंशीधर जबलपुर, मध्यप्रदेश में वकालत करते थे। यहीं इनका बाल्यकाल बीता तथा शिक्षा मिली। राबर्टसन् कालेज जबलपुर से बी० ए० करके कानूनी शिक्षा प्राप्त की और कानपुर में आकर वकालत करने लगे। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी तथा उर्दू साहित्य का इनका ज्ञान उच्चकोटि का था। संगीत का भी इन्हें बड़ा शौक था। कानपुर के प्रत्येक क्षेत्र में इनकी कुछ न कुछ देन है।

उच्चकोटि के कलाकार, नेता और वकील के रूप में इन्होंने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। पं० पृथ्वीनाथ के निधन के पश्चात् कानपुर के दीवानी कोर्ट में ये अपने समय के सबसे अधिक प्रभावशाली वकील गिने जाते थे। कांग्रेस के समर्थक और हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के उपासक थे। पूर्ण जी के जीवन तथा कार्यों पर दृष्टि डालने से जान पड़ता है कि वे नाम से ही नहीं, काम से भी पूर्ण थे। पूर्णता उन्होंने प्रत्येक कार्य में स्वभावतः पाई थी।

इन्होंने "श्री ब्रह्मावर्त-सनातनमहामण्डल" तथा "कानपुर पीपुल्स-एसोसियेशन" की स्थापना की थी। ये कानपुर म्युनिसिपल बोर्ड

के सदस्य और उपाध्यक्ष भी रहे। प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन कानपुर के यह स्वागताध्यक्ष चुने गये थे। संगीत तथा अभिनय कला की ओर इनका ध्यान अधिक था। अपने ग्राम की रामलीला में केवट का अभिनय बहुत अच्छा करते थे। अनेक काव्य-ग्रन्थों की रचना के अतिरिक्त "चन्द्रकला-भानुकुमार", नाटक तथा "राम-रावण विरोध" चम्पू मुख्य हैं। संस्कृत के कई धर्म ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। भगवान शंकराचार्य कृत वेदान्त ग्रन्थ "तत्वतरंगिणी", "मृत्युंजय" तथा रम्भा-शुक-संवाद" इनके प्रसिद्ध अनुवादित ग्रन्थ हैं। देशभक्तिपूर्ण "स्वदेशी कुण्डल", "वसन्त-वियोग" के अतिरिक्त "क्या हिंदी मुर्दा भाषा है" शीर्षक रचना बड़ी ही प्रभावशाली हैं। "धर्म-कुसमाकर" का कई वर्ष तक सम्पादन किया। ये वक्ता भी बड़े अच्छे थे। देश-भक्ति, धर्म और जाति भक्ति के साथ ही इनमें राजभक्ति की भी कमी नहीं थी।

हिन्दी काव्य को पूर्ण जी ने बहुत कुछ दिया किन्तु इनका मूल्य आँकने में विवेचकों ने प्रायः अनुदारता एवं अदूरदर्शिता का परिचय दिया है।

व्रजभाषा की टकसाली रचना करने वालों में पूर्ण जी का प्रमुख स्थान है। खड़ी बोली काव्य की ऊषा बेला में "वसन्त-वियोग" नामक जैसा सुन्दर काव्य ग्रंथ उन्होंने भेंट किया, वह उनकी प्रतिभा का सर्वोत्तम उदाहरण है। विषय और भाषा दोनों ही दृष्टियों से यह काव्य अपनी विशेपता रखता है। समस्या-पूर्तियों के अतिरिक्त महाकवि कालिदास के मेघदूत का हिन्दी पद्यानुवाद "धाराधरधावन" इनका श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ है। मेघदूत के अनेक अनुवाद हिन्दी में किये गये परन्तु "धाराधरधावन" जैसी विशिष्टता अन्यत्र मिलना कठिन है।

नवकलित केसरवलित, हरित सुपीत नीप निहारिकै,
करि असन घन कदलीन जो कलियाँहिं प्रथम कछार मैं,

हे घन ! विपिन थल अमल परिमल पाय भूतल की भली,
मधुकर मतंग कुरंग वृंद जनाइहैं तेरी गली।

× × ×

बूँदी गहन में चातकन की चातुरी चित चावसों,
दिखराइहैं गिनिहैं अली बगुलीन की रस भाव सों,
ते सिद्ध सुनिकै घोर सोर अथोर जस तुव मानिहैं,
भयलीन निज प्यारीन संभ्रम पाय मिस उर आनिहैं।

× × ×

दिन में अनेक काज लागे रहैं ताते वाहि,
ब्यापत विसेस न प्रभाव दुख भारी को।
पर घन ! जामिनी निपट सोक धामिनी में,
सालति अपार पीर ह्वै है सुकुमारी को।
नींद ते रहित परीछिति पै अचैन चित,
देखहुगे सखा सती भामिनी हमारी को।
बैठिकै झरोखे माहिं कहिकै सँदेस मेरो,
आनँद असेस दीजो दुखिया बिचारी को।

× × × ×

परसि सलिल तेरो सीतल है पौन जौन
ताके मंद झूकन जगैयो प्रान-प्यारी को।
मुकुलित मालती समूहन के साथ-साथ,
प्रफुलित कीजियो पयोद ! सुकुमारी को।
ह्वैकर चकित जबै ताकै सो झरोखे ओर,
दामिनी बलित बेस बानिक तिहारी को,
लागियो सुनावन सरस सोरवारे बैन,
नीरद सुहावन ! वा मान जोग नारी को।

[धाराधर धावन]

चितवत चन्दा ओर कारे घन बाधा करत।
राखत प्रान चकोर निर्मल ऋतु की आस सों।

× × × ×

सखियान की सीख लगै बिख-सी बँसुरी धुनि कान पगे सो पगे,
मति बौरी भई है अचेत दसा तन मैन के ज्वाल जगे सो जगे।
रँग त्यागि सबै दृग 'पूरन' ये घनश्याम के रंग रँगे सो रँगे।
अँखियाँ पल एक न रैन लगैं ब्रजचन्द सों नैन लगे सो लगे।

× × ×

कंज मुखवारी सुकुमारी कंज लतिका सी,
पूरन जू बारी देवनारी बिहारनमें।
आनँद सी आकर जलाकर सी महिमा की,
मोहें हैं दिवाकर दिसाकर सिंगारनमें।
सँग कुलनारी लै सिधारी फुलवारी माँहि,
अचल कुमारी धाम पूजा साज थारनमें।
कनक लता सी कमला सी सुखमा सो लखौ,
चली जात सीता चारु चन्द्रमा सी तारनमें।

× × × ×

झूमि झूमि लोनी लोनी लतिका लवंगन की,
भेंटतीं तरुन सों पवन मिस पाय-पाय।
कामिनी सी दामिनी लगाए निज अंक तैसे,
साँवरे बलाहक रहे हैं नभ छाय-छाय।
घनस्याम प्यारी वृथा कीन्हों मान पावस में,
सुन तौ पपीहा की रटन उर लाय-लाय।
प्रीतम मिलन अभिलासी बनिता-सी लखौ,
सरिता सिधारी ओर सागर के धाय-धाय।

मन्नीलाल मिश्र 'मणिलाल'—ये कानपुर नगर के निवासी तथा हिन्दी, उर्दू, संस्कृत भाषा के पण्डित थे। तीनों ही भाषाओं में इन्होंने रचनाएँ की हैं। कई पुस्तकें प्रकाशित भी हो चुकी हैं। संगीत का इन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। 'हारमोनियम-प्रकाश' नामक ग्रन्थ भी लिख कर प्रकाशित किया था। ये रसिक-समाज के प्रमुख सदस्यों में से थे। कविता इनकी अच्छी है। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या लगभग चालीस है। रचनाएँ देखिये:—

सखिन समेत प्यारी यमुना नहान चली,
धारे नील सारी अंग सुषुमा अमंद है।
मारग में मोहन अचानक ही आयौ जानि,
लाजवस घूँघट में कीन्हों मुख बंद है।
मिश्र मणिलाल प्रभा प्रीतम विलोकि ऐसी,
कीन्हों अनुमान मैन उपमा स्वच्छंद है।
राहु को महान भय मानिके अयान मानों,
सागर पिता की अंक आय छिपौ चंद है।

× × × ×

समुझि विरंचि ने कलंकी कैधों चंद्रमा को,
खंड-खंड करि नभ मण्डल में डारे हैं।
कैधों सुरनारिन ने देवसरि धारि माँहि,
बारि-बारि दीपक चढ़ाये छवि वारे हैं।
कैधों मणिलाल परिजंक पै मयंक हेतु,
निसि सुन्दरी ने सुभ सुमन सँवारे हैं।
बूटे किधौं प्रकृति नवेली नीति साटक के,
कैधों व्योम बीचि रहे छिटक सितारे हैं।

मन्नीलाल 'ब्रजचन्द'—रसिक-समाज के प्रमुख कवियों में से थे। नौघड़ा में इनकी आढ़त की दूकान थी। इन्होंने कई काव्य-ग्रन्थ बनाये जिनमें "नीति रत्नाकर" "प्रेम-तरंग" और "त्रिवेणी-तरंगिणी" आदि प्रसिद्ध हैं। त्रिवेणी की महिमा में लिखे गये इनके छन्द बड़े ही ओजपूर्ण तथा सुन्दर बने हैं।

आनन रावरो चन्द्र लखै 'ब्रजचन्द' कलंक हमें लग जैहै।
त्यों चर्चा किये मेरी कछू सिगरे ब्रज चौंचंद भौन सुनैहै।
मो तन हेरि हँसे मनमोहन हाँसी सखीन के ओठन छ्वैहै।
साँवरे छैल छुओगे जो मोहिं, तो गातन मेरे गुराई न रैहै।

× × × ×

जो घनश्याम अहौ घनश्याम तौ मो दृग नित्त बने रहें मोर हैं।
जो सुखमा सर सुन्दर अंग है तौ मम लोचन मीन किसोर हैं।
जो दृग पंकज सोभ सनै सुठि तौ अँखियाँ मम राजत भौंर हैं।
जो मुख रावरो चन्द लसै 'ब्रजचन्द' जू तौ मम नैन चकोर हैं।

× × × ×

लपकि लपकि बेगि थिरकि थिरकि भूरि,
गति अति आतुरी सों घूमै दामिनी सी है।
ओज भरो धारन धुकार को अखण्ड सोर,
ढोलन को घोर धुनि परै सरसी सी है।
'ब्रजचन्द' प्रानीबृन्द मुदित महान होत,
अद्भुत नैनन सों जाको छटा दीसी है।
नेह भरी थिरता न गहत त्रिबेनी जू की,
तरल तरंग आवै नाचत नदी सी है।

इनके अतिरिक्त श्री रामचरणराय, श्री ब्रजभूषणलाल 'भूषण', श्री मन्नीलाल पाँडे, श्री मन्नीलाल ब्रह्मभट्ट, श्री मुकुन्दलाल, श्री छविनाथ, श्री मथुराप्रसाद मिश्र, डा० भोलानाथ मिश्र और श्री बेनीप्रसाद पाँडे 'बेनी' इत्यादि रसिक-समाज के अन्य कवियों में से थे।

श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी'—ये ब्रजभाषा काव्य-धारा के प्रमुख कवियों में से हैं। कानपुर साहित्य-मंडल के स्तम्भ होने के नाते इनके यहाँ नगर के नये-पुराने शैली के अनेक कवियों का जमघट लगा रहता है। 'रसिक-समाज' से भी इनका सम्बन्ध रहा है। प्राचीन काव्य-साहित्य के मर्मज्ञ और रस, छन्द, अलंकार, का इनका अध्ययन गम्भीर एवं विशद है। वैसे इन्होंने सभी रस में रचनाएँ की हैं। किन्तु भक्ति, शृङ्गार, वीर तथा हास्य इनके प्रमुख रस हैं। इनका अलंकार-विधान देखकर रीति-कालीन कवियों का स्मरण हो आता है। खड़ी बोली के छन्द भी इनके बहुत अच्छे हैं।

नई धारा का अत्यधिक प्रचार, प्रसार होते हुए भी ये पुरानी धारा के उन कवियों में कहे जा सकते हैं जो दृढ़ता के साथ वहीं डटे हैं जहाँ आकर खड़े हुए थे। नगर की साहित्यिक-चेतना में इनका भी विशेष योग रहा है। खड़ी बोली काव्य की भिन्न-भिन्न धाराओं में ये स्वयं नहीं बहे परन्तु खड़ी बोली के कई अच्छे कवि इन्होंने हिन्दी को दिये हैं।

इनका जन्म माघ शुक्ल ८ संवत् १९३९, उन्नाव जिला के अकबरपुर नामक ग्राम में पं० माधवप्रसाद के घर हुआ। अनेक समस्या-पूर्तियों के अतिरिक्त बहुत से स्फुट छन्द लिखे हैं। प्रकाशित ग्रन्थों में 'प्रेमोपालम्भ' तथा "बिहारी–बिहार" प्रमुख हैं। प्रेमोपालम्भ में नामानुसार अपने प्रेमी इष्ट को उलाहने दिये गये हैं। इसके सभी छन्द सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं। 'बिहारी-बिहार' इनकी कई अप्रकाशित पुस्तकों से लिये गये छन्दों का संग्रह है। इनकी रचनाएँ बहुत अच्छी हुई हैं। कहीं-कहीं उर्दू शब्दों का प्रयोग तथा भाषा का अपरिमार्जित स्वरूप खटकने वाला तथा कृति गम्भीर्य को नष्ट करने वाला है। यथाः—

"राधिका रंगीली फोटोग्राफरी करत है"

ये ब्रजभाषा के सिद्धहस्त लेखक के साथ ही बहुत अच्छे फोटोग्राफर भी हैं। इनकी रचनाएँ टकसाली हैं। कोई-कोई छन्द तो ऐसे हैं कि

यदि रीतिकालीन रचनाओं के साथ रख दिये जायँ तो उनकी आधुनिकता पहचानना कठिन हो जाय। अलंकार, शब्द विन्यास और भावों की स्पष्टता इनकी महत्वपूर्ण विशेषता है। इनकी कुछ रचनाएँ आचार्यत्व के बोझ से बोझिल भी हैं। रचनाएँ:—

कैधों है तुषार की सिला पै सिलाजीत विंदु,
फटिक सिला पै कैधों नीलम तरौना है।
चन्दन पलास पै भुअङ्ग कुण्डलित कैधों,
कैधों घनसार पै असित चिह्न ठौना है।
पाटल पै सोहैं गोलगण्डकी के चक्र कैधों,
कैधों दीठि हरन बरन हैं दिठौना है।
कैधों तिल प्यारी कै बिहारी के बिलोकिबे कों,
कैधों चारु चन्द्र पै मलिन्दन के छौना है।

× × × ×

बिहरैं स्वच्छन्द अरविन्द पै मिलन्द वृन्द,
सीतल सुगन्ध मन्द पौन परसै लगी।
बागि बन बेलिन पै नवल नबेलिन पै,
चम्पक चमेली पै सोभा सरसै लगी।
अम्बन कदम्बन पै यादव प्रलम्बन पै,
कोकिल 'बहारी' बोलि बोलि हरषै लगी।
दिव्य दुति बन्तन पै दसहू दिगन्तन पै,
बिरुद बसन्त की बहार बरषै लगी।

× × × ×

आतम अखंड अनादि अगोचर,
है सचराचर में बपु धारे।
तेज महातम ताको महाकहि,
देव अदेव थके श्रुति सारे।

खोजत ताहि बिहारी हिये बिच,
ये उपमा उपमेय निहारे।
मोम को मन्दिर माखन को मुनि,
बैठो हुतासन आसन मारे।
× × × ×
बरसन लागे इत बरसन लागे उत,
बरसन जाय कहु बरसनमानै री।
नाहीं हरि आये हरि आये महि छाये हरि,
हरि हरि ठौर हरि हीको हरि ठानैरी।
चेरिन की चेरी हौं कमेरी ऐरी मेरी बीर,
सरबस देउँ जो बिहारी स्याम आनैरी।
अरज न मानै मेरी हरज न जानै हाय,
गरज न जानै मेह गरजन जानैरी।

हास्य

मैया पितु सीस पै फुहार कैसी ? गंगधार,
भाल पै ? मयंक नैन तीसरो लसत है।
उर मैं पर्‌यो है कहा ? सोहै मुण्ड माल लाल,
कारो कंठ कैसो ? विष धारो दरसत है।
अंग में लगी है का ? विभूति सो 'बिहारी' बर,
कटि में लपेटे कहा ? व्याल विलसत है।
आगे जनि पूछै तासौं लागी मुख चूमै उमा,
बन्दौ चतुराई जो दिगम्बर हँसत है।

वीर

छायो है अतंक द्वन्द युद्ध को बिहारी घोर,
लंक मेदनी है बनी घनी यमसाला सी।
रुन्ड मुन्ड काटे कटे कटत पहाड़ जैसे,
श्रोणित सलिल बहै सरि बिकराला सी।

समर सकोपि सत्रुजित जो चलाई सक्ति,
सामुहे अनन्त धाई करत उजाला सी।
फफकति आवै ज्यों फनाली अंसुमाली सम,
धधकति आवै मानौं ज्योति ज्वाल माला सी।

खड़ी बोली में भी इन्होंने लिखा है। खड़ी बोली के इनके कई सवैये सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही':—खड़ी बोली काव्यधारा की प्राण प्रतिष्ठा तथा आधुनिक हिन्दीकाव्य के निर्माताओं में इनका प्रमुख स्थान है। ब्रज-भाषा तथा खड़ी बोली दोनों में समान रूप से लिखने वाले प्रौढ़ कलाकारों में आचार्य सनेही जी भी एक हैं। प्रारम्भ में ब्रज भाषा में ही लिखते थे। बाद को आचार्य द्विवेदी जी से प्रोत्साहन पाकर खड़ी बोली के काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। खड़ी बोली को सनेहीजी ने बहुत कुछ दिया है। ब्रज-भाषा की रचनाएँ भी इनकी बहुत अच्छी है। वर्ण्य चातुर्य, अलंकार और शब्द योजना के साथ ही भाषा की सफाई और सुबोधता इनका विशेष गुण है। रचनाओं के उदाहरण देखिए:—

वह सूधे सुमारग ही पै चलैं. हम प्रेम की गैल लई सो लई।
उर सीतल आपनो राखैं सदा, हम तापन सों हैं तई सो तई।
इन चौचन्दहाइन का परी है, हमसों भई भूल भई सो भई।
अपनी कुलकानि सम्हारे रहैं, हमरी कुलकानि गई सो गई।

× × × ×

दर्पन में हिय में वह मूरति आय बसी न चली तदवीरैं।
सो है टुटूक सनेही गयो वै परीं बिरहागिनि ताप की भीरैं।
दोउन में प्रतिबिम्बित ह्वै छवि दूनी लगी उपजावन पीरैं।
सालति एकै रही जिय में अब एक ते ह्वै गईं द्वै तसवीरैं॥

नारी गही बैद लोऊ कहिगो अनारी सखि,
जानै कौन व्याधि याहि गहि गहि जाति है।
कान्ह कहै चौंकत चकित चकरात ऐसी,
धीरज की भीति लखि ढहि ढहि जात है।
सही सहि जात है न, कही कहि जात कछु,
कछू को कछू सनेही कहि कहि जात है।
बहि बहि जात नेह, दहि दहि जात देह,
रहि रहि जात प्रान, रहि रहि जात है।

× × × ×

फाटत ही खम्भ के अचम्भि रहे तीनों लोक,
संकित वरुण हैं पवन गति मंद हैं।
घोर गर्जना कै झट झपट झड़ाका जाय,
देहली पै दाब्यो दुष्ट दानव दुचन्द है।
पूरो बर कीन्हो है, अधूरो न रहन पायो,
तोड़ी देव बन्दि और फार्‌यो भक्त फन्द है।
नर है न नाहर है घर है न बाहर है,
दिन है न राति है, न सूर हैं न चन्द है।

× × × ×

हार बनावन को उनके हैं, पिरोवती मोतिन की लड़ी आँखें।
दाबि हियो रहि जइबो परै, लखिकै गुरु लोगन की कड़ी आँखें।
हाय कबै फिर सामने ह्वै हैं 'सनेही' सरोज की पंखुड़ी आँखें।
सालैं घड़ी घड़ी जी में गड़ी रस सों उमड़ी वे बड़ी बड़ी आँखें।

× × × ×

बंस की ह्वै कै छुड़ावत बंसहिं तीर सी ह्वै हनै तीर सी तानैं।
बेधी गई तऊ बेधि की बेदना, बूझै न बेधत खेद न आनैं।
सूखि गई हरियारी तऊ रही, ह्वै कै हरी है सुखावत प्रानैं।
पीवत तौ अधरामृत पै बरै, बाँसुरिया बिष बोइबो जानैं।

केशवदेव शास्त्री "केशव"—इनका जन्म कानपुर जिलान्तर्गत भाऊपुर नामक ग्राम में कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं० कांचन प्रसाद शुक्ल के यहाँ हुआ। संस्कृत के ये प्रसिद्ध विद्वानों में से हैं। ब्रज-भाषा काव्य के मर्मज्ञ एवं इसके उद्भट रचनाकारों में से हैं। काव्य की शास्त्रीय पद्धति पर जितना अधिक अधिकार इनका है उतना थोड़े से लोगों में ही दिखाई पड़ेगा। संस्कृत में ये बड़ी ही उत्तम रचना करते हैं। अपनी खड़ी बोली की कविता में इन्होंने संस्कृत के वर्ण वृत्तों को अपनाया है यद्यपि खड़ी बोली में कम ही लिखते हैं किन्तु जो कुछ लिखा है वह उच्च कोटि का है। संस्कृत के वर्ण वृत्तों का इनका सफल प्रयोग देखकर महाकवि स्व० हरिऔध जी का स्मरण हो आता है। वर्ण-वृत्तों में इतनी सुन्दर रचना करने वाले कवियों में हरिऔध जी के अतिरिक्त दो चार ही कवि मिलेंगे।

खड़ी बोली का इनका 'स्वराज्य-तरंगिणी' नामक महाकाव्य हिन्दी का श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ होता किन्तु उसके लगभग २१ सर्ग लिखे जाने के बाद स्वराज्य के विकृत रूप से क्षुब्ध होकर इन्होंने अपनी लेखनी को विराम दे दिया। इनकी 'शिवा-बाजि-बावनो' पुस्तक अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें शिवा जी के घोड़े का वर्णन बावन छन्दों में किया गया है। महाकवि भूषण की 'शिवा-बावनी' और वर्तमान केशव की 'शिवा-बाजि-बावनी के छन्दों को पढ़ कर यह कहना कठिन हो जाता है कि ओज, शौर्य और वर्णन में परस्पर कौन श्रेष्ठ है। समस्या 'बारा करैं' की पूर्ति-देखिए:—

दिन द्वै तें गई दासियौ रूसि, कहौ अब काको सहारा करैं।
कवि 'केशव' ऐते बड़े घर में, इकली कस रैन गुजारा करैं।
घुसि आवै न कोऊ अँधेरिया में, हहा दीप कहाँ कहाँ बारा करैं।
डर लागत द्वार लौं जाइबे में, हम कैसे कै बन्द किवारा करैं।

आयो प्रान प्यारो आजु सखिन समाज बीच,
लाज प्रान प्यारी अंग अंग सिकुरति है।
मुख महताब मूँदिबे कों घुँघटा लों कर,
ऊँचो होत जोर भुज मूल पै परति है।
'केशौ' कवि ताही खन मैन की मरोरनि में,
आँगी धारि उरज उत्तंग उघरति है।
मानौ चंद डूबत उमंडित ह्वै पात टारि,
जात रूप वारो जलजात निकरति है।

× × ×

बैठी प्रान प्यारी प्रान प्यारे के विरह माँहि,
अंग अंग अगिन अनंग की बरत है।
फैल्यो केश पास लहरात मुख मोहिनी के,
नैन नीर उच्च कुच कुम्भन ढरत है।
'केशौ' कवि ताही खन अजब अनोखी यह,
कल्पना हमारे उर आनि के अरत है।
मानौ राहु राकस दबायो चन्द्र मण्डल सो,
निचुर पियूष सैल श्रृंगनि परत है।

× × ×

तेलिन की जाति में सनेही कहूँ कोऊ रहे,
मेलिन की बात पै सनाका दर दर में।
मानिन के नाम पै रह्यो है काठ चाकिन में,
दानिन की दानिता दिखानी है उदर में।
'केशौ' कवि कैसी ये दशा है आज भारत की,
भानु ही में मित्रता रही है देस भर में।

हाट के मजूरन में बृन्द रहे राजन के,
गज रहे केवल बजाजन के घर में।

× × ×

जगमग जागत जवाहर-जटित जीन.
प्रखर खलीन मुख मुखरित आवै है।
खुर-पुट-पाटित - महीतैं रेनु-रासि-मिस,
मुगल - महीप - मद उखरत आवै है।
'केशौ' कवि कहत बहत कोटि-बाहु-बल,
सबद शिवा कौ सुनि हिकरत आवै है।
झिकरत आवै चहुँ ओरन खवासन कौं,
मन्द मन्द मन्दुरा तैं निकरत आवै है।

× × ×

ग्रीव पै परत गज सुण्ड कौ लपेटा लखि,
छरकीलो जात छलि छटकि छलावा सो।
कावा सो पलटि तुण्ड बाय कै धरत धाय,
एते अतिकाय कौं पटकि देत लावा सो।
'केशौ' कहै छत्रपति बाजि रङ्ग सङ्गर मैं,
बैरि बन बीथिन मैं धधकत दावा सो।
खावा सो करत खेत खोदि भुम्म सुम्मन सौं,
काटि काटि रुण्ड मुण्ड गरत पजावा सो।

ब्रज भाषा का 'रस-सर्वस्व' नामक इनका श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। ब्रज-भाषा के आधुनिक श्रेष्ठ कवियों में इनकी गणना है।

———

किशोरीदास वाजपेयी—हिन्दी के सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री, लेखक और आलोचक बाजपेयी जी का जन्म सम्वत् १९५९ के लगभग कानपुर जिले के मन्धना स्थित रामनगर ग्राम में कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं० सत्यदीन के यहाँ हुआ। बहुत छोटी आयु में ही आपके माता पिता का देहान्त ग्राम में प्लेग फैल जाने के कारण हो गया था। इसके बाद का इनका जीवन बड़ा ही कष्टप्रद है। शास्त्री की परीक्षा में इन्हें पंजाब विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान मिला था। देश-प्रेम और हिन्दी प्रेम इनके रोम-रोम में व्याप्त है। देश के स्वातन्त्र्य संग्राम में इन्होंने जेल यातनाएँ भी सही हैं। आजकल आप कनखल हरद्वार में निवास करते हैं। आपने ब्रजभाषा में बड़ी उत्तम कविता की है। इनके टकसाली दोहों में विषय की नवीनता तथा भावों में मौलिकता है। भाषा का माधुर्य ब्रज की पुरानी पद्धति के अनुसार हुआ है। इनकी ब्रज भाषा की रचनाएँ 'तरंगिणी' नामक पुस्तक में संगृहीत हैं। ब्रज भाषा काव्य में विषय को बदल कर काव्य में युगान्तर लाने का श्रेय वाजपेयी जी को है। ब्रजभाषा के एक मात्र कवि वाजपेयी जी हैं, जिन्होंने राजनीति और समाज-सुधार तथा छुआछूत आदि आन्दोलन को अपना वर्ण्य-विषय चुना। फिर भी बड़े खेद के साथ यह कहा जायगा कि हिन्दी के लगभग सभी इतिहासकारों ने इस महत्वपूर्ण कार्य के प्रति बिल्कुल ही ध्यान न देकर आँखें बन्द करके काम लिया।

रचनाओं के उदाहरण:—

> क्यों रोवत हिमगिरि इते वृथा बहावत नीर।
> भारत के वै दिन गये, गये बाँकुरे वीर।
> पीसति गावत झूम कछु, घरनी सुघर रसाल।
> चन्द बदन अरुणित कछुक, कछु श्रम सीकर भाल।
> गरम कहत या हिन्द कौं, जग के लोग हमेस।
> पै न गरम अब नेकहू, रह्यौ हाय यह देस।

फाटक दिल्ली दुर्ग के, करत धका दै भंग।
तिन जाटन के छिलत हैं, अब खादी सों अंग।
सुग्गा परभाषा रटत, केवल चुग्गा हेत।
ज्ञान मान बिनु मूढ़ सठ, परि बन्धन दुख लेत।
छरति छरहरी छबि भरी, धान छबीली बाम।
मनु ब्याधिन के सीस पै, देत मुसल अविराम।

× × ×

ग्रीसम ने आइ दीन्हीं, विपति अपार ताते,
अति विकराल सीत साँसति दहन्त है।
फूलन को फलन की बात गई गात जरे,
पात सूखि गिरे महि परे ते दिगन्त है।
जर है पताल अरु, अन्तर मैं सार ताते;
सीस कियो ऊँचो अजौं सामुहैं लसन्त है।
पादप तिहारे दिन आये घिरि देखु वह,
सीत कौं दबोचे वीर आवत बसन्त है।

———

महावीरप्रसाद त्रिपाठी 'मधुप' (१६४१-२००६)—ये जिला रायबरेली के अन्तर्गत बछरावाँ ग्राम के निवासी थे। आत्म विज्ञापन से दूर और मस्ती का जीवन बिताने वाले साहित्यकारों में इनका नाम भी रखना आवश्यक है। कानपुर गवर्नमेंट स्कूल में हिन्दी के अध्यापक थे। इसके पूर्व ये शिवराजपुर में ट्रेनिंग स्कूल के प्रधान थे। इन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में ही काफी लिखा है। भाषा के मामले में विशेष ध्यान देने की इनको आदत नहीं थी। इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का मिश्रित स्वरूप देखने को मिलेगा। "कुण्डिन-कुमारी" अर्थात् महारानी दमयन्ती की जीवनी कविता पुस्तक के अतिरिक्त इन्होंने 'श्यामायन' नामक एक विशाल काव्य ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ रामायण

की तरह सम्पूर्ण कृष्ण-चरित्र वर्णन की दृष्टि से लिखा गया है। चौपाई दोहा, सोरठा, छन्द के अतिरिक्त अन्य छन्दों का भी इसमें समावेश किया गया है। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। इसकी हस्तलिखित प्रति मैंने सर्व प्रथम बी० एन० एस० डी० कालेज कानपुर की रजत-जयन्ती महोत्सव पर देखी थी। निस्सन्देह यह हिन्दी काव्य की अच्छी कृतियों में से कहा जा सकता है किन्तु इस विशाल ग्रन्थ को कोई छापेगा, इसकी सम्भावना कम ही है। इस ग्रन्थ की यह हस्तलिखित प्रति इधर उधर घूम रही है। इस ग्रन्थ का कुछ अंश 'सुकवि' फरवरी सन् १९४६ के अंक में प्रकाशित हो चुका है। 'श्यामायन' का कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है:—

देखत मोहन बाटिका में तजि कै रथ ऊधव गोप से धाये।
गोप को भेष औ भूषा सबै छलकै मुद गोप गुवालहिं भाये॥
शिष्टाचार विचार बिसारि मिलै कहँ बाहु पसारि सिधाये।
ऊधव माधव के पद कंज परे क्यहु भाँति उठैं न उठाये॥

ऊधव जू! भरि स्याम, कहहु बहुत दिन ब्रज रहे।
कस अधीर बुधि धाम! का कृतकाज भये नहीं॥

असु अवसेस पात्र होस हैं भुलानी सब,
अहि जानि बेनी मोर मुदित चबाये लेत।
भौंर दाख भौंर जानि यौवन पै करैं चोट,
चाटे जात सकल सुरस अपनाये लेत।
फूलै न पलास फूल विरही करेजे काढ़ि,
डार-डार पर डारि-डारि कै सुहाये लेत।
आयगो बसन्त भोरी गोरी गोपिकान हेत,
माधौ चलौ वेगि बैरी ब्रज को लुटाये लेत।

यह मेरो प्रण नाथ, अबहीं लावत स्याम कूँ ?
है राउर के हाथ, अब न सखा बिलमहु इतै ॥

बोले स्याम मधुर मुसकाई, करिहहुँ तव प्रन पूरन भाई।
अब तो तात रैनि नियरानी, होत प्रात चलिहहुँ गुनखानी।
दोक्षित प्रेम सखा निज देखी, मन पुलके जदुनाथ विसेखी।
रथ चढ़ि कुबिजा-गेह सिधाये, कुबिजा कै आदर बैठाये।
भोजन मान पान सन अर्चा, पुनि छेड़ी मोहन ब्रज चर्चा।
प्रेम अमान गोपिकन केरा, ऊधव मन भरि रहेउ घनेरा।
सो निसरन लाग्यउ सत धारा, ब्रज न प्रेम कर बारापारा।
अस कहि चरन सरोज कन्हाई, ऊधव गहे प्रेम कदराई।
साश्रु नैन आनन दिसि देखी, कह प्रभु यह मम मन अवरेखी।
मोहिं न मोक्ष दीजो जदुराई, अरु न इन्द्रपद की प्रभुताई।
विद्या वर वपु चहहुँ न भोरे, प्रबल लालसा इक मन मोरे।

लता गुल्म ब्रज की कछू, मोकहँ देहु बनाय ।
गोपिन की पग धूरि जो, पर्यो करहि सिर आय ॥

मदनलाल चतुर्वेदी (१६६०)—इनकी शिक्षा दीक्षा तथा साहित्यिक जीवन का निर्माण कानपुर में ही हुआ। ब्रज भाषा काव्य क्षेत्र में इनकी प्रतिभा खूब निखरी है। 'कवीन्द्र' मासिक पत्र में इनकी रचनाएं प्रायः छपा करती थीं। सन १६२६ में 'स्वतन्त्रता' के सहायक सम्पादक होकर ये कलकत्ता चले गये। कुछ दिन 'भारतमित्र' में रहे और फिर सन् १६३० में 'लोकमान्य' के प्रकाशन होने पर उस में चले आये। आज कल आप

लोकमान्य के प्रधान सम्पादक हैं। स्वभाव मधुर, सहृदय, निरभिमानी कलाकार के रूप में वे आज भी हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र को गौरवान्वित कर रहे हैं। इनकी कविताओं में देश-प्रेम की बड़ी ही सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। हृदय की प्रेमानुभूति, ज्ञान और भक्ति का मिश्रण इनकी कविता की मुख्य विशेषता है।

परमानन्द विथोरै और सुधा माधुरी घोरै।
मृदु-मुसकान सुजान रावरी उर अन्तर पुलकावै।
कोटि भानु ससि के प्रकास सम जीवन ज्योति जगावै।
चितवनि सों दुख हरहु भले बोलत ही मधुरे बैना।
आपुहि उनीदे झुके मद छके खुलैं तुरत ये नैना।
पाँय पदम की आस दया करि प्रेम वारि बरसैये।
भीख तिहारिय की ललचौहों यह आँजुरी भरैये।

× × ×

अवसर बीतौ जावै।
और सहेली गई अगारू तैंही गररू लगावैं।
धीर समीर, साँझ सकुचानी निकरी प्रथम तरैया।
लैन बसेरे कौं उरिआईं देखौ सगुन चिरैया॥
चुकटी कछु पिरातसो तुअ कटि निहुरत दूखी दीसै।
फुलवा बीनत बेर भई अब चलु नत साजन रीसै।
फिरत अँधेरो नगर-कोट को द्वार बन्द ह्वै जैहै।
फिर बिन चीन्हें तोहि पहरुआ भीतर जान न दे है।
बूझि फँसै जनि लटकत है इत करम काल की फाँसी।
या बगिया में पुनि आवन की तजिदै प्रथा प्रनासी।

महादेवप्रसाद शुक्ल 'शंकर' (१८८७–१९५७) ये गौरी भगवन्तपुर के प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं० सूर्यप्रसाद के पुत्र थे। संस्कृत और हिंदी के प्रकाण्ड विद्वान तथा ज्योतिष और वैद्यक के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने संस्कृत तथा हिंदी दोनों में लिखा है। लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिखीं जिनमें छः का प्रकाशन हो चुका है; शेष अप्रकाशित हैं। इनकी रचनायें उत्तम हैं।

यह प्रकृति पुरुष को सांख्य पृथक करवावै।
ऊधो हमको यह शास्त्र नेक ना भावै।
हम कहत तत्वमसि रूप एक अविनासी।
नहिं स्याम स्वेत नहिं पीत चराचरवासी॥
जो होत हृदय के बीच नन्दसुत मेरे।
दुख ताप मदन की पीर बसत नहिं नेरे॥
ऊधव अरूप को रूप कौन विधि ध्यावै।
हम बहुत यतन मन हृदय ढूँढ़ि नहिं पावै॥
ऊधौ हरि सँग बस भलो ढोंग लै आये।
वृज गोप वधुन को सांख्य ज्ञान समुझाये॥

सदासुख मिश्र (१९०२–१९५६):—ये ग्राम भद्रपुर (भदरस) के पण्डित दत्तरामजी के पुत्र थे। हिंदी, उर्दू और संस्कृतका ज्ञान अच्छा था। उन्नाव जिले के कई स्कूलों में अध्यापक और प्रधानाध्यापक रहे। ज्योतिष और वैद्यक से इन्हें बड़ा अनुराग था। इन विषयों की कई पुस्तकों का इन्होंने पद्यानुवाद भी किया। कविवर सनेही जी ने इन्हीं के पास शिक्षा प्राप्त की और कविता का ज्ञान भी प्राप्त किया। इनकी

रचनाएँ रसिक वाटिका तथा रसिक मित्र में छपा करती थीं।

आनन सों सुभ आनन लालरु नैनन सैनन देखि अकासन।
कानन ढारन तानन बैनन मोहि लियो मन बैठि सुभासन।
वारन ताड़न अंग सँवारन हाथन कंकन फन्द पचासन।
मिश्रसदासुख दाँतन हाँसत प्रीतम के हित पुष्प सरासन।

ब्रह्मानन्द मिश्र 'आनंद' (१९३६):—ये पं० सदासुखजी मिश्र के पुत्र हैं। उन्नाव, गोंडा, प्रतापगढ़, बाराबंकी के हाई स्कूलों में अध्यापन कार्य किया। इस समय आप अपने ज्येष्ठपुत्र श्री गंगानारायण मिश्रके पास कानपुर में ही रहते हैं। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में गद्य तथा पद्य लिखे हैं। कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखकर प्रकाशित कराईं। भक्ति तथा ज्ञान विषयक रचनाओं के अतिरिक्त सामयिक विषयों पर भी लिखते रहते हैं।

सब में जो रमा वह ब्रह्म है राम किये कल्याण ते सम्भु कहावै।
मन इन्द्रिन की गति को करषै निज ओर तबै श्रीकृष्ण बतावै।
जल औ नर नारिन मध्य बसै सो नरायन जोति हिये उपजावै।
शिव राम रु कृष्ण हैं एकहिं ब्रह्म न भेद कुभाव कोई उर लावै।

श्यामनारायण मिश्र 'श्याम'(१९६२):—ये डेरापुरके निवासी तथा अध्यापन कार्य करते हैं। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के अतिरिक्त फारसी का भी आपको ज्ञान है। हिन्दी तथा उर्दू में आप लिखते हैं किन्तु ब्रज भाषा में इनकी रुचि अधिक है। इनके पूर्वज सवासौ वर्ष पूर्व अपने निवास स्थान भगवन्तनगर मल्लावाँ जिला हरदोई छोड़कर अपनी ससुराल डेरापुर जिला कानपुर में आ बसे थे। प्रकाशित काव्य पुस्तक 'निःश्वास' में

गोपियों का विरह वर्णन है। यद्यपि इस विषय को लेकर ब्रजभाषा में उत्त-मोत्तम कविताएँ लिखी गई हैं और इस प्रकार यह पुरानी लीक पीटना ही है। किन्तु कहीं-कहीं भावों का निखार पूर्व कवियों से बढ़कर दिखाई देता है। भाषा में पूर्वीपन का दोष अवश्य आ गया है। गोपियों की ऊधव से बातचीत के बीच कुछ पंक्तियाँ बड़ी ही मार्मिक बन गई हैं—

कुलवधू ह्वै कै हाय कुलटा कहाईं अब,
स्याम की कहाइ कहौ कौन की कहावैं हम ?

× × ×

श्याम अबाई सुनी दिन एक, चलीं सब लेन उलास विभोरी।
होरी समीपहिं जानि लियौ सँग, रंग अबीर उमंग न थोरी।
साँझ भई मग हेरि भई दुख, साँझन बैठि गईं वहि ठौरी।
आँसुन धार अबीर बन्यौ रंग, रंग उसाँसन सों भयौ रोरी।

× × ×

फिरत बिकानी बिललानी औ हिरानी सी है.
एक बेर मैया को वे मैया कहि टेरि जायँ।
छीन दीन हीन वृषभानु की सुता की दसा,
'श्याम' आपु दया करि दीठि भरि हेरि जायँ।
बातैं नहिं जानैं हम बहु एक बीनती है,
छिन आइ झगरौ सदाई कौं निबेरि जायँ।
हमसों न काम मन राखि कै करैंगे कहा,
माँगैं भीख मन वे हमारौ हमें फेरि जायँ।

जिले के अन्य पुराने कवियों में तुलसीराम मिश्र, बदरीप्रसाद शर्मा, बालगोबिन्द कानपुर, शिवदयाल 'केवल', पं० बाँकेलाल चौबे मंगलपुर, श्री सत्यनारायण त्रिपाठी मन्धना, शिवबालक राम पाँडे 'बालक'

दिलबल खानपुर, छेदाशाह सैयद पौहार, बदलू प्रसाद त्रिपाठी करबिगवाँ, मनीराम मिश्र साढ़ी, शिवप्रसाद मिश्र सँचेड़ी वालों के नाम प्रमुख हैं। किन्तु इनकी रचनाएँ प्राप्त नहीं हो सकीं। पं० अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'सेवक' भी ब्रजभाषा के पुराने कवियों में से हैं। ये आशु कविता भी करते है।

खड़ी बोली के कवियों ने भी ब्रजभाषा में उत्तमोत्तम रचनाएँ की हैं किन्तु उनमें भावों की नवीनता प्रायः नहीं मिलती। ब्रजभाषा की कविता, सुन्दरी नायिकाओं के नख शिख वर्णन के आगे दीन-हीन कृषक बालिकाओं के फटे वस्त्रों की ओर नहीं देख सकी। मदमाते नयनों के समक्ष, गंगा यमुना के प्रबल वेग धारण करने वाली आखों की गहराई में वह न डूब सकी। श्रृंगार के अतिरिक्त कोरा दर्शन और भक्ति को लेकर भूखे नंगे देश का कब तक मन बहलाया जा सकता था? ब्रजभाषा की कविता जीवन की वास्तविकता की उपेक्षा करके कृत्रिम सौन्दर्य और विलासिता का नशा छोड़ नहीं सकी। अस्तु उसके प्रति उपेक्षा वरती जाने लगी। यद्यपि भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र आदि शक्तिशाली कलाकारों ने भी कविता के लिए ब्रजभाषा का समर्थन किया किन्तु युग की आवश्यकता को दबाने की शक्ति तो किसी में नहीं होती। अतः द्विवेदी युग के प्रारम्भ में कुछ दिन तक हिन्दी कविता में ब्रजभाषा चली और फिर थोड़े दिनों के बाद युग की आवश्यकता में वह स्वयं ही खो गई।

पंचम अध्याय
गद्य युग

गद्य की आवश्यकता:—गद्य का विकास तब तक नहीं होता जब तक कि उसके प्रचार प्रसार के लिए उपयुक्त साधन उपलब्ध न हों। काव्य की सूक्तियाँ जितनी शीघ्रता के साथ कण्ठस्थ करके प्रयोग में लाई जा सकती हैं, गद्य की पंक्तियाँ नहीं। प्रचार और प्रसार के अन्यान्य साधनों के अभाव में गद्य बोलचाल तक ही सीमित रहता है। यही कारण है कि सभी भाषाओं में पद्य पहले और गद्य बाद में मिलता है।

कविता के द्वारा भावों को सूत्र रूप में रख देना सरल है। गद्य में यह कार्य इतना सरल नहीं। मनुष्य अपने अधकचरे ज्ञान को लेकर भी काव्य की सूक्तियों को समझ लेने की शक्ति रखता है, परन्तु गद्य की विशदता उसके लिए दुरूह बन जाती है। गद्य का पक्ष बुद्धि-प्रधान है; और बौद्धिक विवेचन काव्य के द्वारा नहीं किया जा सकता। मनुष्य की तर्क-शक्ति को संतुष्ट करने वाली स्थिति काव्य में प्रायः नहीं होती। सूत्र रूप में व्यवस्थाएँ काव्य के द्वारा मनुष्य को हृदयंगम कराई जा सकती हैं। परन्तु मनुष्य की विचारशक्ति की तुष्टि काव्य के द्वारा नहीं हो पाती। इसी आधार को लेकर कहा जाता है कि कविता हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं। बुद्धि और हृदय में जो अन्तर है वही अन्तर गद्य और पद्य में है। जब तक बुद्धि का विकास नहीं हुआ किसी

व्याख्यात्मक वस्तु की आवश्यकता नहीं हुई। परन्तु ज्यों-ज्यों मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था को पार करके बुद्धि के बल पर बढ़ने लगा त्यों-त्यों उसका संसार व्यापक होता गया। व्यापकता की पहली आवश्यकता व्याख्या है। मानव के इसी विकास ने इंगित निर्देशों को छोड़कर भाषा को जन्म दिया था। बुद्धि की तीक्ष्णता ही नये नये कार्यों को प्रेरणा देती है और उसकी पूर्ति के लिए साधनों का आविष्कार कराती है। अस्तु, मानव जीवन ज्यों-ज्यों विस्तार और व्यापकता की ओर बढ़ा, त्यों-त्यों उसे क्रियाओं का विधिवत निरीक्षण, अध्ययन और परीक्षण की आवश्यकता अनुभव हुई। यह महत्वपूर्ण कार्य पद्य के द्वारा होना सम्भव नहीं था किंतु गद्य के प्रचार प्रसार में साधनों का अभाव आड़े आता था। पंडित रमाकान्त त्रिपाठी अपनी 'हिन्दी गद्य मीमांसा' की प्रस्तावना में में लिखते हैं:—

"गद्य लिखने की परिपाटी प्रत्येक देश में तभी पड़ी थी जब मुद्रण यन्त्रों का आविष्कार तथा प्रचार हुआ और जब समाज में शिक्षित समुदाय की वृद्धि होती है तभी गद्य साहित्य की खपत होती है।"

वस्तुतः शिक्षित समुदाय की वृद्धि तथा बुद्धि का विकास शांत वातावरण की अपेक्षा रखता है। कोई भी बौद्धिक कार्य शांति के बिना सम्भव नहीं है।

भारतीय साहित्य में चिन्तन शक्ति का परिचय बहुत प्राचीन समय से ही मिलेगा किन्तु विकास की चरम सीमा पर पहुँच कर साहित्य की धारा पद्य से गद्य की ओर मुड़ती ऐसे अवसर हिन्दी को प्रारम्भ में नहीं मिले। यहाँ की राजनीतिक स्थिति सदियों ऐसी विषम अवस्था में रही, जिसके कारण विभिन्न प्रकार के कार्यों में ध्यान दिया ही न जा सका। कुछ इसी प्रकार की अन्य कठिनाइयों का भी यह परिणाम हुआ कि

हिन्दी पद्य ने विक्रम की आठवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर ग्यारहवीं शताब्दी में स्पष्ट आकार ग्रहण कर लिया। लेकिन गद्य के दर्शन विक्रम की १४वीं शताब्दी के पूर्व नहीं हो सके।

खड़ी बोली का उद्गम क्षेत्र :—गद्य की आवश्यकता उत्पन्न होने के साथ ही भाषा की समस्या भी आ खड़ी हुई। पद्य की भाषा तो ब्रज भाषा थी ही, गद्य भी विक्रम की १४ वीं शताब्दी तथा उसके आस-पास में लिखा गया है। किन्तु खड़ी बोली का गद्य १६वीं शताब्दी में ही जन्म लेता है। भारतीय जनता की मेरठ तथा दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली भाषा तथा फारसी के मिश्रण से उर्दू का जन्म हुआ। प्रारम्भ से ही उर्दू को अरबी-फारसी के जामे में इस बुरी तरह जकड़ा गया कि वह अपनी भारतीयता के अधिकार को खो बैठी। इसका स्थान विशुद्ध खड़ी बोली ने ले लिया जो कि मेरठ और दिल्ली के आस-पास बोली जाती थी। यह बात ठीक है कि खड़ी बोली उर्दू से प्रभावित तो थी किन्तु उसके संस्कार भारतीय थे। खड़ी बोली हिन्दी और उर्दू में सम्भवतः कोई विभाजन रेखा न खिंचती यदि उनके संस्कार भारतीय भाषाओं के ही पड़ते। किन्तु खड़ी बोली का आधार संस्कृत बनी और उर्दू का फारसी। देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषाओं के कारण एक सर्वमान्य भाषा का रूप स्थिर न हो सका; लेकिन फारसी उर्दू विदेशी और विधर्मी होने के कारण प्रतिरोध स्वरूप खड़ी बोली प्रचार पा गई। उर्दू के अनेक राज्य-रक्षण पाने वाले शायर लखनऊ आ गये थे। यहाँ की भाषा का प्रभाव उनकी शायरी पर पड़ा भी लेकिन खड़ी बोली से इसका साम्य न हो सका। कुछ लोगों का यह मत भ्रामक है कि खड़ी बोली का जन्म उर्दू से हुआ। यद्यपि खड़ी बोली गद्य के पूर्व उर्दू काफी प्रचार पा चुकी थी लेकिन खड़ी बोली उर्दू से जन्मी, यह गलत है। क्योंकि खड़ी बोली का स्वरूप हिन्दी पद्य की प्रारम्भिक

अवस्था से ही हमें मिलता है। जब कि उर्दू का जन्म भी नहीं हुआ था। हेमचन्द्र सूरि (संवत् ११५२) नरपति नाल्ह (सं० १२१२) तथा चन्दबरदाई (सं० १२२५) आदि कवियों की रचनाओं में खड़ी बोली का स्वरूप देखने को मिलता है। मीर खुसरो (संवत् १३४०) की पहेलियों, मुकरियों तथा दोहों में खड़ी बोली का स्वच्छ रूप सामने आ जाता है :—

"एक थाल मोती से भरा
सबके सिर पर औंधा धरा
चारों ओर वह थाली फिरे
मोती उससे एक न गिरे।"

इसके अतिरिक्त मध्यकालीन योगियों तथा सूफी सन्तों की रचनाओं में खड़ी बोली का व्यवहार बराबर होता रहा। कबीरदास जी की—

"साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय"

तथा

"मोकों कहाँ ढूँढ़ै बन्दे, मैं तो तेरे पास में"

आदि पंक्तियाँ खड़ी बोली का ही प्रतिनिधित्व करती हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि खड़ी बोली किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा गढ़ी हुई भाषा नहीं थी जैसा कि प्रसिद्ध भाषातत्वज्ञ डा० ग्रियर्सन ने खड़ीबोली के संबंध में अपना मत व्यक्त करते हुए 'लाल चन्द्रिका' की भूमिका में लिखा था।*

---

*" Such a language does not exist in India before...... when therefore Lalluji Lal wrote his Prem Sagar in Hindi. He was inventing an altogether new language.'

विक्रम की १८वीं शताब्दी का प्रारम्भ होते ही खड़ी बोली का नमूना भी हमारे समक्ष स्पष्ट रूप से आ जाता है। इस युग के "योग-वासिष्ठ" के लेखक श्री रामप्रसाद निरंजनी का गद्य वर्तमान काल जैसा ही मालूम देता है।[1]

अंग्रेजी शासन की पूर्ण स्थापना हो जाने पर शासकों की दृष्टि देश की भाषाओं पर गई। मुसलमानों की ओर से भारतवर्ष की मान्य भाषा के रूप में उर्दू का पक्ष बड़ी प्रबलता के साथ रखा गया। शासन की ओर से उसे समर्थन और प्रोत्साहन भी मिला। परन्तु थोड़े ही दिनों में चतुर शासकों से यह बात छिपी न रह गई कि उर्दू इस देश की भाषा नहीं है। नित्यप्रति शासन और नागरिकों के बीच भाषा का यह व्यवधान अत्यन्त कष्टकारी था। अंग्रेजी प्रचार के लिए शासन की ओर से सभी प्रकार के साधन अपनाये गये परन्तु वे चन्द लोगों तक ही सीमित रहे। आम जनता के निकट पहुँचने के लिए उनकी भाषा के साथ तादात्म्य स्थापित करना आवश्यक हो गया। अंग्रेजों ने हिन्दी की ओर ध्यान दिया परन्तु उर्दू के प्रबल हिमायतियों के प्रभाववश तत्कालीन अंग्रेजी शासक हिन्दी को मान्यता न दे सके।

फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना होने पर हिन्दी की शिक्षा देने के लिए पाठ्य-क्रम तैयार कराया गया। निस्सन्देह खड़ी बोली गद्य के विकास में फोर्ट-विलियम कालेज का महत्वपूर्ण स्थान है। ऊपर कहा जा चुका है कि फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के पूर्व ही खड़ी बोली गद्य का जन्म हो चुका था, साथ ही खड़ी बोली नामकरण भी

[1] "केवल कर्म से मोक्ष नहीं होता और न केवल ज्ञान से मोक्ष होता है। मोक्ष दोनों से प्राप्त होता है। कर्म से अन्तःकरण शुद्ध होता है, मोक्ष नहीं होता और अन्तःकरण की शुद्धि बिना केवल ज्ञान से मुक्ति नहीं होती।"

कालेज-प्रयास के पहले ही हो चुका था। पंडित सदल मिश्र ने "नासिकेतोपाख्यान" की अपनी भूमिका में लिखा है :—

"अब संवत् १८६० में नासिकेतोपाख्यान को, कि जिसमें चन्द्रावली की कथा कही है, देववाणी से कोई-कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ीबोली में किया।" सदल मिश्र के अतिरिक्त श्री इंशाअल्लाखाँ तथा श्री लल्लूजीलाल और मुंशी सदासुखलाल इस काल के हिन्दी गद्य के निर्माता हैं। इन चारों ही व्यक्तियों की भाषा में एकरूपता नहीं है। इसका कारण इनके भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की स्थानीय भाषा का प्रभाव है। इसी समय ईसाई धर्म प्रचारकों ने भी हिन्दी गद्य के विकास में अत्यधिक योग दिया है। यह लोग ईसाई धर्म सम्बन्धी पुस्तकें हिन्दी में छपाकर बाँटते थे, और सड़क पर खड़े होकर भाषण भी देते थे। भारतीय समाज को इससे दो लाभ हुए। एक तो यह कि ईसाई धर्म से बचने के लिए अपने धर्म के प्रति लोग आकर्षित हुए, दूसरे अपनी भाषा की ओर उनकी रुचि हुई।

खड़ी बोली का स्वरूप ख्याल—साहित्य में भी परिष्कृत मिलता है। ख्याल साहित्य का जन्म विक्रम की १८वीं शताब्दी में माना जाता है। उस काल की रचनाओं में शुद्ध खड़ी बोली के दर्शन मिलते हैं। ख्याल-साहित्य पर विस्तृत रूप से विवेचन हम अगले अध्याय में करेंगे। यहाँ इसका उल्लेख मात्र इसलिये किया गया है कि खड़ी बोली के प्रचार में उसका बहुत बड़ा हाथ है। लोक-साहित्य के रूप में वह देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में दूर-दूर तक फैला था। इसके प्रचार ने भाषा सम्बन्धी एकता को पुष्ट करने में बड़ी सहायता दी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि खड़ी बोली संस्कृत को अपनाकर सशक्त और महान बनी, और उर्दू से क्लिष्ट और मंथर होने से बच गई।

गद्य का प्रचार—छापेखानों की स्थापना हो जाने पर गद्य साहित्य के प्रचार प्रसार का रास्ता खुल गया। भारत में छापेखानों की स्थापना ईसा की सोलहवीं शताब्दी के लगभग हुई थी। तभी से ईसाई मिशनरियों के द्वारा छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित करके, सर्व साधारण में बाँटी जाने लगीं। भारतीयों का ध्यान इस ओर अठारहवीं सदी के अंत में आकर्षित हुआ। इस समय जो ग्रन्थ मुद्रित हुए उनसे गद्य साहित्य के प्रसार से विशेष संबंध नहीं है, किन्तु इसका एक बड़ा लाभ यह हुआ कि गद्य का विकास-मार्ग स्पष्ट हो गया। ईसा की १९वीं सदी के प्रारम्भ में मुद्रण यन्त्रों का पर्याप्त प्रचार हो जाने पर समाचार पत्र प्रकाशित हुए। स्मरण रहे कि भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों का प्रारम्भ ईसा सन् १८१८ बँगला के पत्र से आरम्भ होता है। इसके दस वर्ष के भीतर गुजराती और हिन्दी के समाचार पत्र छपना शुरू हुए।

ईसा की उनीसवीं सदी के प्रारम्भ में फोर्ट विलियम कालेज के द्वारा भारतीय भाषाओं का अध्ययन कराना प्रारम्भ कर दिया गया। किन्तु कालेज के अधिकारियों से खड़ी बोली तथा नागरी लिपि को इतना लाभ नहीं हुआ, जितना अंग्रेजी फारसी और उर्दू को हुआ। भाषामुन्शी आदि के रूप में कुछ हिन्दी वाले कालेज के अंग्रेज अधिकारियों को सहायता देने के लिए अवश्य रख लिए जाते थे। लल्लूलाल जी पहले व्यक्ति थे जिन्हें कालेज में स्थायी अध्यापक के रूप में रक्खा गया था।

सन् १८१७ में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी और १८३३ ई० में आगरा स्कूल बुक सोसाइटी के द्वारा भी गद्य की पुस्तकें प्रकाशित की गईं। इसी समय देश के विभिन्न हिस्सों में ट्रेनिंग स्कूल, नार्मल स्कूल तथा कालेजों की स्थापना हुई। इन स्कूलों में अंग्रेजी के साथ-साथ भारतीय भाषाएँ भी पढ़ाई जाती थीं। कम्पनी सरकार के सक्रिय होने से सन् १८५० के आस पास विभिन्न विषयों पर हिन्दी की छोटी बड़ी

पुस्तकें तैयार कराई गईं थीं। पुस्तकें तैयार करने वालों में नव स्थापित स्कूल, कालिज तथा बुक सोसाइटी के अधिकारी प्रमुख थे।

सन् १८३५ में लार्ड मैकाले की शिक्षानीति ने देश की भाषाओं पर गहरा आघात किया। मैकाले की शिक्षा नीति थी अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देना। इससे सबसे बड़ा धक्का हिन्दी को यह लगा, कि खड़ी बोली गद्य निरंतर विकसित होकर उच्च शिक्षा के लिए जो निर्मित किया जाना था, नहीं हो सका। हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें प्रारम्भिक दर्जों तक के लिए सीमित हो गईं। इस प्रकार हिन्दी गद्य पुष्ट होकर बढ़ता, वह नहीं हो सका। मैकाले की शिक्षा नीति से भारतीय भाषाओं की उन्नति का द्वार एक प्रकार से बन्द हो गया था। किन्तु राजनैतिक चेतना के विकास ने भाषा की समस्या को सामने बनाए रक्खा। परिणाम यह हुआ कि पाठ्य पुस्तकों के द्वारा मार्ग रुक जाने पर समाचारपत्रों के द्वारा काम चलता गया। इस प्रकार भारतीय भाषाओं को जो भी साधन मिलते गये, लेकर बराबर बढ़ती रहीं। प्रारम्भ से ही हिन्दी का क्षेत्र भारत की सभी भाषाओं से अधिक विस्तृत रहा है। अतः राष्ट्र की प्रत्येक समस्या पर हिन्दी के समाचार पत्रों के द्वारा प्रकाश डाला जाता रहा।

१८२३ के पूर्व प्रेस कानून इतने कड़े थे कि साधारण आदमी उस ओर आकर्षित भी नहीं होता था। भारत में रह कर जिन अंग्रेजों ने समाचारपत्र निकाले, उन्हें भी प्रेस कानून की कड़ाई से जेल यात्रा, जुर्माना के अतिरिक्त देश-निर्वासन का दंड भी भुगतना पड़ा था। लार्ड हेस्टिंग्ज़ के काल में प्रेस कानून ढीला हुआ। तभी राजनीतिक हलचल के केन्द्र कलकत्ते से पहले बँगला और फिर हिन्दी का समाचार पत्र निकला।

कम्पनी सरकार की नीति दिनों दिन भारत का धन लूट कर घर भरने तक ही नहीं, बल्कि एक राज्य सत्ता स्थापित करने के स्वप्नों में

बदलती जा रही थी। धीरे-धीरे बंगाल ,बिहार, अवध, आगरा, पंजाब, राजपूताना, मराठा प्रदेश आदि स्थानों को कम्पनी ने अपने शासन के भीतर समेट लिया।

नीति कुशल अंग्रेजों से भारतीय पराजित तो हुए। किन्तु उनके हृदय में अँग्रेजों की कूट नीति के प्रति घृणा ने घर कर लिया। विदेशी शासन के प्रत्येक कार्य को शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा। ईसाई मिशनरियों के द्वारा ईसाई मत का प्रचार, मैकाले की शिक्षा नीति, तथा अन्य अंग्रेज गवर्नर जनरलों के देश हित विरोधी कार्यों से विरोधी भावनाएँ घर करने लगीं। मुसलमानों को भी इस बात का जबर्दस्त धक्का लगा था कि उनकी सल्तनत चुटकी बजाकर अंग्रेजों ने छीन ली। बादशाह और नवाबी खानदानों की इज्जत धूल में मिला दी गई। मुसलमानों के रोष का कारण तब राजसत्ता तक ही सीमित था, किन्तु हिन्दुओं के सामने राज्य, धर्म, समाज, शिक्षा आदि अनेक समस्याएँ थीं। नवीनता और प्राचीनता का ऐसा द्वन्द हिन्दू समाज को कभी नहीं देखना पड़ा था। यद्यपि मुसलमान भी विदेशी और विधर्मी थे, किन्तु वे हिन्दुस्तान में आकर हिन्दुस्तानी बन कर रहने लगे थे। राज्यसत्ता हड़पी, किन्तु अन्य मामलों में हिन्दुओं को नहीं छुआ। दोनों ही जातियाँ अपनी अपनी विशेषताएँ लेकर साथ-साथ चलती रहीं। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है, कि मुग़ल साम्राज्य ने हिन्दू मुसलमान की सीमाओं को बहुत अंशों में तोड़कर एक साथ चलाने का सफल प्रयास भी किया था। मुसलमानों ने हिन्दुओं को हेय कभी नहीं समझा, जब कि अंग्रेजों ने रंग भेद को प्रधानता देकर, भारतीय जीवन से अपना संबंध बिल्कुल अलग रक्खा। साधारण बोलचाल, खानपान, रहन सहन, विचार व्यवहार, कोई भी चीज़ ऐसी नहीं थी जिसमें अंग्रेजों ने भारतीयों से साथ साम्य स्थापित किया हो। इतना ही नहीं बल्कि क्षुद्रातिक्षुद्र अंग्रेज अपने को भारत का शासक, और उच्च से उच्च भारतीय को गुलाम से

अधिक नहीं समझता था। जिन भारतीयों ने सरकार परस्ती में अपना सर्वस्व अंग्रेज की खुशी के लिए चढ़ाया, उन्हें भी अंग्रेज शासक अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। उच्च शिक्षा प्राप्त अंग्रेज सेवक भी भारतीय होने के कारण, प्रत्येक स्थान पर अपमानित होता था। इस प्रकार शिक्षित और अशिक्षित भारतीयों में समान रूप से अंग्रेजी शासकों के प्रति दुर्भावनाएँ बढ़ने लगीं।

भारत का शिक्षित और अशिक्षित समुदाय की घृणा ने राजनीतिक और सामाजिक संगठनों को जन्म दिया। अशिक्षित वर्ग को धर्म और समाज की शृंखला ढीली पड़ जाने का भय था, और इसी के लिए उसने इस प्रकार के आन्दोलनों में योग दिया। दूसरा वर्ग शिक्षितों का था। इसके सामने शासन सूत्र विदेशी होने के कारण दासता की दुःखद घटनाएँ थीं। इस वर्ग ने राजनीतिक आन्दोलन को अपना माध्यम बनाया। किन्तु पहले आन्दोलन ने ही दूसरे को प्रभावित किया यह स्पष्ट है। राजनीतिक संगठनों के पूर्व बंगाल का ब्रह्म समाज और पंजाब का आर्य समाज इन्हीं भावनाओं के प्रतीक थे। मध्य देश की ओर से सनातन धर्म के रक्षार्थ जी तोड़ प्रयत्न किया गया। इन सबका परिणाम देश की चेतना और हिन्दी भाषा के प्रचार की दृष्टि से अच्छा ही हुआ। भारतीय आन्दोलनकारी नेताओं के लिए जनता का संगठन और उसकी भाषा की आवश्यकता अनिवार्य रूप से पड़ती थी। जनभाषा और जन साहित्य के माध्यम से देश के बुद्धिवादी व्यक्तियों ने संगठन की ओर कदम उठाया। सदियों का पराजित हिन्दू समाज एकबार धर्म और समाज सुधार आन्दोलन से अनुप्राणित हो कर उठ खड़ा हुआ। राजनीतिक जन संगठन होने के पूर्व सामन्तीय संगठन के रूप में सन् ५७ का विद्रोह हुआ था। किन्तु उसकी अव्यवस्था ने उसे सफल नहीं होने दिया। कांग्रेस की स्थापना (सन् १८८५) तक देश में जातीय जागरण हो चुका था और इस अवस्था में

देश की जनता आ गई थी, जिसको संगठित करके कांग्रेस ने देश की आजादी का संग्राम लड़ा।

कम्पनी सरकार ने सन् १८३६ तक सरकारी दफ्तरों की भाषा फारसी बनाये रक्खी। इसके बाद मुसलमानों के प्रयास से उर्दू को तरजीह मिली। सन् १८३६ तक उर्दू का प्रभाव सरकारी दफ्तरों तथा कचहरी आदि में अच्छी तरह जम गया था। इससे जब-जब हिन्दी का पक्ष सरकार के सामने रक्खा जाता, तब तब प्रभावशाली मुसलमानों की ओर से उसका तीव्र विरोध किया जाता। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी भाषा और नागरिलिपि की उन्नति में जबर्दस्त बाधा पड़ गई।

जिस समय राजा शिवप्रसाद शिक्षा विभाग में आये, उस समय हिन्दी भाषा और नागरीलिपि की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। शायद यही कारण है कि राजा शिवप्रसाद जैसे हिन्दी भक्त भी, परिस्थितियों से ऊपर नहीं उठ सके। प्रारम्भ में हिन्दी और नागरी की सेवा उन्होंने की, थोड़े ही दिनों बाद वे हिन्दी को छोड़ कर उर्दू परस्त बन बैठें। हाँ, लिपि के पक्ष को उन्होंने नहीं छोड़ा। वे बराबर नागरी लिपि के लिए जोर देते रहे।

सन् १८५० में लाला दरगाहीलाल ने तारीखे जिला कानपुर में जो चित्र उपस्थित किया है, उससे जान पड़ता है कि संस्कृत, हिन्दी और नागरी लिपि की दशा उन दिनों बड़ी दयनीय थी।

लाला दरगाही लाल लिखते हैं:—"कायस्थ व मुसलमानों के लड़के फार्सी खूब पढ़ते हैं" अंग्रेजी के संबन्ध में लालाजी ने लिखा है "अंग्रेजी पहिले लोग पढ़ना पसन्द नहीं करते थे क्योंकि उनका ख्याल था कि उससे लड़के ईसाई हो जायेंगे। कुछ रोज से अँग्रेजी पढ़ने की ख्वाहिश हुई है और उसकी तरक्की होती जाती है। अब लोगों को यकीन हुआ है कि अँग्रेजी पढ़े हुये को मशाहरा ज्यादा मिलता है। इम्तहान में अँग्रेजी में जवाब देने वाले को नंबर ज्यादा मिलते हैं। बिना अँग्रेजी पढ़े कोई वकील नहीं बनाया जाता।

संस्कृत केवल ब्राह्मणों के लड़के पढ़ते हैं। उसकी प्रतिदिन अवनति होती जा रही है। जिले भर में तीन चार शास्त्री हैं।" सन् १८८६ में 'साहित्य संग्रह' की भूमिका में श्री वीरेश्वर चक्रवर्ती ने लिखा है:-"सिर्फ हिन्दी जानने वाले गँवार कहलाने लगे। उर्दू के जानने के बिना भद्र मंडली में प्रवेश करने का अधिकार भी न रहा।" नागरी अक्षरों का प्रचार बिलकुल समाप्त सा हो चला था। लाला दरगाहीलाल ने लिखा है "नागरी की लिखावट बहुत सही है उसके लिखने का रिवाज मुद्दत से नहीं है। सिर्फ पोथियों में और किसी तरह बुन्देलखंड की हिन्दोस्तानी अमलदारी में जहाँ हिन्दी में दफ्तर रहता है, वह ठीक ठीक लिखी जाती है।" हिन्दी भाषा और नागरी लिपि दो चार देशी रियासतों के अतिरिक्त और कहीं सरकारी कामों में दिखाई नहीं देती थी।

यद्यपि कानपुर में व्यवसाय तथा उद्योग निरन्तर बढ़ रहा था, किंतु इन क्षेत्रों के लोगों में हिन्दी भाषा और नागरीलिपि का मोह प्राय: नहीं था। व्यावसायिक क्षेत्रों में मुड़िया का बोलबाला उत्तर भारत के सभी स्थानों में था। उच्च शिक्षा अंग्रेजी में, सरकारी काम अंग्रेजी और उर्दू में, होते थे। और व्यापारिक क्षेत्रों में हिन्दी के बजाय मुड़िया घुसी बैठी थी। धर्म सम्बन्धी कार्यों में संस्कृत का स्थान जहाँ के तहाँ रहा। इस प्रकार हिन्दी के लिए सिवाय बोलचाल और जहाँ की वह मातृभाषा थी वहाँ की प्रारम्भिक शिक्षा के, और कोई उन्नति का मार्ग नहीं रह गया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उर्दू के इसी बलात् प्रचार से क्षुब्ध होकर लिखा था—

"भाषा भई उर्दू जग की अब तो इन ग्रन्थन नीर डुबाइये।" इस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा लक्ष्मणसिंह, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, स्वामी दयानन्द, के आंदोलन ने सर्वसाधारण में हिन्दी का प्रेम पैदा किया। हिन्दी भाषा और नागरीलिपि के प्रति लोगों में चेतना पैदा की। बाद को महामना मालवीय, बाबू श्यामसुन्दर दास, पं० रामनारायण

मिश्र ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के द्वारा हिन्दी तथा नागरी को सरकारी कार्यों में स्थान दिलाया।

स्वातन्त्र्य आंदोलन से भारतीय भाषाओं, विशेषतः हिन्दी को बहुत बल मिला। व्यापारिक क्षेत्रों में मुड़िया का स्थान अब तक यथावत् चला आ रहा है। आचार्य द्विवेदी जी ने कानपुर में होने वाले तेरहवें साहित्य सम्मेलन के अवसर पर स्वागत भाषण में कहा था—

"आप लोग मुड़िया के इस दुर्भेद्य दुर्ग में पधारे हैं।" यद्यपि व्यवसाय में कानपुर बहुत बढ़ा चढ़ा है, किन्तु मुड़िया का प्रचार जहाँ के तहाँ है। अब इस क्षेत्र में भी कुछ लोगों ने हिन्दी को अपनाया है। वैसे उर्दू और मुड़िया के इस दुर्ग में पं० प्रतापनारायण मिश्र, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी के अथक परिश्रम और साधना ने हिन्दी को विजयी बनाया।

गद्य साहित्य के प्रचार में 'रीडरों' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। रीडरें भारत के अन्यान्य भागों में शिक्षा देने के लिए तैयार कराई गई थीं। सन् १८५४ में लार्ड डलहौज़ी के कार्य काल में वर्नाक्युलर स्कूल खुले और उनमें पाठ्य क्रम के रूप में जो पुस्तकें तैयार कराई गईं उनसे बड़ा लाभ हुआ। इस पहले दौर में राजा शिवप्रसाद, पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र; दूसरे दौर में लाला सीताराम, पं० दीनदयालु तिवारी का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य दिवेदी जी और हरि औध जी ने भी इस ओर काम किया था।

समाचार पत्र, पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त हिन्दी गद्य के प्रचार में उन वक्ताओं का नाम भी भुलाया नहीं जा सकता जिनके प्रभावशाली भाषणों से सर्वसाधारण जाग्रत हुआ। मुख्य रूप से इस क्षेत्र में सनातन धर्म तथा आर्यसमाज के प्रचारकों का नाम लिया जा सकता है। व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयालु शर्मा, पं० नन्दकिशोर वाणीभूषण, कानपुर जिले के स्कूलों में हिन्दी को प्रोत्साहन देने वाले तथा 'ब्राह्मण' और

'सरस्वती' को सर्वसाधारण तक पहुँचाने वाले महानुभावों में पण्डित बद्रीदीनशुक्ल और पं० अंबिकाप्रसाद त्रिपाठी का नाम भुलाया नहीं जा सकता। शुक्ल जी ने 'ब्राह्मण' की मैनेजरी भी कुछ दिन सम्हाली थी। ये स्कूलों के इंस्पेक्टर थे और मास्टरों की नियुक्ति करते वक्त हिन्दी वालों को स्थान देते थे। त्रिपाठी जी अध्यापक, प्रधानाध्यापक और कुछ दिन इंस्पेक्टर भी रहे थे। इन्हीं पदों पर काम करते हुए इन्होंने हिन्दी की सेवा की। पं० अंबिकाप्रसाद त्रिपाठी ने पत्र लिखने की विधि पर एक पुस्तक लिखकर प्रकाशित कराई थी। त्रिपाठी जी ने अन्य कई छोटी छोटी पुस्तकें लिखी थीं।

गद्य का स्वरूप—ऊपर यह कहा जा चुका है कि गद्य की भाषा खड़ीबोली स्वीकृत हुई, जो दिल्ली मेरठ के आसपास बोली जाती थी यद्यपि इसमें कोईसाहित्य की रचना नहीं हुई थी, किन्तु फिर भी उसे यह सम्मान मिला। इसका कारण शासन सूत्र का संचालन केन्द्र, दिल्ली का होना था। राज्य शासन दिल्ली में होने से वहाँ की बोली को, शिष्ट समाज में आदर मिला और प्रचार भी हुआ। इधर उर्दू का उद्गम भी इसी से हुआ। उर्दू का साहित्य सामने आने से यह स्पष्ट हो गया था कि दिल्ली की बोली जाने वाली बोली साहित्य के लिए उपयुक्त है, उसमें साहित्य रचना करके शक्तिशाली बनाया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उर्दू और खड़ी बोली कहलाने वाली हिन्दी दोनों का ही उद्गम क्षेत्र दिल्ली है, किन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि दोनों ही भाषाओं पर संस्कार अलग-अलग पड़े। जिसका परिणाम दो भाषा के रूप में आगे दिखाई पड़ा।

प्रथम युग के हिन्दी गद्य निर्माताओं में जिन व्यक्तियों की गणना की जाती है, भाषा की दृष्टि से एक रूप उनमें नहीं मिलता। यह हो भी नहीं सकता था, क्योंकि खड़ी बोली का कोई निश्चित स्वरूप न होने से इन लेखकों को अपना मार्ग स्वयं निर्मित करना पड़ा था। चारों

ही लेखकों पर स्थानीय बोल चाल का प्रभाव पड़ा। मुंशी सदासुखलाल और इंशा अल्लाखाँ दिल्ली के, श्री लल्लूलाल जी आगरा के और श्री सदल मिश्र विहार के रहने वाले थे। मुंशी सदासुखलाल और इंशा की भाषा खड़ी बोली का उत्कृष्ट नमूना है। लल्लू जी की भाषा में ब्रज का और सदल मिश्र में पूर्वीपन का प्रभाव व्यापक रूप से देखा जा सकता है। इंशा इन चारों में सर्वश्रेष्ठ कहे जाते यदि उनकी भाषा सुगठित तथा उर्दूपन से मुक्त रहती। इंशा पर दरबारी माधव्यता हावी है। उनकी भाषा की चपलता यहाँ तक बढ़ी है, कि उसे खड़ी बोली के विकास क्रम की कड़ी माना जा सकता है, आदर्श शैली नहीं। भाषा सौष्ठव और गठन की दृष्टि से खड़ी बोली के आदर्श शैलीकार मुंशी सदासुख लाल और सदल मिश्र का नाम ही लिया जा सकता है।

विक्रम की १६वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में खड़ी बोली का स्वरूप स्पष्ट हो गया था। यद्यपि इसमें प्रौढ़ता की कमी थी किन्तु जो साहित्य इस समय लिखा गया, विकास के समस्त तत्व उसमें निहित थे। वैसे तो पद्य में खड़ी बोली काफी दिन पूर्व से ही व्यवहृत होने लगी थी, किंतु उसका स्पष्ट स्वरूप तब तक न हो पाया, जब तक कि गद्य का प्रचार न हुआ। गद्य के प्रचार और प्रसार की आवश्यकता ने ही एक ऐसी भाषा को अपनाने के लिए बाध्य किया जिसमें विचारों को स्पष्ट और सशक्त बनाकर रखा जा सके। हिन्दी-गद्य-साहित्य का इतिहास अभी थोड़ी आयु का ही है किन्तु भाषा के जिस स्वरूप को गद्य के लिए अपनाया गया, वह प्राचीन है। हिन्दी में व्रज भाषा, कविता के लिए सर्वमान्य भाषा थी और गद्य भी उसमें थोड़ा बहुत लिखा गया। व्रज-भाषा में माधुर्य तो था किंतु भावाभिव्यंजना की वह तार्किक शक्ति नहीं थी, जो गद्य के लिए अपेक्षित है।

खड़ी बोली गद्य के पूर्व ब्रज-भाषा में जो गद्य लिखा गया वह अविकसित ही रहा। इसका मुख्य कारण यही था कि ब्रज-भाषा के गद्य लेखकों के सामने गद्य लेखन कार्य गौण और कथा कहना मुख्य था। ब्रज-भाषा गद्य का प्रसार सम्भवतः इसलिए भी नहीं हुआ, कि साधनों का अभाव और गद्य के लिए चिंतन शक्ति की वह तीव्रता भी तब उत्पन्न नहीं हुई थी, जिसके लिए व्यक्ति पद्य से गद्य की ओर प्रवृत्त होता है।

हिन्दी गद्य का विकास क्रम ठीक से चला होता यदि ब्रजभाषा गद्य का स्वरूप भी वैसे ही निखरता रहता, जैसा पद्य का। ब्रजभाषा का गद्य न तो कभी क्रमानुसार लिखा ही गया और न उसमें वह शक्ति ही उत्पन्न हो सकी, जो तात्विक दृष्टि से गद्य के लिए अपेक्षित थी। ब्रजभाषा के गद्य में जो कुछ लिखा गया, वह काव्य ग्रन्थों की टीकाएँ या धर्माचार्यों की वार्ता के रूप में। वैसे ब्रजभाषा का गद्य गोरखनाथ के सिद्ध सम्प्रदाय से लेकर खड़ी बोली के प्रादुर्भाव और उसके प्रौढ़ होने के समय तक मिलता है। लेकिन गद्य की ओर ध्यान खींचने वाली रचनाएँ ब्रजभाषा के गद्य में बहुत थोड़ी हैं। इनमें गोकुलनाथ, नन्ददास, विट्ठल नाथ, बनारसी दास, वैकुण्ठमणि और हीरालाल आदि के नाम मुख्य रूप से लिए जा सकते हैं। उपर्युक्त गद्य लेखकों की भाषा में परस्पर साम्य नहीं मिलता। यह दोष ब्रजभाषा काव्य में भी किसी हद तक बराबर रहा। ब्रजभाषा गद्य के विकास में पंडिताऊ शैली और अस्पष्ट लम्बे लम्बे वाक्यों ने भारी बाधा उत्पन्न कर दी। परिणाम यह हुआ कि ब्रजभाषा का स्वर्णकाल १४वीं से १८वीं शताब्दी के अंत तक रहा। (अर्थात् ब्रजभाषा को काम का अवसर मिला साढ़े चार सौ वर्ष के लगभग) फिर भी वह अपने को पद्य के अतिरिक्त अन्य विषयों को व्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न नही कर सकी। जब कि परिस्थिति से खड़ी बोली ने (विकास १६वीं सदी) एक ही सदी में इतनी शक्ति पैदा करली, कि वही स्वरूप गद्य और पद्य दोनों के लिए उपयुक्त और श्रेष्ठ समझा

गया और जिसकी प्राण प्रतिष्ठा भारतेन्दु युग से शुरू होकर-द्विवेदी युग में पूर्ण हो गई।

भारतेन्दु-युग हिन्दी गद्य का द्वितीय उत्थानकाल है। इस समय हिन्दी गद्य को एक निश्चित धारा मिली। साहित्य को नया मोड़ देनेके लिए जितने श्रम और त्याग की आवश्यकता थी, वह इस युग में मिल गया। हिन्दी के लिए सर्वस्व की बाजी लगाने वाले व्यक्ति इस युग में सबसे अधिक हुए। सबसे बड़ी विशेषता इस युग की यह भी है कि साहित्य–सेवी लगन और सेवा की भावना लेकर साहित्य-क्षेत्र में उतरे थे। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त पं० बालकृष्ण भट्ट और पं० प्रतापनरायण मिश्र का नाम इस युग के गद्य-निर्माताओं में सर्वोपरि है।

भारतेन्दु मण्डल को प्रचार के लिए अवसर भी उपयुक्त मिल गया। देश की दशा चारों तरफ से बिगड़ी हुई थी। भीतर ही भीतर लोगों के अन्दर एक ज्वाला धधक रही थी। भाषा, देश, समाज, धर्म के आन्दोलन तीव्र हो चले थे। आर्य समाज और सनातन-धर्म की नोक-झोंक, गदर के पश्चात् होने वाली प्रतिक्रिया, देश भक्ति और विदेशी सत्ता के प्रति विद्रोह की भावना, समाज की रूढ़ियाँ और उनसे छुटकारा पाने की प्रवृत्ति इत्यादि ऐसे अनेक विषय भारतेन्दु–युग के सामने थे कि जिनको अपनाकर हिन्दी का गद्य–साहित्य व्यापक बना और भाषा के प्रचार में सुविधा हुई। साथ ही विषय के अनुरूप गद्य की भाषा प्रभावशाली, ओजपूर्ण और परिष्कृत भी हुई। इस प्रकार हिन्दी गद्य को हास्य, व्यंग्य, करुण, वीर का आश्रय मिला। शृंगार की प्रधानता तो सदियों से चली ही आ रही थी। रूढ़िवादिता हास्य और व्यंग्य का लक्ष्य बनी। देश-भक्ति वीरता को लेकर बढ़ चली। धर्म और समाज की दुरवस्था करुणा का आलम्बन बनी। इस प्रकार हिन्दी–गद्य अनेकोन्मुखी होकर उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। हिन्दी-गद्य का विकास गति शील

होकर प्रौढ़ता प्राप्त करता, कि इसके पूर्व ही हिन्दी उर्दू का झगड़ा उठ खड़ा हुआ। एक ओर हिन्दी के जीवन का प्रश्न था, दूसरी ओर उसे कृत्रिम होने से बचाने की चिन्ता। संस्कृत और फारसी के बीच हिन्दी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कैसे रक्खे, इस युग के लेखकों के सामने यह समस्या आ खड़ी हुई। इस समस्या को सुलझाने में भारतेन्दु मंडल ने बड़े ही धैर्य और कुशलता से काम लिया। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने का सबसे अधिक श्रेय भारतेन्दु के अतिरिक्त पं० प्रतापनारायण मिश्र तथा पं० बाल-कृष्ण भट्ट को है। भारतेन्दु, पं० प्रतापनारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट की तपस्या ही हिन्दी गद्य की भावी उन्नति बनकर चमक उठी। हिन्दी गद्य को जन साधारण के लायक सरल किन्तु शुद्ध और शक्तिशाली बनाने में पं० प्रतापनारायण मिश्र का नाम इन सब से आगे है। पं० प्रतापनारायण मिश्र के गद्य पर विचार करते हुए कुछ लोगों ने उन्हें इंशा अल्ला खाँ तथा राजा शिव प्रसाद के निकट रक्खा है।

यह कहना नितान्त अनुचित होगा कि राजा शिव प्रसाद ने जिस शैली को अपनाया था, उसी को पं० प्रतापनारायण मिश्र ने कुछ संशोधन के साथ स्वीकार किया। इंशाअल्लाखाँ के गद्य से मिश्र जी का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इंशा की शैली केप्रति (लखनऊ के भाँड़ घोड़ा कुदाते महफिल में आते हैं। वाली उक्ति को आरोपित करके) आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उनके गद्य के हल्केपन का जो उपहास किया है, वह मिश्र जी में नहीं है। मिश्र जी का गद्य इस कोटि में नहीं रखा जा सकता। रही राजा शिवप्रसाद की बात सो उनकी "आम-फहम" भाषा के न तो प्रतापनारायण मिश्र पोषक थे और न समर्थक। इंशा की मौज उनमें अवश्य थी परन्तु दरबारी भाँडत्व नहीं।

राजा शिवप्रसाद जिस सरल हिन्दी की बात को लेकर चले थे, थोड़े ही दिनों के बाद वे अपने सिद्धान्त से बहुत पीछे हट गये। सच तो यह है कि राजा साहब नागरी लिपि में उर्दू भाषा का प्रचार कर रहे

थे। जब उनकी इस हिन्दी घाती नीति का खुलकर प्रभावशाली और व्यापक विरोध होने लगा, तो प्रतिक्रिया स्वरूप राजा साहब की भाषा में उर्दूपन और भी बढ़ गया। कुछ अंशों में यह माना जा सकता है कि परिस्थिति की प्रतिकूलता ने राजा साहब को ऐसा करने के लिए विवश किया। लेकिन परिस्थिति के मत्थे ही सारा दोष मढ़कर उनकी रक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि परिस्थितियाँ इन्शा से अधिक बुरी राजा साहब की नहीं थीं। काल की दृष्टि से इन्शा और राजा साहब में लगभग एक शताब्दी का अंतर है, किन्तु राजा साहब के गद्य में इन्शा जैसी खूबी भी नहीं मिलती। राजा साहब ने अपनी गढ़ी हुई भाषा के प्रचारार्थ 'बनारस अखबार' सन् १८४५ में निकाला था। इस अखबार की भाषा में क्रमशः वही अन्तर पड़ता गया, जो राजा साहब में। लगभग सात वर्ष चलते रहने के बाद भी हिन्दी के नाम पर जिस भाषा का 'बनारस अखबार' प्रचारक था, उसकी एक झलक यहाँ दी जा रही है:-

"जो खबर साबिक में क़ाबिल ऐतबार न थी, हरकारा अब इसको मज़बूती से बयान करता है और बेशक आजतक ऐसी खबर अजीज और वारदात ग़रीब न किसी ने सुनी होगी और न देखी कि दो साहेबान अहल विलायत फिरंग ने अपना काम तर्क करके डाकाज़नी का तरीका इख्तियार किया है। एक उनमें से कलकत्ते में साबिक में काम बग्गी और घोड़े साजी का किया करता था। कुदरत इलाही से इसने सब कारबार छोड़कर यह पेशा इख्तियार किया।" उपर्युक्त उद्धरण में शब्दों की ठूँस ठाँस ही नहीं, बल्कि उसे शुद्ध रूप से उर्दू का गद्य कहा जा सकता है।

राजा साहब अपनी आमफहम नीति के चक्कर में पड़कर कहाँ तक जा चुके थे, यह लिखने की आवश्यकता नहीं। उपर्युक्त उद्धरण से इस सम्बन्ध में काफी जाना जा सकता है। राजा साहब ने भाषा सम्बन्धी खाई को पाटने का प्रयास किया, यह बात बहुत हद तक ठीक है।

परन्तु इस श्रेय के अधिकारी वे तभी तक रहे जब तक कि उनकी भाषा का स्वरूप निम्नलिखित रहा:—

"अहमदशाह दुर्रानी पुरानी अनूपशहर में छावनी डाले हुए था। दिल्ली में कुछ थोड़े से सिपाही छोड़ रखे थे। उनसे मरहठों का मुकाबला न हो सका। भाऊ ने वहाँ बहुत जियादती की। दीवान खास में जो चाँदी की छत लगी थी, बिल्कुल उखाड़ ली।"

उपर्युक्त उद्धृत दोनों उदाहरणों को देखने से राजा साहब की भाषा सम्बन्धी नीति और उनकी असफलता के कारण, स्पष्ट सामने आ जाते हैं। राजा साहब, हिन्दी में संस्कृत शब्दों की बहुलता और उर्दू में अरबी फारसी का अत्यधिक प्रभाव बढ़ता देखकर, दोनों के मध्य समानता स्थापित करने के लिए आगे बढ़े थे, किन्तु वे ऐसा करने में सफल न हो सके। नागरी अक्षरों के प्रचार में उनका स्थान निश्चय ही बहुत ऊँचा है, किन्तु हिन्दी भाषा के लिये जो मार्ग उन्होंने चुना, वह हितकर नहीं था। यह ठीक है कि उस समय एक दूसरा पक्ष हिन्दी भाषा को संस्कृत के तत्सम शब्दों से लादे दे रहा था और निश्चय ही यह स्थिति भी ठीक नहीं थी। क्योंकि इससे हिन्दी के स्वतन्त्र विकास में आगे चलकर एक बाधा खड़ी हो जाती। इस स्थिति को बचाने के लिए भारतेन्दु तथा उनके मंडल के कुछ प्रभावशाली नक्षत्र आगे बढ़े और उनमें पं० बालकृष्ण भट्ट तथा पं० प्रतापनारायण मिश्र का नाम मुख्य है। यद्यपि भट्ट जी ने हिन्दी खड़ी बोली के गद्य को परिष्कृत करने में बहुत बड़ा भाग लिया है, किन्तु उनके गद्य पर संस्कृत का प्रभाव कम नहीं। उनका पांडित्य गद्य को कहीं कहीं भारी अवश्य बना देता है। हिन्दी गद्य का स्वतन्त्र और स्वाभाविक विकास शुद्ध रूप से पं० प्रताप नारायण मिश्र में ही देखने को मिलता है। भारतेन्दु मण्डल के द्वारा हिन्दी-गद्य अनेकोन्मुखी होकर बढ़ा। इस मण्डल के संबंध में एक

विशेषता यह भी मिलती है कि इसमें विचारों की श्रृंखला है, भाषा की नहीं। व्याकरण के प्रति एक दो लेखकों को छोड़कर अन्य लोगों का ध्यान कम ही गया। व्याकरण की इस बन्धन हीनता ने भी इस समय हानि कम, लाभ अधिक पहुँचाया। सबसे बड़ा लाभ जो इससे हुआ वह यह कि, हिन्दी गद्य का विकास बन्धनों से सर्वथा मुक्त होकर स्वाभाविक ढंग से हो सका और जब इस अव्यवस्था की रोक-थाम आचार्य पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने की, तब तक हिन्दी भाषा व्यापक होकर भिन्न-भिन्न शैलियों के रूप में फूल-फल चुकी थी। जहाँ तक निबन्ध सृजन के द्वारा गद्य का पक्ष पुष्ट करने की बात है मिश्र जी का स्थान ही प्रमुख है। हिन्दी के प्रथम निबन्धकार होने का गौरव मिश्र जी को ही प्राप्त है।

प्रारम्भिक युग के गद्य लेखकों में पं० प्रतापनारायण मिश्र ही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी भाषा में संस्कृत की क्लिष्टता कहीं भी नहीं आई और न अरबी फारसी का ही प्रभाव पड़ सका। मिश्रजी ने हिन्दी को इन दोनों के अनुचित प्रभाव से मुक्त रख कर इसकी स्वतन्त्र धारा का नेतृत्व किया, और इस प्रयोग में वे पूर्ण सफल हुए। उर्दू की जिस लोच पर मुग्ध होकर लोग झूम उठते हैं, वह लोच तथा रोचकता मिश्र जी ने ग्रामीण शब्दों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग करके हिन्दी में पैदा की।

मिश्र जी के गद्य में स्थानीय प्रभाव को देखकर किसी किसी विद्वान ने इन्हें असावधान लेखक कहा है। वस्तुतः ऐसी धारणा भ्रमपूर्ण है। मिश्र जी असावधान लेखक नहीं थे। उस युग के हिन्दी लेखक असावधानी कर ही नहीं सकते थे क्योंकि वह युग राजकीय समर्थन की दृष्टि से उर्दू का था। हिन्दी उर्दू की खाई दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। परिणाम यह हुआ कि उर्दू का सहारा लेकर हिन्दी को सरल बनाने का प्रयास उस समय के हिन्दी भक्तों के लिये कठिन ही था। उर्दू से

सम्बन्ध स्थापित करने का दुष्परिणाम राजा शिवप्रसाद के रूप में सब देख ही चुके थे। इसी धारा के विरोध में भारतेन्दु-मंडल सामने आया था। अतः भारतेन्दु मंडल के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यही था; कि संस्कृत की जटिलता से मुक्त रखकर तथा फारसी का सहारा लिए बिना हिन्दी को सरल, सुबोध, सशक्त तथा रंजक बनाया जाय; ताकि वह साहित्य का गुरुभार उठाने में समर्थ हो सके।

हिन्दी-गद्य में उपर्युक्त गुण पैदा करने के लिए मिश्र जी ने स्वभावतः वे सारी चीजें आने दीं; जो अपनी कहीं जाने वाली थीं। फिर चाहे उनका दायरा सीमित ही हो। भाषा को सरलता जिस प्रकार देशज शब्दों का प्रयोग करके वे लाना चाहते थे; उसी प्रकार यदि वे चाहते तो उर्दू फारसी के शब्दों का प्रयोग करके भी हिन्दी को सरल बना सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। राजा साहब उर्दू को साथ लेकर चलना चाहते थे और प्रतापनारायण उसको छोड़कर चलते थे। एक विदेशी रूप को अपना रहा था और दूसरा स्थानीय। एक की प्रतिक्रया हिन्दी की मृत्यु थी तो दूसरे का प्रभाव सीमित था। मिश्रजी के स्थानीय प्रयोग भले ही देश के अन्य भागों में प्रचार न पा सकें, किन्तु उनके प्रयोगों से जो व्यंजक शक्ति का हिन्दी में प्रादुर्भाव हुआ. वह उपेक्षा की वस्तु नहीं है।

उर्दू से हिन्दी में आनेवालों के सामने हिन्दी की क्लिष्टता बाधक होती, किन्तु इस समस्या को मिश्र जी ने हल कर दिया। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी गद्य को प्रभावशाली बनाया और उसमें एक विशिष्ट शैली को जन्म दिया।

पं० बालकृष्ण भट्ट को भी हिन्दी पर उर्दू का मुलम्मा चढ़ाना खटकता था। वे शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है;—

"प्रोज़ (गद्य) हिन्दी का बहुत ही कम और पोच है! सिवाय इसके एक प्रेमसागर सी दरिद्र रचना के इसमें और कुछ है ही नहीं जिसे हम इसके

साहित्य के भंडार में शामिल करते। दूसरे उर्दू इसकी ऐसी रेढ़ मारे हुए है कि शुद्ध हिन्दी तुलसी, सूर इत्यादि कवियों की पद्य रचना के अतिरिक्त और कहीं मिलती ही नहीं।"

भट्ट जी के उपर्युक्त शब्दों से हिन्दी की तात्कालिक परिस्थिति का बोध हो जाता है।

वस्तुतः भारतेन्दु मंडल के सभी लेखकों में उर्दू के विरुद्ध एक भावना और हिन्दी को स्वाभाविक ढंग से चलाने की इच्छा मिलती है। इस सम्बन्ध में किये गये मिश्र जी के प्रयास को ऊपर बताया जा चुका है। भट्ट जी ने गद्य को शक्तिशाली बनाने के लिये संस्कृत और अंग्रेज़ी के शब्दों का व्यवहार किया ही है; साथ ही मुहावरे और क्षेत्र विशेष के शब्दों का प्रयोग करने में भी वे नहीं हिचके। प्रोज़, रेढ़, कलेवा इत्यादि शब्द इसके उदाहरण हैं। परन्तु भारतेन्दु मंडल में प्रवाहपूर्ण और फड़कती हुई हिन्दी लिखने वालों में प्रथम नाम पं० प्रताप नारायण मिश्र का ही लिया जा सकता है। मिश्र जी के लेखों में संस्कृत, अँगरेज़ी, फारसी शब्दों का प्रयोग कम से कम, और जहाँ हुआ भी है वहाँ वे हिन्दी में रुचे पचे से लगते हैं, खटकते नहीं। ये विशेषता इस युग के अन्य लेखकों में नहीं मिलतीं।

पत्र और पत्रकार

पत्रकारिता; जन्म और विकास

आज के युग में समाचार पत्र बौद्धिक नेता कहे जा सकते हैं। भारतीय जागरण में समाचार पत्रों का स्थान महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता, समानता, धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला और विज्ञान आदि सभी विषयों का सामान्य परिचय सर्व साधारण को कराने के लिये, आज के युग में समाचार पत्रों से बढ़ कर, सहज सुलभ साधन अन्य नहीं है। विज्ञान की उन्नति होने से अन्य साधन भी बढ़ते जा रहे हैं। फिर भी समाचार पत्रों का स्थान उन्हें प्राप्त नहीं। व्यक्ति-स्वातंत्र्य से लेकर विश्वात्मा की पुकार तक और नगण्य से लेकर अग्रगण्य तक आज पत्रकारिता के अन्दर रखे जाते हैं। राष्ट्रीय जागरण में यद्यपि अंग्रेज़ी के गिने चुने समाचार पत्रों ने भी भाग लिया है, किन्तु उनका सम्बन्ध जनसाधारण से न होकर बुद्धिवादी बड़े आदमियों तक सीमित रहा। सर्व साधारण में जागरण की लहर तो भारतीय भाषाओं के पत्रों ने पैदा की। देश की प्रत्येक समस्या से भारतीय पत्र प्रभावित हुए और समाज को प्रभावित किया।

वैसे तो भारत की प्रत्येक भाषा के समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय जागरण में भरपूर योग दिया है किन्तु हिन्दी, बँगला, गुजराती और मराठी समाचार पत्रों के नाम इस दिशा में मुख्य रूप से लिये जा सकते हैं। हिन्दी को छोड़ कर प्रादेशिक भाषाओं की अपनी सीमा थी। सीमाओं के रहते हुए जो कार्य उनके द्वारा सम्पन्न हुआ, उस पर गर्व किया जा सकता है। हिन्दी देश भर की भाषा थी; अतः देश भर की सम्पूर्ण समस्याओं से वह प्रभावित हुई और देश की प्रत्येक समस्या को उसने प्रभावित किया। देश की अशिक्षा और ग़रीबी से उत्पन्न कठिनाइयों का सामना उसे करना पड़ा किन्तु इस सब के होते अपने कर्तव्य से वह पीछे नहीं हटी। अशिक्षा, दारिद्र्य और श्रम की अधिकता ने हिन्दी पत्रकारिता

को तपस्या की वस्तु बना दिया। आज भी स्वर्ण और सुख के सपने देखनेवालों के लिए हिन्दी पत्रकारिता घाटे का सौदा है। स्थिति दिनो-दिन बदल रही है; निश्चय ही अब वह दिन बहुत दूर नहीं जब हिन्दी की पत्रकारिता लाभ और यश दोनों ही दे सकेगी।

हिन्दी के क्षेत्र में पत्रकारिता को व्यवसाय समझ कर काम करना प्रारम्भ हो चुका है। बड़े-बड़े व्यापारी भी इस ओर बढ़कर काम करने लगे हैं। त्याग और भोग का प्रत्यक्ष संघर्ष आज हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में देखने को मिल सकता है। यद्यपि 'साधना या व्यवसाय' प्रश्न को लेकर इस क्षेत्र मे काफी विवाद चल रहा है। इसका परिणाम जो भी हो, इतना निश्चित है कि हिन्दी पत्रकारिता का भविष्य उज्वल है और समाज का नेतृत्व प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ नहीं कर सकेंगी। हिन्दी पत्रकारिता की नींव त्याग, तपस्या और बलिदान की ईंटों से भरी गई है। नींव को जिन ईंटों से भरा गया है, उनमें अनेक कानपुर की देन हैं। कानपुर ने हिन्दी पत्रकारिता का नेतृत्व भी किया और कष्ट भी उठाये हैं। आज जब श्रम पर पैसा हावी है तब भी जनघोष करने वाले पत्र और पत्रकारों से कानपुर की भूमि सूनी नहीं। पं० प्रतापनारायण मिश्र, बाबू सीताराम, आचार्य द्विवेदी जी, गणेशशंकर विद्यार्थी, लक्ष्मीधर वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, उदयनारायण वाजपेयी माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, रमाशंकर अवस्थी, द्वारकाप्रसाद मिश्र, विष्णुदत्त शुक्ल, किशोरीदास बाजपेयी देवव्रत शास्त्री, युगलकिशोरसिंह शास्त्री, बालकृष्ण शर्मा, सत्यदेव शर्मा, बलभद्रप्रसाद मिश्र, दशरथप्रसाद द्विवेदी, मदनलाल चतुर्वेदी, कालिकाप्रसाद दीक्षित कुसुमाकर, रामदयाल पाण्डेय, जयदेवगुप्त तथा रामनाथ गुप्त,प्रभृति कानपुर की ही देन हैं।

भारत में पत्रकारिता का प्रारम्भ ईसा की अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। सन् १७८० में कलकत्ते से सर्वप्रथम श्री जान आगस्ट हिकी ने 'बंगाल गजट' नामक पत्र अंग्रेज़ी में निकाला था।

हिकी ने पत्रकारिता की जो परम्परा डाली उसका महत्व है। निर्भयता और खरी आलोचना करने के कारण हिकी को अर्थदण्ड तो मिला ही जेल यात्रा भी करनी पड़ी थी। भारतीय भाषाओं में निकलने वाला पहला पत्र बंगला का 'दिग्दर्शन' सन् १८१८ ई० में निकला इसी वर्ष 'समाचार दर्पण' भी प्रकाशित हुआ।

हिन्दी का प्रथम पत्र

हिन्दी का सबसे पहला पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' ३० मई सन् १८२६ ई० को पं० जुगल किशोर शुक्ल ने कलकत्ते से निकाला था। इसके प्रकाशन की आज्ञा, तत्कालीन गवर्नर जनरल से पं० जुगलकिशोर शुक्ल ने १६ फरवरी सन् १८२६ ई० को प्राप्त की थी। शुक्ल जी कानपुर के निवासी तथा कलकत्ते में दीवानी अदालत के प्रसीडिंग रीडर थे। बाद को ये वकील हो गये थे। हिन्दी पत्रकारिता के जनक ये शुक्ल जी ही हैं। 'उदन्त मार्तण्ड' के प्रथम अंक में प्रकाशित—शुक्ल जी के शब्दों से पता चलता है कि उन्होंने 'उदंत मार्तण्ड' का प्रकाशन हिन्दीजनों के हित रक्षार्थ और हिन्दीभाषा के प्रचार प्रसार का उद्देश्य लेकर किया था। अंग्रेज़ों की कूटनीति और अंग्रेज़ी भाषा का प्रचार बढ़ते देख उनके मन में भावी आशंका ने घर कर लिया। और इसी आशंका से आने वाले कल की कल्पना करके वे सहम गये। अतः सरकारी कर्मचारी होते हुए भी उन्होंने इस साहसपूर्ण कदम को उठाया। मातृ-भूमि और मातृभाषा उनके लिए अंग्रेज़ों की नौकरी से कहीं ऊँची चीज़ थी। प्रथम अंक में उन्होंने लिखा है—

"यह 'उदंत मार्त्तण्ड' अब पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी औ पारसी औ बँगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जान्ने औ पढ़ने वालों को ही होता है। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देख कर आप पढ़ औ समझ लेयँ औ पराई अपेक्षा न करें जो अपने

भाषे की उपज न छोड़े। इसलिए श्रीमान गवर्नरजनरल बहादुर की आयस से ऐसे साहस में चित्त लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाठ ठाटा।...जो कोई प्रशस्त लोग इस खबर के कागज के लेने की इच्छा करें तो अमड़ा तला की गली ३७ अंक मार्त्तण्ड छापाघर में अपना नाम औ ठिकाना भेजने से ही सतवारे के सतवारे यहाँ के रहने वाले घर बैठे और बाहिर के रहने वाले डाक पर कागज पाया करेंगे।"

उपर्युक्त शब्दों से शुक्ल जी का हिन्दी प्रेम तथा देश वासियों के प्रति कर्त्तव्य की भावना स्पष्ट दिखाई पड़ती है। यह पत्र साप्ताहिक था और इसका वार्षिक शुल्क दो रुपया था। इसमें प्रकाशित खबरों तथा विभिन्न विवरणों को देखने से पता चलता है कि हिन्दी-पत्रकारिता की नींव ही संघर्ष, त्याग, बलिदान और निर्भीकता पर रखी गई थी। बिना किसी लागलपेट के इस पत्र में सूचनाएँ छपा करतीं थीं। तत्कालीन लार्ड एमहर्स्ट उत्तर भारत की यात्रा करते हुए कानपुर आये थे। लखनऊ के बादशाह ने उनका स्वागत कानपुर आकर किया था। और अंग्रेज़ लार्ड ने बादशाह का सम्मान किया था। इसका रोचक वर्णन इसमें छपा है :—

"अवध बिहारी बादशाह के जाने के लिए कानपुर के तले गंगा में नावों की पुल बन्दी हुई और बादशाह बड़े ठाट से गंगापार हो गवरनर जनरेल बहादुर के सान्निध गये। लार्ड आमहर्स्ट जब कानपुर पहुँचे थे उस समय जैसे सिपाहों का दोहरा परा बँधा था वैसे ही बादशाह के कानपुर जाने में भी परा बँधा था। बादशाह जब कानपुर में बैठे तब लार्ड अमहर्स्ट अपने आमात्यों को लेकर के हाथी की सवारी पर प्राष्ट साहब की कोठी से थोड़ी दूर आगे बढ़ रहे थे औ साथ के तुर्क सवार चारों ओर से परा बाँधे हुए खड़े थे। इस उपरान्त बादशाह एक तख्त खाली सवारी पर उतरे ऊपर ही ऊपर बड़े साहिब के हाथी पर हो बैठे औ बड़े साहिब से मिला भेंटी हुई। फिर वार्तालाप होते प्राष्ट साहब की कोठी को गए। लखनौ बादशाह के साथ नवाब मोहसनद्दौला और उनके

सोलह आदमी मुसाहिब साथ थे। लार्डसाहिबों ने उस दिन वहाँ के सब काम श्रो पलटिनिये साहिबों की हाजरी का नेवता दिया था और ८१ आदमियों ने एक मेज में बैठ के भोजन किया। भोजन हुए उपरान्त बादशाह को बढ़िया कपड़े श्रो दुशाले श्रो भाँति भाँति के आभरण श्रो रत्न करके खचित श्रो जटित एक्यावन थार आगे धरा श्रो उनके पोते को बीस थार श्रो सब भाइयों को बीस-बीस थार के लेखे दिया गया। फिर लार्ड साहिब उठ के बादशाह की उँगली में बड़े मोल की एक अँगूठी पहिना दी और सब मुसाहिबों को भी यथायोग पारितोषिक दिया। फिर अतर श्रो पान के सम्मान हुए पर बादशाह अपनी छावनी को लौट आए।" (१२ दिसम्बर १८२६ ई०)

इस पत्र में सिर्फ विवरणात्मक कथाएँ ही नहीं, देश के नागरिकों की आँखें खोलने वाले समाचार भी छपते थे। विदेशी कपड़ा का आयात कम्पनी सरकार बराबर बढ़ाती जा रही थी और सूत आयात करने की छूट भी उसने दे दी। इस पर 'उदन्त मार्तण्ड' ने कई वर्ष के आँकड़े रख कर देश की होने वाली हानि की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया—

"सन् १८१५ में एक लाख उनचास हजार अरसठ रुपए का श्रो १८१६ में एक लाख तिरसठ हजार छः सौ पन्द्रह रुपये का श्रो सन १८१७ में चार लाख एक हजार पाँच सौ बिरानबे रुपये का श्रो सन १८१६ में चार लाख छेआसठ हजार सोलह रुपये श्रो सन १८२० में आठ लाख तिरसठ हजार छे सौ इकतिस रुपये का श्रो सन १८२१ में ग्यारह लाख छत्तीस हजार चौहत्तर रुपये का श्रौ सन १८२२ में ग्यारह लाख सरसठ हजार दो सौ छियालिस रुपये का औसन १८२३ में ग्यारह लाख इक्यासी हजार छः सौ एकहत्तर रुपये का श्रो सन १८२४ में ग्यारह लाख अड़तीस हजार एकसौ छेयासठ रुपये का माल आया और सब सूते की आमदनी इससे बढ़कर होगी। (५ सितम्बर १८२६ ई०)

इसके अतिरिक्त अनेक चुभते हुए शीर्षक देकर शुक्ल जी ने कम्पनी शासन की पोल खोली तथा आलोचनाएँ कीं। 'दालचिनी के पौधे'

'लूट की छूट' आदि शीर्षक खबरें इसकी उदाहरण हैं। इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता का जन्मदाता एक ऐसा साधारण सरकारी कर्मचारी था, जिसने अपनी निर्भयता और देश के प्रति ईमानदारी को सर्वोपरि मान कर, हिन्दी पत्रकरिता की नींव, त्याग और तप की ईंटों से भरी। शुक्ल जी ने अपने सीमित साधनों को लेकर डेढ़ वर्ष तक पत्र चलाया। अन्त में आर्थिक कठिनाई तथा सरकारी पिट्ठू न होने के कारण विवश होकर ४ दिसम्बर १८२७ ई० को पत्र बन्द करने की घोषणा कर दी। अहिन्दी प्रदेश में भला उसकी सहायता भी कौन करता? सरकार से एक पैसे की उम्मीद थी ही नहीं। अतः एक मात्र विश्वास और साहस के बलपर शुक्ल जी खड़े कैसे रह सकते थे? बन्द करने की सूचना देते हुए उन्होंने पद्य की दो पंक्तियाँ लिखीं जिनमें शुक्ल जी की अन्तर्पीड़ा अत्यन्त सूक्ष्म रूप से प्रगट हुई है:—

आज तलक लौं उगि चुक्यो मार्त्तण्ड उद्दंत।
अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अंत।

इस प्रकार हिन्दीभाषा भाषियों की उपेक्षा का शिकार होकर अपने युग का एकमात्र तथा हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र 'उद्दन्त मार्तण्ड' बन्द हो गया। शुक्ल जी ने जब पुनः कुछ पैसा इकट्ठा कर लिया तब उन्होंने सन् १८५० में 'साम्यदन्त मार्तण्ड' नामक पत्र निकाला। यह पत्र भी शुक्ल जी की पूँजी दो वर्ष में समाप्त करके सन् १८५२ में बन्द हो गया।

अन्य-पत्र

उत्तरप्रदेश से हिन्दी का पत्र राजा शिवप्रसाद की संरक्षता में 'बनारस अखबार' सन् १८४५ में निकला। इस पत्र की भाषा का स्वरूप निरंतर विकृत होता गया। इस का महत्व लिपि प्रचार के अतिरिक्त भाषा प्रचार के दृष्टि से नगण्य है। इस पत्र की भाषा-नीति के विरुद्ध श्री तारामोहन मैत्र द्वारा 'सुधाकर' का प्रकाशन सन् १८५० में प्रारम्भ हुआ था।

यह समय, देश की विचार धारा में उथल पुथल का युग था। ग़दर के पश्चात् राजनीतिक चेतना में और निखार आया। राजनीतिक ही नहीं; धर्म समाज तथा जातीय उन्नति की ओर भी लोगों का ध्यान गया, उन्नति के लिए प्रचार का साधन समाचार पत्रही समझे गये। ईसा की उन्नीसवीं सदी के अंत तक अनेक जातीय पत्र निकल चुके तथा निकल रहे थे। जातीय पत्रों का भी भाषा के प्रसार में बड़ा योग है। कायस्थों में उर्दू फारसी का बोल बाला था। उस समय कानपुर से निकलने वाले 'कायस्थ कान्फ्रेंस,' 'कायस्थ कान्फ्रेंस गज़ट' आदि समाचार पत्रों के द्वारा कायस्थ समाज में हिन्दीने घर किया। इसी प्रकार 'कान्यकुब्ज हितकारी' 'भट्ट भास्कर' आदि जातीय पत्रों ने सीमित क्षेत्र में उल्लेखनीय काम किया।

कानपुर में पत्रकारिता को स्थायी रूप देने वाले पंडित प्रताप नारायण मिश्र हैं। मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' के द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य की जो अन्यतम सेवा की है, उसे कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। 'ब्राह्मण' के पूर्व भी कई पत्र यहाँ से प्रकाशित हो चुके थे; किन्तु वे ज्यादा नहीं चल सके। इनमें 'हिन्दू प्रकाश' (१८७१ ई०) 'शुभ चिन्तक' (१८ अप्रैल १८७६ई०) का नाम प्रमुख है। 'ब्राह्मण'के पूर्व देश के अन्य प्रमुख नगरों से कई प्रभावशाली समाचार पत्र निकलने लगे थे, जिनके द्वारा हिन्दी का कल्याण हुआ। ऐसे पत्रों में 'भारत मित्र' (कलकत्ता १८७७) पं० बालकृष्ण भट्ट का 'हिन्दी प्रदीप' (प्रयाग १८७७ ई०) उचित वक्ता (कलकत्ता १८७८ई०) सार सुधानिधि (कलकत्ता १८७८ ई०) 'सज्जन कीर्ति सुधाकर (उदयपुर १८८०ई०) आनन्द कादम्बिनी (मिर्ज़ापुर १८८१ ई०) प्रयाग समाचार (प्रयाग १८८२ ई०)भारतेन्दु: (वृन्दावन १८८३ई०)का नाम प्रमुख है।

भारतेन्दु ने हिन्दी पत्रकारिता को भी सम्हाला और भाषा को भी, 'कवि वचन सुधा' और मख्यतः 'हरिश्चन्द्र' 'मैगजीन' और फिर "चन्द्रिका' ने हिन्दी के स्वरूप को व्यवस्थित करने में अद्भुत योग

दिया। किन्तु इतना स्पष्ट है कि हिन्दी का प्रवाहमय स्वरूप मिश्रजी के 'ब्राह्मण' से पूर्व नहीं आया था।

ब्राह्मण:—पं० प्रतापनारायण मिश्र ने १५ मार्च सन् १८८३ ई० को कानपुर से प्रकाशित किया। सन् १८९४ तक यह चलता रहा। बीच में जब मिश्र जी कालाकाँकर से प्रकाशित होने वाले पत्र हिन्दुस्तान में चले गये तब कुछ दिन यह वहाँ से निकला। फिर कानपुर से और अपने अन्तिम कई वर्ष तक बाबू रामदीन सिंह के खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर से निकलता रहा। ब्राह्मण ने हिन्दी भाषा के प्रचार प्रसार में तो योग दिया है अपितु हिन्दी गद्य साहित्य को पुष्ट बनाने में उसका बहुत बड़ा हाथ है। निबन्ध साहित्य यद्यपि बहुत दिनों से सामने आ रहा था। किन्तु निबन्ध का नाम जिन्हें दिया जा सके ऐसे अधिकांश लेखों का प्रकाशन ब्राह्मण में हुआ और लेखन मिश्र जी के द्वारा।

हिन्दीसेवा के अतिरिक्त देशभक्ति, समाजसुधार, धर्म की पाखन्डी भावनाओं से विद्रोह, विषयक समस्याएँ थीं। देश की जनता की हीन दशा पर ब्राहृण के पृष्ठ भरे रहते थे। मिश्र जी के मस्ती भरे लेखों में भी देश की दशा से द्रवीभूत उनकी अन्तर्पीड़ा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। निर्भय और निष्पक्ष भावनाओं को उन्होंने कभी नहीं भुलाया। रूढ़िगत दृष्टिकोण उनके पास कभी ठहरा नहीं। अलमस्त साधक की भाँति उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन हिन्दी भाषा और हिन्दी जन के लिये दे रखा था। इसके लिए उन्होंने प्रत्येक मुसीबत का सामना किया और परिस्थितियों से हार कर कभी पीछे नहीं हटे। छोटी सी आयु में ही मिश्र जी ने जितना काम किया, उसका मूल्यांकन हिन्दी संसार ने अभी तक नहीं किया। ब्राह्मण के प्रथम अंक में ही उन्होंने लिखा "हम क्यों आये हैं? यह न पूछिये। कानपुर इतना बड़ा नगर, सहस्त्राविधि मनुष्यों की बस्ती, पर नागरी पत्र एक भी नहीं, भला हमसे कब देखी जाती है। कभी राज्य सम्बन्धी, कभी व्यापार सम्बन्धी विषय भी सुनायेंगे, कभी-कभी गद्य पद्य मय नाटक से भी रिझायेंगे"।

हिन्दी पत्रकारिता को बहुमुखी बनाने में ब्राह्मण का प्रमुख स्थान है। ब्राह्मण के १२ पृष्ठों में ही अन्यान्य सामग्री देखने को मिलती है। सचाई, ईमानदारी, स्पष्टता तथा निर्भीकता तो 'ब्राह्मण' की प्रत्येक पंक्ति में देखी जा सकती है। 'ब्राह्मण' की शैली हास्य व्यंग प्रधान थी किन्तु गम्भीरता का उसमें अभाव नहीं था। छोटे से छोटे विषयों और बड़ी से बड़ी समस्याओं को लेकर, सरल अभिव्यक्ति के द्वारा मिश्र जी जन मानस को छूते थे। उनकी भाषा कृत्रिमता से दूर आडम्बरहीन, प्रकृत रूप से कागज पर उतरती थी। अपने समय के किसी भी विषय पर 'ब्राह्मण' चुप नहीं रहा। प्रत्येक क्षेत्र को उसने छुआ और स्पष्ट राय दी। देशभक्ति, धर्म चर्चा, नारी उन्नति, भाषा प्रचार, हिन्दी उर्दू का वितण्डावाद, साहित्य-निर्माण आदि सभी विषयों पर 'ब्राह्मण' की विवेकशील दृष्टि रही। जनता का प्रतीक बनकर, ब्राह्मण चला। कविता निबन्ध, उपन्यास, नाटक, आलोचना, सूचनाएँ, तथा अनूदितरचनाएँ व्यंग्य विनोद ब्राह्मण के आभूषण थे।

अंग्रेज़ सरकार की कड़ी आलोचना करने में भी ब्राह्मण बहुत आगे था। सरकारी विभागों में प्रचलित रिश्वत के विरुद्ध मिश्र जी ने ब्राह्मण के १५ मई सन् १८८३ के अंक में एक टिप्पणी लिखकर सरकारी कर्मचारियों की बेईमानी व राज्य के अन्धेपन का तीव्र विरोध किया था। इस पर सरकारी अधिकारियों के आपत्ति करने पर मिश्र जी ने उत्तर देते हुये लिखा "अपने देश भाइयों का दुख सुख ज्यों का त्यों प्रकाश करना हमारा मुख्य कर्तव्य है"। मिश्र जी निर्भीक पत्रकार व खरे आलोचक थे। ब्राह्मण में लिखी हुई उनकी टिप्पणियाँ, स्फूर्ति, साहस भरने वालीं और जिसपर प्रहार किया जाता उसे तिलमिला देनेवालीं होती थीं। ढुलमुल नीति में उनका विश्वास नहीं था। खतरा मोल लेकर भी वे विदेशी सरकार का तीव्र विरोध करते रहे।

प्रयाग में पं० बालकृष्ण भट्ट को कुछ गुण्डों ने पीटा था। इस घटना पर "उचित वक्ता" के सम्पादक ने "क्या प्रयागराज में अंग्रेजी

राज्य नहीं है ?" शीर्षक टिप्पणी लिखी। इस टिप्पणी पर मिश्र जी ने ब्राह्मण के १५ अक्टूबर सन् १८८४ के अंक में ब्रिटिश शासन की बेई-मानी व स्वार्थपरता पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा "हमारे परम सुयोग्य मननशील 'उचित वक्ता' भाई पूछते हैं क्या प्रयागराज में अंग्रेजी राज्य नहीं है ?" क्यों क्या वहाँ चुङ्गी नहीं है ? क्या वहाँ दारिद्र नहीं है ? क्या वहाँ शराब नहीं है ? क्या वहाँ गोरे रंग का अयोग्य पक्षपात नहीं है ?... 'हिन्दी प्रदीप' सम्पादक श्रीयुत पं० बालकृष्ण भट्ट महाशय को थोड़े गुण्डों ने मारा यह सुनके हमारा भी कलेजा फट गया पर क्या करें यह ज़माना ही ऐसा है।......"जब ते अंग्रेज को राज भयो बनि आई है नङ्गन नङ्गिन की"...गुण्डों से किसकी चलती है उनका तो राज है। मरही तो भले-मानुस की है जिनके इज्जतें होती हैं। हमें यह देख के आश्चर्य होता है जबकि हमारे चतुर चूड़ामणि 'उचित वक्ता' कहते हैं "कि आश्चर्य का विषय है कि आज तक गवर्नमेण्ट ने ध्यान न दिया !" क्या किसी के घर सोने की खान निकली है जो गवर्नमेण्ट ध्यान दे ? क्या किसी ने बैंक का रुपया मारा है जो गवर्नमेण्ट ध्यान दे ? क्या किसी गोरे को मारा है, गवर्नमेण्ट क्या ध्यान दे ?...हम गरीबों का खुदा फरियाद रस है। याद रहे अपनी इज्जत अपने हाथ है। कोऊ काहू को नहीं देखो ठोंक बजाय। गवर्नमेण्ट केवल मतलब की यार है।"

ऊपर उद्धृत शब्दों से मिश्र जी की निर्भीकता के साथ ही विदेशी सरकार का देशी नागरिकों के प्रति क्या रुख था; प्रकाश पड़ता है। मिश्र जी ने कभी भी गलत कामों का समर्थन नहीं किया। चाहे उससे अपने रुष्ट हों चाहे दूसरे। पत्रकारिता का मूलाधार ईमानदारी और स्पष्टता मिश्र जी के अभिन्न अंग थे। अंग्रेज़ सरकार ने अपने मूर्खातिमूर्ख वफादारों को उपाधियाँ तथा आनरेरी मैजेस्ट्रेट आदि के प्रलोभन देकर अपने समर्थकों का एक खासा सङ्गठन बना रखा था। इन स्थानों के लिये राजभक्ति के अलावा अन्य किसी भी प्रकार की योग्यता की आव-श्यकता नहीं थी। जब कि पेट की रोटी के लिये नौकरी करने वाले

साधारण से कर्मचारी के लिये भी मिडिल की डिग्री अनिवार्य थी। इस पर मिश्र जी ने ब्राह्मण के १५ मई व जून सन् १८८५ के अंक में "सरकार से कोई पूछे" शीर्षक टिप्पणी लिखी—"दस रुपया महीने की पिसौनी करने वाले बाबू लोगों के लिये तो मिडिल क्लास के पास की पख लगी है। वह कैसे ही योग्य क्यों न हों पर बिना सर्टीफिकेट नौकरी मिलना मुहाल है। परन्तु हमारे हाकिम आनरेरी मजिस्ट्रेट जिन पर हमारे सुख दुःख मानापमानादि निर्भर हैं। उनसे कोई यह भी नहीं पूछता कि क ख ग घ, ए बी० सी डी० अलिफ बे हौवा कुछ जानते हो कि नहीं? इसका क्या कारण है?"

इस प्रकार जनता के अधिकारी नेता की भाँति मिश्र जी अपनी बात बलपूर्वक कहने से चूकते नहीं थे। मिश्र जी को कहने से अधिक करने में विश्वास था। ब्राह्मण के प्रत्येक अंक में उन्होंने कोरे जबान चलाने वालों को ,बराबर फटकार लगाई है। वे कथनी के विरुद्ध और करनी के पक्षपाती थे। निराशा के घने अन्धकार में धैर्य के साथ आशा का विश्वास पैदा कर देना भी उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी। सार्व-जनिक हित के लिये वे रोने झींकने मे विश्वास न कर मुकाबले में डट कर काम करना पसन्द करते थे। जनहित व राष्ट्रहित के सामने व्यक्तिगत कठिनाइयों और लाभ हानि को उन्होंने महत्व नहीं दिया। वे सच्चे अर्थ में पत्रकार थे। पत्रकारिता की उनकी सूझबूझ अनोखी थी। पत्रकार के कर्तव्य को अनेक बार उन्होंने ब्राह्मण के अंकों में निर्भीकता पूर्वक घोषणा करते हुए अपनी नीति को भी स्पष्ट किया। पत्रकारिता के मौलिक सिद्धान्तों की रक्षा करने वालों में मिश्र जी का नाम हिन्दी पत्र कारिता में पहली पंक्ति में रक्खा जाना चाहिए। 'समाचार पत्र क्यों चलाये जाँय और किसके लिये? इस पर, मिश्र जी ने लिखा था—

"जब हम अपने कर्तव्य पर दृष्टि करते हैं तो एक पहाड़ सा दिखाई पड़ता है जिसका उल्लंघन करना अपनी शक्ति से दूर जान पड़ता है। सहस्त्रों विषय विचारणीय है किस किस पर लिखें और यदि लिखें भी तो

यह आशा बहुत कम है कि कोई हमारी सुनेगा; परन्तु करें क्या ? काम तो यह उठाया है। यदि अपने ग्राहकों को यह समाचार दें कि अब गर्मी बहुत पड़ने लगी या फलाने लालासाहब की बारात बहुत धूम से उठी या हमारे जिले के मजिस्ट्रेट तहसीलदार साहब और कोतवाल साहब इत्यादि धर्म और न्याय के रूप ही हैं तो हमारा पत्र तो भर जायगा पर किसी जीव का कुछ लाभ न होगा। और यदि सच सच वह असह्य दुःख जो हम प्रजागण को है वह लिखें तो उससे लाभ होना तो बहुत दूर दिखाई देता पर जिनके हाथों वह असह्य दुःख हमको प्राप्त होते हैं वह हम पर क्रुद्ध होंगे। यही डर लगता है कि कहीं नमाज के बदले रोजा न गले पड़ें। परन्तु हम भिखमंगे नहीं कि केवल ग्राहकों की खुशामद का ख्याल रखें। हम भाट नहीं कि बड़े आदमियों व राज पुरुषों की निरी झूठी स्तुति गाया करें। जो हो सो हो हम ब्राह्मण हैं इससे हमारा धर्म नष्ट होता है और हम पतित हुए जाते हैं। जो अत्यन्त दीन और असमर्थ देश भाइयों पर अत्याचार होते सैकड़ों मनुष्यों से सुने और फिर उसे सर्वसाधारण व सरकार पर विदित न करें ?"[1]

इस प्रकार जनप्रतिनिधित्व करके हिन्दी पत्रकारिता का स्तर ऊँचा बनाने में मिश्र जी का बहुत बड़ा हाथ है। हिन्दी पत्रकारिता के लिए और अन्य विषयों के लिए भी मिश्र जी का युग संक्रांति युग कहा जाना चाहिए।

दो चार हिन्दी सेवकों को छोड़ कर अन्य पढ़े लिखे वर्ग में हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का प्रेम जैसे समाप्त सा हो गया था। सरकार के संरक्षण से वंचित और उर्दू वालों के हिन्दी विरोधी दृष्टिकोण से भारतेन्दु, भट्टजी और मिश्रजी भी कभी-कभी क्षुब्ध होकर निराशा से भर उठते थे।

---

(१)'ब्राह्मण १५ मई १८८३ खण्ड १ संख्या ३ 'अंगार' शीर्षक लेख

अलवर राज्य के राजा के पास ब्राह्मण जाया करता था। कुछ ही दिनों बाद उन्होंने भी उसे लेना बन्द कर दिया। अलवर राज्य की ओर से ब्राह्मण का अंक वापस लौटाते हुए आइन्दा से न भेजने के लिए एक पत्र भी आया था। इस पत्र को ब्राह्मण के १५ फरवरी सन् १८८४ के अंक में छापते हुए मिश्रजी ने हिन्दी के दुर्भाग्य पर बड़ी ही करुणा प्रदर्शित की। अलवर राज्य का पत्र फारसी लिपि व उर्दू भाषा में था। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय देशी रियासतों के हिन्दू राजाओं से भी हिन्दी को कोई सहारा नहीं मिल रहा था। पत्र निम्नलिखित था:—

"इनायत वकरम फरमायमन जनाब पंडित साहब बाद दंडवत के वाजः हो कि परचः अखबार हिन्दी व उर्दू अखबार यहाँ व कसरत आते हैं कि उनके देखने की फुरसत नहीं मिलती। मिहरबानी फरमाकर अपना परचा एकुम फरवरी सन् १८८४ से भेजना बन्द फरमाइयेगा और परचा माह जनवरी का वापिस इरसाल खिदमत है।;

२ फरवरी १८८५

बंदा मूलचन्द नायब मीर मुंशी
अलमरकूम रियासत अलवर

इस पर टिप्पणी करते हुए मिश्रजी ने लिखाः—

"हाय यह अभागिन हिन्दी अब किसकी शरण गहे? क्योंकि जब हिन्दू राजाही उसका तिरस्कार करतेहैं तो यह किसकी शरण गहे? क्या इसके आदर करने वाले कहीं विलायत से आवेंगे? या जिनकी मातृभाषा ही नहीं वे आदर करेंगे। यह तो सम्भव ही नहीं है तो यह भारतवासियों को छोड़ किसकी शरण गहे फिर जब राजा लोगों का इस अभागिन भाषा के समाचार पत्र पढ़ने की फुरसत नहीं तो यह किसकी शरण गहे? उससे भी यह ब्राह्मण जो वर्ष भर अनूठे समाचार दे और एक रुपया मात्र दक्षिणा ले भला जब इस सस्ते पत्र को पढ़ने की फुरसत नहीं तो यह किसकी शरण गहे?

हा शोक ! सहस्त्रशः शोक ! कि अभागिन हिन्दी अब किसकी शरण गहे ?

किसीको चिढ़ाना, परेशान करना मिश्रजी को प्रिय नहीं था। न वे किसी की व्यर्थ निन्दा करते थे और न प्रशंसा। हाँ जिससे प्रसन्न होते थे उसकी प्रशंसा में नत होकर लिखने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे और जिन मित्रों की कोई बात गलत समझते, उसकी सही आलोचना किये बिना न रहते। भारतेन्दु तथा पं० बालकृष्ण भट्ट की प्रशंसा में मिश्रजी हर्ष और गौरव मानते थे। कहीं भी इन समकालीन मित्रों के प्रति वे अविनीत नहीं बने। हिन्दी साहित्य संसार की संपूर्ण गति विधि पर उनका ध्यान रहता था। सम्पादकीय शिष्टता और कर्त्तव्य से वे कभी पीछे नहीं हटे पं० राधाचरण गोस्वामी जी ने एक पुस्तक की आलोचना बड़े संकीर्ण विचारों के साथ की थी इस पर मिश्रजी ने टिप्पणी करते हुए लिखा—

"हमारे मित्रवर श्री राधाचरण गोस्वामी की योग्यता सहृदयता और विद्वत्ता किसी से छिपी नहीं है पर जब हम देखते हैं कि हमारा एक ऐसा सुयोग्य सहकारी कभी-कभी हँसी में आकर बाज जगह क्यों ऐसी बातें लिख बैठता है जो आक्षेपनीय एवं हास्यप्रद होती हैं तो हम क्या करें ? इधर मित्रता तो कहती है बोलो मत "बिगड़ने से बनता है उनका बनाव" इधर विचार कहता है नहीं "रोक दो गर गलत करे कोई"। अन्त में यही कहना पड़ता है "मुनिनांच मतिभ्रमः" आदमी भूलता ही है पर क्या कीजिये जान-बूझ कर भूलता हो उसको तो समझाये बिना जी नहीं मानता। हमारा विचार कभी किसी से झगड़ा लेने का नहीं रहता पर सच्ची बात में क्यों न कहें।'श्री गोविन्द नारायण जी कृत शिक्षा सोपान' की समालोचना में श्री मुख की आज्ञा है कि "ग्रन्थकर्त्ता शैव मालूम होते हैं अर्द्धचन्द्रा पर बड़ा जोर दिया है" भला पठन पाठन की पुस्तकों में क्या अर्द्धचन्द्रा न रहना चाहिए ? फिर गोस्वामी जी को कौन कर्णपिशाची सिद्ध है जो ग्रन्थकार की मति बदल गई ? आप वैष्णव हैं तो क्या अर्द्धचन्द्रा

उड़ा देंगे ? ऐसा हँसोड़पन किस काम का। और सुनो पुस्तकों की समालोचना में कुछ न कुछ दोष अवश्य ढूँढ लेने की आपको लत है पर अपनी बातों में आगे पीछे की सुध नहीं रखते। अगस्त के भारतेन्दु में आपने एक पुस्तिका दी है उसका नाम 'प्रेम बगीची' रक्खा है। क्या नाम रखने को कोई संस्कृत शब्द न जुटता था? प्रेम वाटिका बुरा था जो एक अरबी शब्द सो भी महा अशुद्ध रखते हैं। गोस्वामी जी को भली-भांति ज्ञात होगा कि वह शब्द बाग़ है जिसको बाग़ीचा कह सकते हैं। बाग़ीचा भी अशुद्ध है। पर शहर के अपढ़ लोग बोलते हैं परन्तु बगीचा और बगैचा तो सिवाय अक्षर शत्रुओं के कोई बोलता ही नहीं। जिसमें भी बगीची.........एक मात्रा अर्द्धचन्द्र लिखने वालों को ही आपने शैव समझ लिया पर इस अशुद्ध और जनाने शब्द को पोथी के नाम लाते समय यह ध्यान न रहा कि हमें लोग क्या समझेंगे।......हम आशा करते हैं कि हमारे मित्र आगे से ऐसी-ऐसी बातों पर ध्यान रक्खा करें"[1].........

हिन्दी समाचार पत्रों तथा पत्रकारों को उर्दू के समाचार पत्रों द्वारा आयेदिन होनेवाले आक्षेपों का कड़ा उत्तर देना पड़ता था। पत्रकारिता के गुण आदि की समस्या भी तब हिन्दीवालों के सामने एक विचारणीय समस्या थी। पं० राधाचरण गोस्वामी ने 'भारतेन्दु' में 'हिन्दी पत्र' शीर्षक एक लेख छापा। इस लेख में जो कुछ कमी दिखाई दी। उस पर टीका करते हुए मिश्रजी ने "खरी बात शहिदुल्ला कहें,सबके जी से उतरे रहें" शीर्षक एक टिप्पणी लिखी। इस टिप्पणी से पं० प्रतापनारायण मिश्र की सम्पादकीय योग्यता के साथ ही यह भी जाना जा सकता है कि उनकी दृष्टि समाचार पत्रों तथा पत्रकारों के प्रति कितनी पैनी रहती थी और समालोचना का ढँग उनका कितना शिष्ट तथा मनोरंजक था। टिप्पणी से तत्कालीन हिन्दी समाचारपत्रों पर भी प्रकाश पड़ता है:—

---

१ ब्राह्मण १५ सितम्बर हरिश्चन्द्र संवत् १ खंड ३ अंक ७

'नवम्बर के भारतेन्दु में 'हिन्दी पत्र' नामक लेख हमें बहुत पसन्द है। प्रायः सब बातें स्वीकृत हैं पर कुछ कहे बिना नहीं रहा जाता। इससे जिन-जिन बातों में हमारी सर्वथा सम्मति है उन्हें उद्धृत न करेंगे। पाठकगण भारतेन्दु में ही देख लें। हम केवल वे बातें लिखेंगे जिनमें हमें कुछ कहना है। सम्पादकों के सभी गुण ठीक हैं और सबको वैसा होने की कोशिश करनी चाहिये। सिवा इसके फारसी की कम से कम गुलिस्तां, बोस्तां और फिसानाअजायब, चहारदरवेशादि दस पाँच ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये नहीं तो उर्दू बीबी की ठीक २ चिथाड़ कैसे कर सकेंगे। उर्दू पत्रों की खुजली कैसे मिटावेंगे। वेशक सब ऐसे नहीं हैं पर होना चाहिये। पत्रोंके लेख में भी हम कहेंगे। 'सारसुधानिधि'राजनैतिक विषयों में उत्कृष्ट है पर भाषा ऐसी कड़ी है कि सब कोई नहीं समझ सकता और प्रत्येक लेख शैतान की आँत होता है जिसको पढ़ते-पढ़ते जी उकता जाता है। 'भारत मित्र' जरा चित्ताकर्षणीय शक्ति प्राप्त करलें तो बहुत अच्छे हो जायें और जरा विस्तार भी सीखें। 'उचित वक्ता' जो करते हैं ठीक करते हैं। 'बिहारबन्धु' का नाम बिरादरेविहार हो जाय तो हमें भी कोई शिकायत न रहे। 'कविबचन सुधा' (अगले वक्तों के हैं यह लोग इन्हें कुछ न कहो) अब न वे कवि हैं न उनके वचन सुधा से इन्हें वास्ता रहा। बस, 'प्रयाग समाचार' सीधेसाधे गमारों के हितैषी हैं। अतः अपने ढंग के परमोत्तम हैं। ऐसा भी कोई होना ही चाहिये था। 'भारत बन्धु' एडीटर परम प्रशंनीय पर शायद लिखते नहीं। सब पत्रों को जो कर्त्तव्य लिखा सो भी ठीक है पर पाठकों की रुचि पर किसका इजारा है? अब मासिक पत्रों में 'हिन्दीप्रदीप' बेशक हिन्दीभास्कर है। 'दिनकर प्रकाश' जरा एडीटर साहब खुद भी लिखा करें तो बेहतर है। 'आनन्द कादम्बिनी' में दोष लगाना व्यर्थ है। 'क्षत्री पत्रिका' आगे से फिर भी अच्छी है। 'रसिक पंच' परमोत्तम परम प्रशस्त है। चित्र हों तो अच्छा ही है नहीं तो अब भी सखो नदारद। 'कान्यकुब्ज

प्रकाश' सिर्फ जातीय पत्र है उसमें जात्योन्नति के लेखों की ही आवश्यकता है। 'पीयूष प्रवाह' का नाम हमारे गोस्वामी जी भूल गये। खैर हम लिखे देते हैं। सम्पादक जितने योग्य हैं पत्र में उतनी योग्यता क्यों नहीं रखते। 'वैष्णव पत्रिका' से और अबसे जमीन आसमान का फर्क है। 'देश हितैषी' आदि को जो कहा बजा कहा। 'धर्म जीवन' यद्यपि उर्दू में है पर प्रशंसनीय है। 'ज्ञान प्रदायिनी' भी खैर अच्छी है। रहे हम 'ब्राह्मण' सो न हग्गा न ब्रह्मचारी में पर खैर (ग़ालिब यह जाय रश्क नहीं जाय शुक्र है) दस से बुरा तो चार से बेहतर बना दिया। हाँ 'भारतेन्दु' जी हैं पर हँसोड़ यहाँ तक कि कभी-कभी बेमौका हँस पड़ते हैं। बस मुनासिब जान कर लिख मारा हमने कोई खुश होतो क्या कोई रूठे तो क्या है।"[1]

ब्राह्मण में अन्यान्य विषयों पर अच्छे-अच्छे निबन्ध, कविता, नाटक तथा अंग्रेजी व बंगला पुस्तकों के अनुवाद भी प्रकाशित होते थे। हास्य-व्यंग मिश्रित सरस निबन्ध जैसे—मुच्छ, परीक्षा, ट, द, और धोखा आदि तथा गम्भीर निबन्धों में शिव मूर्ति देशोन्नति, प्रेम पुष्पावलि, मतवालों की समझ, विस्फोटक आदि रखे जा सकते हैं। राजनीतिक लेखों में व्यंग्य के साथ निर्भीकता का जो स्वरूप मिश्रजी में मिलता है वैसा पं० बालकृष्णभट्ट को छोड़ कर अन्यत्र प्राप्त नहीं। रिश्वत, बेगार आदि लेख इसके उदाहरण हैं।

मिश्रजी ने कर्त्तव्य को निभाने में कुछ उठा नहीं रखा लेकिन युग की परिस्थितियों ने उन्हें चकनाचूर कर दिया। ब्राह्मण की चिन्ता में उनका शरीर घुलने लगा फिर भी उन्होंने उसे चलाते रहने के हर संभव उपाय किये। हिन्दी भाषाभाषियों को सदैव चेतावनी देते रहे, मगर कौन सुनता है? जिस कानपुर पर गर्व करके मिश्रजी ने ब्राह्मण निकाला था, उससे ब्राह्मण जैसे अपने युग के श्रेष्ठ मासिक पत्र को,

---

१—ब्राह्मण खंड ३ अंक ६-१० १५ नवम्बर व दिसम्बर हरिश्चन्द्र संव ६

सौ ग्राहक प्रतिवर्ष एकरुपया देनेवाले नहीं मिले। जन्म से ही ब्राह्मण को संकट का सामना करना पड़ा। ब्राह्मण की दशा का चित्र सदैव वे पाठकों के समक्ष रखते रहे किन्तु विशेष सहायता दूर, लोगों ने ग्राहक शुल्क तक नहीं दिया। ग्राहकों से कभी वे हास्य से तकाज़ा करते हुये लिखते:—

"भये आठ महिना जजमान,
अब तो करौ दच्छिणा दान।
जो तुम लैहौ बहुत खिझाय,
यह कौनिउ भलमन्सी आय।
हरि गंगा।

तो कभी खीझ के साथ लिखते थे:—"यह पत्र हमने रुपया जोड़ने को न चलाया था पर तो भी उसका खर्च तो निकलना ही चाहिए। लेकिन जमामार ग्राहक नहीं समझते कि सम्पादक लक्षाधीश नहीं है। हम निरलज्ज होके साफ साफ लिखते हैं......कि जो ऐसी सहाय मिली जैसे कानपुर के लोग विशेषतः चौक के अमीर दिया करते हैं तो हम लाचारी से अपनेसहयोगियों मेंहास्यास्पद बन जायेंगे।"[1] मगर न कानपुर के लोग चेते, न बाहर के! ब्राह्मण की आर्थिक दशा दिनोंदिन खराब होती जा रही थी अतः फिर मिश्र जी ने अपील की:—"क्या हमारे सहायक गण हमें दच्छिणा तभी देंगे जब हमें हैरान कर लेंगे? ... तीन वर्ष से हमने ऐसी तड़ातड़ी के साथ कभी तगादा नहीं किया पर अब ब्राह्मण की दशा बहुत ही बुरी है।"[2] परन्तु वह युग ही ऐसा था जिसमें इस प्रकार की अपीलों की कहीं कुछ स्थिति नहीं थी। सुनता भी कौन, विदेशी सरकार से कोई आसरा नहीं था, और अपनों की उपेक्षा ने तपस्वी साधकों के लिये घुट घुट के मरने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं

१—ब्राह्मण खंड ४ संख्या १ पृष्ठ ३ ४ 'अपनी बात'
२— " खंड ४ संख्या ७

छोड़ा। 'ब्राह्मण' के लिए मिश्र जी जो भी कर सकते थे किया, किन्तु उनकी पूँजी भी कब तक चलती ? गुणों के ग्राहक थे,लेकिन बहुत कम। इतने कम कि जिसमें गुणों को मरना ही पड़ता है। अन्ततः मिश्र जी ने एक बार अपने हृदय को उँडेल कर सबके सामने रख दिया। उन्होंने लिखा......"ब्राह्मण" को बन्द करने में परमेश्वर साक्षी है कि हमें पुत्र शोक से कम शोक नहीं होगा। पर हत्यारे नादहिन्दों ने हमें, लाचार कर दिया है"[1]। 'ब्राह्मण' का प्रत्येक अंक जहाँ साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और महान होता था वहीं आर्थिक दशा का दयनीय चित्र भी उसमें देखने को मिलता। 'ब्राह्मण'को अपना रोना ही नहीं दूसरों का रोना भी रोना पड़ता था।

मिश्र जी ऐसे पत्रकारों में से नहीं थे जो अपना लाभ सोचने के अतिरिक्त दूसरों की ओर देखें भी नहीं। मिश्र जी ने अपने कष्टों को भुलाकर दूसरों के प्रति ज्यादा सहानुभूति प्रदर्शित की है। प्रायः सभी हिन्दी समाचार पत्रों की दशा उस समय अच्छी नहीं थी ब्राह्मण की ही तरह सभी गिरते पड़ते चल रहे थे। कालाकांकर से निकलनेवाला हिन्दीदैनिक 'हिन्दोस्तान' उससमय एक मात्र दैनिक पत्र था। राजा रामपाल सिंह उसके संचालक थे। किन्तु बराबर घाटा होने से उन्हें भी पत्र बन्द करने की घोषणा करनी पड़ी। 'हिन्दोस्तान' बन्द होने की सूचना पढ़ कर मिश्र जी ने अपने हृदय की असीम वेदना जिन शब्दों में व्यक्त की है,वह पठनीय है। इसमें मिश्र जी के हिन्दी प्रेम, सहिष्णुता, सहकारिता भाव और तत्कालीन हिन्दी और हिन्दी समाज का अच्छा सा चित्र सामने आ जाता है। 'ब्राह्मण' के खंड ५ संख्या ६ के अंक में "अहह कष्टम पंडितता विधेः" शीर्षक लेख में वे लिखते हैं:-

"हाय, भारत न जाने तुमसे दैव कब तक रुष्ट रहेगा। हा, भगवति देव नागरी ! तुम्हारे भाग्य न जानें कब तक ऐसे ही रहेंगे।

---

१ ब्रा० खंड ४ संख्या ११

हाय, वेद से लेकर आल्हा तक की आधार हमारी प्यारी सर्व गुणागरी नागरी के अदृष्ट में न जाने क्या लिखा है कि इस विचारी की वृद्धि के लिए हम चाहे जैसा हाय हाय करें पर सुनने वाला कोई देख ही नहीं पड़ता। हाय राजा अन्य देशी होने के कारण इसके गुण नहीं समझते। प्रजा मूर्ख और दरिद्र होने से इसकी गौरव रक्षा नहीं कर सकती। पर परमेश्वर को हम क्या कहें जो सर्वज्ञ अंतर्यामी दीनबन्धु इत्यादि अनेक विशेषण विशिष्ठ होने पर भी हमारी मातृभाषा को भुला बैठा है हा, जगदीश! क्या तुम्हारी दया से भी हमारे पाप बढ़ गये। हाय हिन्दुस्तान क्या तुम्हारी स्थिति कागज पर भी दुष्ट दैव को अखरती है। अरे, भाग्य हीन हिन्दुस्तानियो! क्या तुममें अपनी भाषा तक की इतनी ममता भी नहीं कि दस बीस छोटे मोटे समाचार पत्रों को कायम रख सको। पाँच ही सात वर्षों के बीच में उचित वक्ता, भारतेन्दु, भारतोदय आदि कई उत्तमोत्तम पत्र स्मृति पथ को सिधार गये जो थोड़े से एडिटरों के रक्त से सिंचित होके बच भी रहे हैं उनके भी जीवन में हजार व्याधि लगी हुई हैं। हम समझे थे हमारे ब्राह्मण के गृह मध्यम हैं पर तीन जनवरी का हिंदुस्तान देख के और भी खेद हुआ कि वह विचारा फरवरी से समाप्त हुआ चाहता है। केवल एक सौ तीस ग्राहकों के आसरे दैनिक पत्र कै दिन चले? अब हमारी भाषा के एक मात्र दैनिक पत्र के रहने की आशा नहीं है। हा भारत? न जाने तुम्हारे संतान निज भाषा का गौरव कब जानेंगे? क्या बीस कोटि हिन्दुओं में १०) साल खर्चने वाले चार सौ लोग भी नहीं हैं!"

यह वह युग था जब हिन्दुस्तान दैनिक को चार सौ और ब्राह्मण जैसे उस युग के श्रेष्ठ मासिक पत्र को सौ ग्राहक भी नहीं मिलते थे। न जाने कितनी कठिनाइयों से इन लोगों ने रास्ता तै किया। मिश्र जी भी थक गये थे। ब्राह्मण की चिन्ता ने उनके स्वास्थ्य को

चौपट कर दिया था। उनका शरीर रोगों का घर हो गया; फिर भी उन्होंने ब्राह्मण को तब तक चलाया जब तक कहीं से भी उन्हें आशा की एक किरण भी दिखाई पड़ती रही। अंत में सब तरह से हार कर सात वर्ष तक ब्राह्मण को चलाने के पश्चात उन्होंनेउसे बन्द करने की घोषणा की। सातवें वर्ष के अंतिम अंक में 'अंतिम संभाषण' शीर्षक लेख में जैसे खीझ कर उनका हृदय रो उठा है, लेख प्रारम्भ करने के पूर्व

"दरो दीवार पै हसरत से नजर करते हैं।

खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।"

शेर उद्धृत करने के बाद उन्होंने लिखाः—

"परम गूढ़ गुण रूप स्वभावादि सम्पन्न प्रेम देव के पद पद्म को बारम्बार नमस्कार है कि अनेकानेक विघ्नों की उपस्थिति में भी उनकी दया से ब्राह्मण ने सात वर्ष तक संसार की सैर करली नहीं तो कानपुर तो वह नगर है जहाँ बड़े बड़े लोग बड़ों बड़ों की सहायता के आछत भी कभी कोई हिन्दी का पत्र छः महीने भी नहीं चला सके और न आसरा है कि कभी कोई एतद्विषयक कृतकार्यत्व लाभ कर सकेगा। क्यों कि यहाँ के हिन्दू समुदाय में अपनी भाषा और अपने भाव का ममत्व विधाता ने रक्खा ही नहीं फिर हम क्यों मान लें कि यहाँ हिन्दी और उसके भक्त जन कभी सहारा पावेंगे।......... अन्त को यही जान पड़ा कि या तो हम देश की सेवा के योग्य नहीं हैं या देश हमारे गुणों को समझने की योग्यता नहीं रखता। ...समय का प्रभाव रोकना किसी का साध्य नहीं है अतः छाती पर पत्थर रख के विदा होते हैं और कोई सुने या न सुने पर अपने धर्मानुसार चलते चलते कहे जाते हैं किः—

चहहु जो साँचहु निज कल्यान।
तौ सब मिलि भारत संतान।
जपौ निरंतर एक जबान।
हिन्दू हिन्दी- हिन्दुस्तान।

इसके बाद खड्गविलास प्रेस के मालिक बाबूरामदीन सिंह, जो मिश्र जी का बड़ा आदर करते थे, ब्राह्मण को अपने यहाँ से प्रकाशित करने लगे। मिश्र जी का देहावसान होने तथा उसके बाद भी कुछ दिनों तक यह चलता रहा। किन्तु मिश्र जी की मृत्यु से 'ब्राह्मण' निष्प्राण होकर मृत्यु के मुख में चला गया।

सरस्वती—जनवरी सन् १९०० से नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संरक्षण में, इन्डियन प्रेस प्रयाग से, मासिक पत्रिका के रूप में निकली। यद्यपि सरस्वती का प्रकाशन प्रयाग से हुआ किन्तु 'सरस्वती' के निर्माण में कानपुर का योग सर्वोपरि है। जिस प्रकार सरस्वती से द्विवेदी जी को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार सरस्वती और द्विवेदी जी को कानपुर से अलग नहीं किया जा सकता। सरस्वती का सम्पादन आचार्य द्विवेदी जी ने कानपुर में रहकर किया। सहायक सम्पादक के रूप में कानपुर के पं० उदय नारायण बाजपेयी, पं० देवीप्रसाद शुक्ल तथा श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की साधना भी सरस्वती को मिली।

प्रारम्भ में सरस्वती का सम्पादन एक सम्पादक मण्डल के द्वारा किया गया। दूसरे वर्ष से केवल बाबू श्यामसुन्दर दास उसका सम्पादन करने लगे। सरस्वती हिन्दी की पहली मासिक पत्रिका है, जो रूप और गुण में अपने युग की प्रतिनिधि पत्रिका थी। आज ५५ वर्ष की सरस्वती भी रूप और गुण में कम नहीं है। अपनी दीर्घ आयु के द्वारा हिन्दी पत्र पत्रिकाओं की स्थायी परम्परा में योग देने वाली यह अकेली मासिक पत्रिका है। सरस्वती ने प्रारम्भ से ही हिन्दी प्रेमियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। सरस्वती को जो मान्यता व महत्ता प्राप्त हुई उसके पीछे सन १९०३ से लेकर १९२० ई० तक, द्विवेदी जी की सम्पादन के रूप में की गयी साधना का ही फल है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी अत्यधिक व्यस्त रहते थे। इसकारण सरस्वती सम्पादन के लिये वे समय नहीं निकाल पाते थे। अतः सरस्वती के

विकास में तो बाधा पड़ती ही थी, संचालक को आर्थिक हानि भी उठानी पड़ी। बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने इस कठिनाई का अनुभव कर दिसम्बर १९०२ के अंक में सरस्वती के सम्पादन भार से अवकाश ग्रहण करते हुये टाइटिल पेज दूसरे में लिखा "इस संख्या के साथ सरस्वती के तीसरे भाग का अन्त हो गया। जनवरी सन् १९०३ से इस पत्रिका का चौथा भाग आरम्भ होगा। आगे इसके सम्पादन के पद को हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी जी सुशोभित करेंगे।' इसके आगे बाबू जी ने अपना सम्बन्ध विच्छेद का उल्लेख करते हुये सम्पादन सामग्री को द्विवेदी जी के पास झाँसी भेजने की सूचना दी।

द्विवेदी जी रेलवे की नौकरी छोड़ चुके थे। सरस्वती का सम्पादन सम्हालते ही उन्होंने उसकी काया पलट कर दी। १९०३ के पहले ही अंक से हिन्दी प्रचार प्रसार की योजना, ज्ञान-विज्ञान, देश-विदेश, धर्म,दर्शन, संस्कृति,साहित्य आदि विषयों पर विधिवत टिप्पणियाँ व लेख छपने शुरू हो गये। सरस्वती के रूप व गुण दोनों में वृद्धि होने से उसका प्रचार भी बढ़ने लगा। हिन्दी जन उसकी ओर आकर्षित हुये। द्विवेदी जी की सरस्वती सन्देश वाहिनी बन कर घर-घर ज्ञान का प्रचार और ठोस कार्य को पूर्ण बनाने के लिये संगठन करने लगी।

प्रारम्भ से ही द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य में स्तर, भाषा परिमार्जन और शब्दों की एकरूपता पर ज़ोर देना प्रारम्भ कर दिया था। द्विवेदी जी से पूर्व सरस्वती में व्याकरण आदि की समस्याओं पर कुछ नहीं कहा गया था। बाबू श्यामसुन्दरदास भी अपने सरस्वती के सम्पादन काल में "लौं" "न्नेर" आदि शब्दों का प्रयोग करते थे। द्विवेदी जी का सरस्वती के साथ पुराना सम्बन्ध था। बाबू जी के सम्पादन काल में आचार्य द्विवेदी जी साहित्यक विषयों पर व्यंग कविताएँ लिखते थे, जो सरस्वती में व्यंग्य चित्रों के साथ छपा करती थीं।

द्विवेदी जी निर्भीक व निष्पक्ष आलोचक थे। साहित्य साधना के क्षेत्र में वे दोस्ती का निर्वाह नहीं करते थे। काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा हिन्दी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट सन् १६०४ में प्रकाशित की गई थी! उसकी आलोचना द्विवेदी जी ने अक्टूबर १६०४ की सरस्वती में अधिक स्पष्टता के साथ की। खरी आलोचना से रुष्ट हो कर सभा ने सरस्वती संचालक व सम्पादक पर अपना रोष प्रकट करते हुये स्मरण दिलाया; कि सरस्वती के मुख पृष्ट पर सभा की संरक्षता अंकित रहती है; अतः सभा के कार्यों की निन्दा इस प्रकार सरस्वती में की जाय, यह ठीक नहीं। इसका उत्तर द्विवेदी जी ने दिसम्बर १६०४ के अंक में लेख लिख कर कड़ाई से दिया। परिणामस्वरूप १६०५ के जनवरी अंक से काशी नागरी प्रचारिणी सभा का नाम सरस्वती के मुख पृष्ठ से हट गया। १६०५ में द्विवेदी जी झांसी छोड़ कर कानपुर में रहने लगे। कानपुर आकर द्विवेदी जी ने सरस्वती को इस रूप में चलाया, जिसके कारण हिन्दी साहित्य के इतिहास में उसने अमरता प्राप्त की। हिन्दी भाषा, व्याकरण और नागरी लिपि के आन्दोलन को गति प्रदान की। कानपुर के 'ज़माना' तथा अन्य उर्दू पत्रों के हिन्दी विरोधी प्रचार का वे तीखा उत्तर देते रहे। सभा की निष्पक्ष आलोचना भी बराबर होती रही। १६०५ में ही डाक्टर ग्रियर्सन की भाषा सम्बन्धी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट के गुणों की प्रशंसा तथा दोषों की कड़ी आलोचना 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई।

द्विवेदी जी की लेखन शैली जहाँ सरल व सीधी थी वहाँ कड़ी व पैनी भी। आलोचना की उनकी शैली विशेष तीखी थी। वे स्वाभाविक गम्भीरता के साथ कड़े शब्दों का प्रयोग करने में चूकते नहीं थे। सन् १६०६ में "भाषा और व्याकरण" शीर्षक एक लेख द्विवेदी जी ने लिखा। इस लेख की चुभती हुई आलोचना करते हुए 'भारत मित्र'

में बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने कई लेख लिखे। इसके उत्तर में द्विवेदी जी ने भी रुष्ट होकर कई कड़े लेख व टिप्पणियाँ सरस्वती में प्रकाशित कीं। गुप्त जी ने द्विवेदी जी द्वारा प्रयुक्त 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर एक तूफान ही खड़ा कर दिया था। और इस शब्द को शुद्ध सिद्ध करने में द्विवेदी जी ने भी कोई कसर नहीं उठा रखी थी। सीधे प्रहार करने में द्विवेदी जी कैसे थे, यह उनके बाबू बालमुकुन्द गुप्त के विरुद्ध लिखे गये लेख के निम्नलिखित शब्दों से पता चल जाता है—
"प्रतापनारायण ऐसे बज्र देहाती ने जिस रूह के क़ालिब को हिन्दी सिखलाई वह क्यों न लहँगे का तरफदार हो।"

द्विवेदी जी ने हिन्दी के गद्य व पद्य में ब्रज भाषा व खड़ी बोली के द्वन्द को समाप्त करने के लिये भगीरथ प्रयत्न किया, और उसमें वे सफल भी हुए। खड़ी बोली कविता की प्राण प्रतिष्ठा में द्विवेदी जी और सरस्वती का अद्वितीय स्थान है। खड़ी बोली काव्य का आन्दोलन तेजी के साथ सन् १६०५ से द्विवेदी जी ने कानपुर से चलाया। सन् १६०५ से ही बाबू मैथलीशरण गुप्त की रचनाएँ 'सरस्वती' में छपना शुरू हुई। १६०६ के अन्तिम अंक में द्विवेदी जी ने पाठकों को सूचित करते हुए लिखा—"सरस्वती के रसज्ञ वाचक अब कुछ गम्भीर विषयों पर भी लेख पढ़ने को तैयार रहें। सामान्य विषयों पर ही सरल लेख लिखते रहने से हिन्दी की अवस्था उन्नति नहीं हो सकती।" "उपर्युक्त वाक्यों से यह पता लगता है कि द्विवेदी जी हिन्दी के कितने सजग प्रहरी और कितने दूरदर्शी नेता थे। किसी भी चीज़ को किस प्रकार बढ़ाया तथा प्रचारित किया जाय, यह वे अच्छी तरह जानते थे। १६०३ से सरस्वती का सम्पादन द्विवेदी जी ने सम्हाल लिया था। तब से १६०६ तक अपने पाठकों की रुचि का परिष्कार वे बराबर करते रहे, और तब गम्भीर विषयों की ओर पाठकों का ध्यान दिलाया। द्विवेदी जी उन वैद्यों में से नहीं थे जो रोगी की

पाचन शक्ति का ख्याल किये बिना पथ्य दे डालते हैं। बल्कि वे उन चतुरचूड़ामणियों में से थे जो रोगी की नाड़ी देख कर ठीक-ठीक पथ्य देना जानते हैं।

अस्तु, गम्भीर साहित्य के लिए उन्होंने पहले पृष्ठभूमि तैयार की, तब सरस्वती के माध्यम से उसका प्रचार-प्रसार किया। १९०७ से गम्भीर विषयों पर लेख, महापुरुषों के जीवन चरित्र, कहानियाँ आदि छपने लगीं। "सभा की सभ्यता" शीर्षक सुप्रसिद्ध लेख द्विवेदी जी ने अप्रैल सन् १९०७ में लिखा था। इसी वर्ष के मई अंक में हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहानी "दुलाई वाली" छपी थी। इस समय तक सरस्वती में विविध विषयों पर स्थाई रूप से लिखने वाला एक लेखक मण्डल तैयार हो गया था। राय देवीप्रसाद पूर्ण, बाबू मैथिलीशरणगुप्त, पं० उदय नारायण वाजपेयी, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, वार्हस्पत्य, स्वामी सत्यदेव, श्री काशीप्रसाद जायसवाल आदि महानुभाव उस समय सरस्वती के लेखकों में थे। आचार्य द्विवेदी जी ने अपने श्रम व सरस्वती के माध्यम से अन्यान्य लेखक पैदा किये और साहित्य के भिन्न-भिन्न अङ्गों को प्रचारित और पुष्ट किया। नये नये विषय सुझाकर साहित्य भाण्डार की श्री वृद्धि की। भाषा के स्वरूप को सँवारा। आलोचना, कथा साहित्य जीवन चरित्र, कविता, यात्रा साहित्य तथा अन्य वैज्ञानिक विषयों से हिन्दी साहित्य का सीमा विस्तार किया। द्विवेदी जी ने सरकार व सरकारी अधिकारियों के हिन्दी विरोधी कार्यों की तीव्र तथा तर्कपूर्ण आलोचना करके हिन्दी के सही दृष्टिकोण को जनता के समक्ष रक्खा। उर्दू समर्थकों के हिन्दी विरोधी विषैले प्रचार का खड्ग हस्त होकर उत्तर दिया। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी बात यह भी है, कि उन्होंने जो कुछ भी किया उसके पीछे ठोस अध्ययन और अकाट्य आधार थे। द्विवेदीजी ने सन् १९२० तक सरस्वती का सम्पादन किया १९१० में कुछ दिनों के लि उन्होंने विश्राम लिया था। द्विवेदीजी के विश्राम काल में सरस्वती का सम्पादन श्री देवी प्रसाद शुक्ल (कानपुर) ने किया।

द्विवेदीजी के सम्पादन काल में ही जो हिन्दी के स्वनामधन्य साहित्यकार जनता के सामने आये उनमें ठाकुर गदाधर सिंह, ठाकुर गोपालशरण सिंह, पं० रामचन्द्र शुक्ल, विश्वम्भरनाथशर्मा कौशिक, श्री सनेही जी, रूपनारायण पाण्डेय, सियारामशरण गुप्त, गणेशंकरविद्यार्थी, प्रेमचन्द्र, चन्द्रधरशर्मा गुलेरी, वृन्दावन लाल वर्मा, नारायणप्रसाद अरोड़ा, ज्वालादत्त शर्मा पदुम लाल पन्नालाल बख्शी, आदि के नाम प्रमुख हैं। द्विवेदी जी ने सम्पादकीय योग्यता, ज्ञान, सच्चरित्रता, निर्भयता, स्वच्छता, औरप्रेम के द्वारा जिस प्रकार सरस्वती की सेवा की उससे पत्रकारिता का स्तर काफी ऊँचा हुआ। पत्रकारिता एक महान तपस्या है, इसे द्विवेदी जी ने प्रत्यक्ष करके दिखाया। संस्कृति, साहित्य और साहित्यकार, विदेशी साहित्य और साहित्यकारों का परिचय, हिन्दी संसार को सर्व प्रथम द्विवेदी जी ने विधिवत सरस्वती के द्वारा कराया। १९२० के अन्त में बख्शीजी को सरस्वती का सम्पादन भार सौंप कर द्विवेदी जी ने उससे अवकाश ग्रहण कर लिया। सम्पादन छोड़ देने के बाद भी द्विवेदी जी ने सरस्वती की सेवा से अपने को विमुख नहीं किया। जब तक उनका शरीर साथ देता रहा सरस्वती के लिये वे कुछ न कुछ लिखते रहे।

सरस्वती ने हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक सेवा की है। और उस ऐतिहासिक अमरता के प्रदाता हैं - आचार्य द्विवेदीजी। द्विवेदीजी और सरस्वती को यदि अलग करके हम हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग को देखना चाहें तो निश्चित ही वह धुँधला होगा। हिन्दी के विकास ने बहुत से दौर देखे हैं। देखे हुए युगों में द्विवेदी-युग उसका स्वर्ण युग है। द्विवेदी युग को बदलने की क्षमता अभी हिन्दी में नहीं आयी। जो नये पृष्ठ जुड़ रहे हैं उनमें द्विवेदी जी की तपश्चर्या दिखाई देती है। साहित्य देवता के जिस विराट रूप की झलक द्विवेदी जी ने दिखाई थी, उसकी पूर्ण छवि तो हिन्दी में अब उतारी जा रही है।

आज जब हिन्दी की अन्यान्य पत्र पत्रिकाएँ निकल रही हैं तब भी सरस्वती अपने सात्विक रूप और गुण लिये बढ़ती जा रही रही है। श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी और श्री देवीदयाल चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में अभी उसे बहुत कुछ देना है।

प्रताप-कार्तिक शुक्ल ११ (देवोत्थानी एकादशी) सम्वत १९७० विक्रम ता०९ नवम्बर सन् १९१३ ई० को कानपुर से साप्ताहिक निकला। श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, श्री शिवनारायण मिश्र तथा कोरोनेशन प्रेस के मालिक श्री यशोदानन्दन के सम्मिलित प्रयत्न का फल था प्रताप का प्रकाशन। सम्पादन कार्य श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, और व्यवस्था अरोड़ा जी तथा मिश्र जी करते थे। कोरोनेशन प्रेस से प्रताप छपता था। अरोड़ा जी प्रताप के सम्पादन में भी योग देते थे। चार महीने के बाद श्री यशोदानन्दन और लगभग दस महीने बाद श्री अरोड़ा जी उससे अलग हो गये। प्रारम्भ में प्रताप १३"×१०" साइज के १६ पृष्ठों का निकलता था। इसका मूल्य शहर में दो रुपया व बाहर ढाई रुपया था। प्रताप की लोक प्रियता ज्यों ज्यों बढ़ती गई त्यों त्यों उसके पृष्ठ भी बढ़ाये जाते रहे। चालीस पृष्ठों तक का प्रताप निकला। प्रताप का नामकरण अरोड़ा जी ने प्रतापनारायण मिश्र की और विद्यार्थी जी ने वीर शिरोमणि राणाप्रताप की स्मृति में रक्खा था। फलस्वरूप प्रताप के प्रथम अंक में श्री अरोड़ा जी ने पं० प्रताप नारायण मिश्र पर तथा विद्यार्थी जी ने राणाप्रताप पर लेख लिखा।

प्रताप की नीति पर प्रकाश डालते हुए विद्यार्थी जी ने प्रथम अंक में सम्पादकीय लिखा—"आज अपने हृदय में नई नई आशाओं को धारण करके अपने उद्देश्यों पर पूर्ण विश्वास रख कर प्रताप कर्म क्षेत्र में आता है। समस्त मानव जाति का कल्याण हमारा परमोद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत बड़ा और बहुत जरूरी साधन हम भारतवर्ष की उन्नति समझते हैं। उन्नति से हमारा अभिप्राय देश की कृषि, व्यापार, विद्या, कला, वैभव, मान बल, सदाचार और सच्च-

रित्रता की वृद्धि से है। भारत को इस उन्नतावस्था तक पहुँचाने के लिए असंख्य उद्योगों, कार्यों और क्रियाओं की आवश्यकता है। इनमें से मुख्यतः राष्ट्रीय एकता सुव्यवस्थित सार्वजनिक व सर्वाङ्ग पूर्ण शिक्षा का प्रचार प्रजा का हित और भला करने वाली सुप्रबन्ध और सुशासन की शुद्ध नीति का राज कार्यों में प्रयोग, सामाजिक कुरीतियों का निवारण तथा आत्मावलंबन और आत्मशासन में दृढ़ निष्ठा है। हम इन्हीं सिद्धान्तों और साधनों को अपनी लेखनी का लक्ष्य बनावेंगे। हम अपनी प्राचीन सभ्यता और जातीय गौरव की प्रशंसा करने में किसी से पीछे न रहेंगे। और अपने पूजनीय पुरुषाओं के साहित्य, दर्शन, विज्ञान और धर्मभाव का यश सदैव गायेंगे। किन्तु अपनी जातीय निर्बलताओं और सामाजिक कुसंस्कारों तथा दोषों को प्रकट करने में हम कभी बनावटी जोश मसलहतवख्त से काम न लेंगे......... किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता, किसी की घुड़की या धमकी हमें अपने सुमार्ग से विचलित न कर सकेगी। साम्प्रदायिक और व्यक्तिगत झगड़ों से प्रताप सदा अलग रहने की कोशिश करेगा। उसका मत स्वातंत्र्यविचार और उसका धर्म सत्य होगा...... । हमारा जन्म निर्बलता, पराधीनता और अल्पज्ञता के वायुमण्डल में हुआ है। तो भी हमारे हृदय में सत्य की सेवा करने के लिए आगे बढ़ने की इच्छा है और हमें अपने उद्देश्य की सचाई तथा अच्छाई का अटल विश्वास है।......लेकिन जिस दिन हमारी आत्मा इतनी निर्बल हो जाय कि अपने प्यारे आदर्श से डिग जावें, जान बूझ कर असत्य के पक्षपाती बनने की बेशर्मी करें और उदारता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरुता दिखावें, वह दिन हमारे जीवन का सबसे अभागा दिन होगा। और हम चाहते हैं कि हमारी उस नैतिक मृत्यु के साथ ही साथ हमारे जीवन का भी अन्त हो जाय।"

निःसन्देह गणेश जी ने अपने जीवन भर प्रताप को अपने प्यारे आदर्शों से कभी विचलित नहीं होने दिया। पार्थिव मृत्यु का उन्होंने हँसते-हँसते आलिंगन किया किन्तु नैतिक पराजय कभी स्वीकार नहीं की।

प्रताप का बल जनसाधारण का बल था। प्रताप को व्यक्तिगत सम्पत्ति न मानकर विद्यार्थी जी ने उसे सार्वजनिक सम्पति के रूप में रखा। जन्म से ही प्रताप को निर्भीकता व स्पष्टवादिता ने सर्वसाधारण पर अपनी धाक और ब्रिटिश राज्य के अत्याचारी शासकों पर आतंक जमा दिया था। सरकार को प्रताप के बढ़ते प्रभाव से चिन्ता रहने लगी। राज्य के अधिकारी उसे फूटी आँख भी न देख सकते थे। अत्याचारी शासक और गरीबों का खून चूसने वाले राजा, नवाब और ज़मीदार उसे अपना शत्रु समझने लगे। चेतावनी, तलाशी, जमानत, जुर्माना और जेल, प्रताप के लिये रोज की बात हो गई। सरकार और उसके पिट्ठुओं के विरुद्ध निरन्तर लड़ते रहने से प्रताप की आर्थिक व्यवस्था खराब हो गयी। तब प्रताप सहायक फण्ड खोला गया। इस फण्ड में सभी लोगों ने यथाशक्ति योग दिया। प्रताप के प्रति सर्वसाधारण का इतना आकर्षण देख गणेशजी ने मार्च सन् १६१६ में प्रताप को ट्रस्ट के अधीन कर दिया। प्रताप के ट्रस्टियों में श्री मैथलीशरण गुप्त, डा० जवाहर लाल रोहतगी, लाला फूलचन्द जैन, श्री शिव नारायण मिश्र और श्री गणेश शंकर विद्यार्थी मैनेजिंग ट्रस्टी थे। लाला फूलचन्द के त्यागपत्र देने पर राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन और गणेश जी के मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री हरिशंकर विद्यार्थी रिक्त स्थान पर चुने गये। ट्रस्ट बन जाने के बाद श्री गणेशशंकर जी विद्यार्थी प्रताप सम्पादक और श्री शिवनारायण मिश्र उसके मुद्रक तथा प्रकाशक हुए। सन् १६२१ में प्रताप पर रायबरेली मान हानि केस चला और सम्पादक प्रकाशक से पन्द्रह पन्द्रहहजार की जमानत माँगी गयी। मुकदमे में दौड़-धूप के कारण गणेश जी सम्पादन कार्य संभाल नहीं पाते थे। अतः पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल प्रतापसम्पादक बना दिये गये। मुद्रक और प्रकाशक भी पालीवाल जी रहे। सन् १६२३ में पालीवाल जी के चले जाने से पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन ने दो अंको का सम्पादन किया। फिर अक्टूबर १६२३ से पं० माखन लाल

चतुर्वेदी प्रताप का सम्पादन कार्य १९२४ तक करते रहे। विद्यार्थी जी इस समय जेल में थे। जेल से छूटने पर विद्यार्थी जी ने १० मार्च १९२४ से सम्पादन कार्य अपने हाथ में पुनः ले लिया। सन् १९२८ में साईं खेड़ा मानि-हानि केस चला। इसी साल अदालत की तौहीन करने का नोटिस मिला। किन्तु बड़े धैर्य और साहस के साथ दोनों ही कठिनाइयों से विद्यार्थी जी प्रताप को निकाल ले गये। प्रेस आर्डिनेन्स के अनुसार जब प्रताप सन् १९३० में बन्द हुआ, तब तक गणेश जी उसके सम्पादक रहे। प्रेस आर्डिनेन्स जब खतम हुआ, तब विद्यार्थी जी जेल में थे। अतः ९ नवम्बर १९३० से प्रताप जब पुनः निकला, तब उसके मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक श्री प्रकाशनारायण शिरोमणि हुये। थोड़े दिनों के बाद शिरोमणि जी भी जेल चले गये तब श्री निवास बालाजी हार्डीकर उनके स्थान पर नियुक्त हुये। जेल से छूटने पर विद्यार्थी जी ने प्रताप का सम्पादन कार्य अपने हाथ में लेकर २२ मार्च सन् १९३१ का एक ही अंक निकाला था, कि वे ता० २५ मार्च सन १९३१ को शहीद हो गये। उनके बाद प्रताप का सम्पादन पं० बालकृष्ण शर्मा ने कई वर्ष तक किया।

प्रताप सर्वसाधारण के प्रति सदैव ईमानदार रहा। विद्यार्थी जी ने प्रताप को कभी लोभ और लालच के पास फटकने नहीं दिया। हिन्दी की पत्रकारिता का स्तर अपने चरित्र और कठोर परिश्रम के द्वारा उन्होने काफी ऊँचा किया। देशी राज्यों में होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध प्रताप ने हमेशा आवाज लगाई। देशी राजाओं के राष्ट्र विरोधी, जन विरोधी कार्यों की तीव्र आलोचना करने में वह कभी पीछे नहीं हटा। परिणाम स्वरूप प्रताप को अनेक राज्यों में प्रवेश करने की मनाही हो गई। देशी राजाओं पर होने वाले बृटिश अधिकारियों की मनमानी के खिलाफ भी 'प्रताप' लड़ा। अपनी गलती की खुले आम माफी माँगने में 'प्रताप' हिचका नहीं, और सही बात के लिये किसी भी दबाव-धमकी और भय से वह झुका नहीं। स्वत-

न्त्रता संग्राम की सभी लड़ाइयों में प्रताप ने खुलकर भाग लिया। असहयोग आन्दोलन, बारडोली, खेड़ा, पटुआखाली में होने वाले सत्याग्रहों को उसने बल दिया। अनेक क्रान्तिकारी देश सेवकों के लिए वह घर बना रहा। देश के हित में होने वाले सभी काम, चाहे वे हिंसात्मक रहे हों चाहे अहिंसात्मक, समर्थन और सहायता में प्रताप सबसे आगे रहा।

सुपाठ्य, सुरूचिपूर्ण सामग्री का चयन, ज्ञान और उत्साहवर्द्धक लेखों द्वारा प्रताप अपने पाठकों को अच्छी दिशा में बढ़ाने का प्रयत्न करता था। सर्वसाधारण की चिट्ठी पत्री, देशी राज्य, और अन्य स्थायी स्तंभों के द्वारा प्रताप ने पत्रकारिता के उच्च आदर्शों को सामने रक्खा। भाषा को सरल और शक्तिशाली बनाने में प्रताप को भुलाया नहीं जा सकता। न समझ में आने वाले लेख और कविताओं को विद्यार्थी जी ने प्रताप में स्थान नहीं दिया। वे प्रताप के पाठकों के समक्ष बड़ी से बड़ी चीज अत्यंत सरल और सहज रूप में रखते थे। वे जानते थे कि प्रताप के पाठक देश के सहस्त्रों अशिक्षित और अर्ध-शिक्षित लोग हैं। इन सब विशेषताओं के कारण 'प्रताप' ने नगरों के अतिरिक्त ग्रामों में अधिक प्रभाव बना रक्खा था। हिन्दी के पत्रों में 'प्रताप' को यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसके आने की लोग राह देखा करते थे, और पहुँचने पर उसका पाठ होता था, जिसे सुनने के लिये भीड़ की भीड़ इकट्ठी हुआ करती थी। किसान, मज़दूर, व्यापारी, कर्मचारी, शिक्षित, अशिक्षित, अमीर, ग़रीब, सभी के लिए प्रताप के पृष्ठ खुले रहते थे, बशर्ते कि दृष्टिकोण जन हित का हो।

प्रताप दैनिक रूपमें सर्वप्रथम २३ नवम्बर १६२० को निकला और लोकप्रिय बनता गया। रायबरेली केस में लम्बी जमानत और मुचलके तथा सरकारी अधिकारियों के अड़ंगों से आन-बान के साथ प्रताप का निकालने में जब कठिनाई होने लगी, तब ६ जुलाई १६२१ को उसे बन्द कर दिया गया। २१ नवम्बर १६३० में दैनिक प्रताप श्री प्रकाशनारायण

शिरोमणि के सम्पादकत्व में पुनः निकला। किन्तु प्रदेश काँग्रेस के अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमदास टंडन के मदु्मशुमारी का बहिष्कार सम्बन्धी वक्तव्य को छापने के अपराध में शिरोमणि जी को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। अतः दैनिक प्रताप २ जनवरी १६३१ ई० को पुनः बन्द हो गया। गणेश जी के शहीद हो जाने के बाद उनकी स्मृति में प्रताप का दैनिक संस्करण निकलना शुरू हुआ, जो अब तक चल रहा है। इस समय दैनिक का सम्पादन श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य और साप्ताहिक का श्री रामदुलारे त्रिवेदी करते हैं। 'नवीन' जी के बाद कई वर्ष तक श्री हरिशंकर विद्यार्थी ने प्रताप का सम्पादन संचालन बड़ी सफलता के साथ किया था। प्रताप को प्रतापी बनाने वालों में पं० माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, श्री बालकृष्ण शर्मा, तथा सहयोगियों में पं० श्रीरामशर्मा, पं० रमाशंकर अवस्थी, पं० दशरथप्रसाद द्विवेदी, देवव्रत शास्त्री, बलभद्र प्रसाद मिश्र, श्री युगल किशोर सिंह, श्री जनार्दन भट्ट, पं० विष्णुदत्त शुक्ल, ठाकुरप्रसाद शर्मा, सरदार भगत सिंह, श्री जगमोहन विकसित, देवीदत्त मिश्र, कृष्णानन्द गुप्त, सुरेन्द्र शर्मा, रामचन्द्र शुक्ल, जयदेव गुप्त, राघवेन्द्र एम० ए०, रामनाथ गुप्त, गजपतराय सक्सेना, सत्यनारायणजायसवाल, प्रयागनारायण त्रिपाठी, जगदीशप्रसाद रूसिया, अज्ञात एम० ए०, अर्जुनप्रसाद शुक्ल, के अतिरिक्त आज कल प्रताप के सहयोगियों में:—श्री दुर्गादत्त पाण्डेय, श्री गौरीशंकर त्रिवेदी, श्री ज्ञानेन्द्र पथिक, श्री रामनारायण, श्री गोपीकृष्ण तिवारी का नाम प्रमुख है।

प्रभाः—प्रभा का प्रकाशन पहले खण्डवा से होता था। सन् १६१७ में कानपुर से निकलने लगी। इसका सम्पादन श्री गणेश शंकर विद्यार्थी और देवदत्त शर्मा बी० ए० करते थे। गणेश जी के जेल चले जाने पर पं० श्री कृष्णदत्त पालीवाल इसके सम्पादक हुए। पालीवाल जी के बाद पं० माखनलाल चतुर्वेदी और फिर अक्टूबर १६२३ से पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' सम्पादन करने लगे। 'प्रभा' का झंडा अंक

नवीन जी के सम्पादकत्व में ही निकला था। प्रभा प्रमुख रूप से राजनीतिक मासिक पत्रिका थी। किन्तु साहित्य के क्षेत्र में भी उसकी देन कम नहीं है। प्रभा के द्वारा हिन्दी कविता को नया स्वर मिला। गीत काव्य को व्यापक और राष्ट्रीय भावनाओं की मधुरतम अभिव्यक्ति 'प्रभा' के कवियों की हिन्दी के नवयुग को विशेष देन है। प्रभा के कवियों में पं० माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामनरेश त्रिपाठी, निराला, रामनाथ 'सुमन' जगमोहन 'विकसित', उदयशंकर भट्ट, गोकुलचन्द शर्मा, तथा लेखकों में श्री प्रसादीलाल झा, हरनारायण बाथम, जयचन्द्र विद्यालङ्कार, गोपाल दामोदर तामस्कर, प्राणनाथ विद्यालङ्कार, कौशिक जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कौशिक जी की संसार की स्त्रियों पर एक सचित्र लेखमाला भी प्रभा में छपी थी। प्रभा में सभी तरह के ज्ञान-विज्ञान कला साहित्य आदि विषयों पर गम्भीर सामग्री प्रकाशित होती थी। राजनीतिक पत्रिका होने के नाते उसमें विदेश सम्बन्धी समाचार तथा आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक विषयों पर तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिखे गये महत्वपूर्ण लेख छपा करते थे।

प्रभा के अग्रलेख और टिप्पणियाँ अपने युग के महत्वपूर्ण विचारों की द्योतक हैं। राजनीति, साहित्य आदि विषयों की निष्पक्ष आलोचना भी प्रभा की विशेषता थी। बृटिश राज्य के विरुद्ध लिखने में प्रभा का पक्ष कभी कमजोर नहीं हुआ। विदेशी शासकों के विरुद्ध आग उगलने के अतिरिक्त, देशी राजाओं के भी नृशंसतापूर्ण व्यवहार और प्रजा पर होने वाले अत्याचारों का सचित्र वर्णन इसमें छपता था। विजोलिया (उदयपुर) राज्य की नीचतापूर्ण दण्ड प्रथा का सचित्र भण्डाफोड़ इसमें किया गया था। जुलाई १६२० के अङ्क में किसानों का एक पैर काठ में फंसा कर कोड़े लगाने, और छाती पर पैर रख कर सिपाहियों के अमानवी व्यवहारों के चित्र प्रकाशित कर, लगातार होने वाले देशी राजाओं के नीचतापूर्ण कृत्यों का

पर्दाफाश किया गया था। प्रभा उग्र राजनीतिक विचारों का प्रतिनिधित्व करती थी। जुलाई १६२० के अङ्क में 'हण्टर कमेटी' की रिपोर्ट पर जो सम्पादकीय लिखा गया, उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। इससे प्रभा के राजनैतिक रूप की झाँकी मिल जाती है—

"हण्टर कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हो गयी है, रिपोर्ट क्या प्रकाशित हो गई है व्यथित भारत के घायल हृदय पर नमक छिड़का गया है। रिपोर्ट में अधिकारियों की कलंक कालिमा पर सफेदी करने का भरसक प्रयत्न किया गया है।.........विगत नरम कान्फ्रेंस की स्वागत कारिणी समिति में सर बी० सी० मित्र और डा० सप्रू लार्ड हण्टर की न्यायप्रियता की दुहाई देते थे। तथापि हमें लार्ड हण्टर की कमेटी से न्याय की कोई आशा न थी।.........इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि उपद्रवों का निकटस्थ मुख्य कारण डा० किचलू और डा० सत्यपाल का निर्वासन तथा महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी है। अतः उसका सारा दोष नौकरशाही के ऊपर है। डा० किचलू और डा० सत्यपाल क्यों निर्वासित किये गये? उनका क्या दोष था?

हण्टर कमेटी का निर्णय एक तरफा है। उसमें जातिजनों और अधिकारी वर्ग का पक्षपात कूट-कूट कर भरा है। उन्होंने राजनैतिक उद्देश्यों की वेदी पर न्याय और सत्य की बलि दी है। भारतवासी इस निर्णय को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

मिस्टर माण्टेगू यह भली भाँति स्मरण रखें कि भारतवासी बहकाये नहीं जा सकते। हम उनके इस निर्णय से कदापि संतुष्ट नहीं हो सकते। यह सोचना कि डायर को भारतीय नौकरी से प्रथक कर देने से जब कि वह अन्यत्र इससे भी अच्छी नौकरी पा सकता है और कुछ अधिकारियों को फटकार देने से न्याय हो गया, न्याय की हँसी उड़ाना है। भारतीयों के भावों को आघात पहुँचाना है। और अधिकारियों की क्रूरता और मूर्खता को प्रोत्साहित करना है। हम इस निर्णय पर चुप नहीं हो सकते.........।"

इसी प्रकार देश की गरीबी, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के रचनात्मक सुझाव तथा विश्व के अन्य राष्ट्रों के रहन-सहन के आंकडे प्रभा में प्रकाशित हुआ करते थे। प्रभा का झण्डा विशेषाङ्क बड़ा सुन्दर निकला था। इसमें भारत के सभी हिस्सों से गये नागपुर झण्डा सत्याग्रहियों का परिचय, इतिहास और बलिदान की कथा है। चित्रों से सुसज्जित भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की ऐतिहासिक सामग्री के रूप में इस विशेषांक का बड़ा महत्व है। अपने युग की यह श्रेष्ठ पत्रिका आर्थिक कठिनाइयों के कारण चार वर्ष चल कर सन् १६२३ में बन्द हो गई।

संसार—मासिक पत्र के रूप में खन्ना प्रेस के मालिक श्री गोवर्द्धन दास खन्ना ने सन् १६१६ में निकाला। इसके सम्पादक पं० उदयनारायण बाजपेयी और श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा थे। यह राजनीति प्रधान मासिक पत्र था। साहित्यक सेवा भी इसके द्वारा पर्याप्तहुई। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार पं० भगवती प्रसाद बाजपेयीतथा विद्वान साहित्यसेवी पं० सद्गुरुशरण अवस्था 'संसार' की ही देन हैं। यह पत्र भी उग्र राजनीति का समर्थक था। पं० उदयनारायण जी केचले जाने और अरोड़ा जी के जेल चले जाने के पश्चात श्री भगवती प्रसाद बाजपेयी ने कई अङ्कों का सम्पादन किया। आर्थिक कठिनाइयों तथा अरोड़ा जी के अभाव में यह अधिक दिनों तक न चल सका। और ढाई वर्ष तक चलकर सन् १६२१ में बन्द हो गया।

वर्तमान—कानपुर से निकलने वाला पहला दैनिक पत्र है। जो सन् १६२२ विक्रम सम्वत् १६७७ की विजयदशमी से निकल कर हिन्दी दैनिकों की स्थायी परम्परा में योग दे सका। राजनीतिक जागरण की प्रभात वेला और साधनों के अभाव में वर्तमान निकला और ३३ वर्ष से अपने कर्तव्य का निर्वाह करता चला आ रहा है। पं० रमाशङ्कर अवस्थी ने प्रताप से अलग होकर वर्तमान निकाला, और जिस सफलता के साथ चलाया, वह

उनकी संगठन शक्ति व लेखनी के प्रभाव का परिचायक है। अवस्थी जी एक सफल पत्रकार हैं। उनकी विशेषताओं का पूर्ण लाभ वर्तमान को मिला। अवस्थी जी ने पत्रकारिता की शिक्षा दीक्षा गणेश जी के निकट रहकर प्राप्त की। वर्तमान के द्वारा उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया। अवस्थी जी के सम्पादन की भी अपनी एक निश्चित शैली है। हिन्दी के दैनिक पत्रों में मधुर हास्य व्यंग्यात्मक शैली के जन्मदाता अवस्थी जी हैं।

भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म का प्रबल पोषक होते हुए भी राष्ट्रीय प्रगति और स्वातंत्र्य आन्दोलन में वर्तमान का बड़ा भारी हाथ रहा है। स्वाधीनता संग्राम में मनोरंजन के द्वारा श्री रमाशंकर अवस्थी ने सर्व साधारण में क्रांतिकारी विचारों का प्रचार किया। हिन्दी दैनिकों में मनोरंजन की परिपाटी सफलता पूर्वक चलाने का श्रेय वर्तमान को है। इसका मनोरंजन पढ़ने के लिये प्रतिदिन पाठकों की आंखें लगी रहती थीं। अवस्थी जी का मनोरंजन बड़ा ही शिष्ट तथा हास्य और व्यंग्य पूर्ण होता है। तीखे व्यंग्य रोचक शैली के द्वारा इतने मधुर बन जाते, जिस पर विरोधी भी लट्टू हो जाय। उद्योग प्रधान नगर कानपुर में अवस्थी जी ने वर्तमान को सफलता के साथ चलाया। साधन कम होते हुये भी वर्तमान की सफाई, छपाई, सम्पादन अच्छे ढंग से होता रहा। सुरुचि पूर्ण तथा प्रभा-वोत्पादक सामग्री का प्रकाशन वर्तमान की विशेषता है। छोटे से छोटे समाचार को रोचक और प्रभावशाली बनाकर पाठकों के सामने रखना वर्तमान की हिन्दी पत्रकारिता को देन है। राष्ट्रीय कविताओं का प्रकाशन वर्तमान में बराबर हुआ करता था। कविताओं के अतिरिक्त नाटक, प्रहसन, कहानी, लेख, बराबर छपा करते थे। अवस्थी जी ने वर्तमान के माध्यम से हिन्दी को कई अच्छी प्रतिभाएँ दीं। वर्तमान के सहयोगियों में श्री रामलाल पाण्डेय, विशम्भरनाथ जिज्जा, पं० दुर्गादत्त पाण्डे, छैलबिहारी दीक्षित कंटक, ब्रजबिहारी अवस्थी, विष्णुदत्त

तरंगी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बीच में कुछ दिन दैनिक बन्द हो जाने से यह साप्ताहिक भी निकला। श्री भगवानदीन त्रिपाठी इसके सम्पादक और संचालक श्री अवस्थी जी हैं

रामराज्य—का प्रकाशन राजनीति, सहित्य, संस्कृति को लक्ष्य रखकर सन् १९४२ को वि जयदशमी से हुआ। बारहवर्ष से यह पत्र अपनी निर्भीक एवं स्वतंत्र विचारधारा, निष्पक्ष आलोचना और जनकल्याण-कारी नीति के कारण सर्वसाधारण मे प्रिय रहा है। प्रलोभन और स्वार्थों की भयंकर आंधियों के बीच श्रम जीवी पत्रों का प्रतीक स्वरूप रामराज्य बिना झुके अब तक निकलता जा रहा है। स्वाधीनता के संघर्ष में उसने सक्रिय भाग लिया। राजनीति और साहित्य के स्वर में निरन्तर परिष्कार और सभी क्षेत्रों में स्वस्थ वातावरण के निर्माण के लिये लड़ना इसने अपना कर्तव्य समझा। सामाजिक कुरीतियों तथा धर्मिक पोंगापन्थियों के विरुद्ध डट कर मोर्चा लेने और जनवाणी का प्रतिनिधित्व करने के कारण इस पत्र को जन्म से ही प्रतिक्रियावादी शक्तियों से लड़ना पड़ा। रामराज्य का पत्रकार अंक पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में निकला था यह विशेषाङ्क हिन्दी जगत की स्थायी निधि तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐतिहासिक कदम के रूप मे प्रसिद्ध है।

प्रारंभ में श्री राघवेन्द्र इसके सम्पादक थे। थोड़े ही दिनों बाद श्री रामनाथ गुप्त भी इसके सम्पादकों मे शामिल हो गये। श्री राघवेन्द्र के प्रथक हो जाने पर श्री रामनाथगुप्त अकेले ही सम्पादन करने लगे। लगभग चार वर्षों से इसके सम्पादक रामनाथ गुप्त और नरेशचन्द्र चतुर्वेदी हैं।

सुमित्रा—स्टार प्रेस के द्वारा श्री देवीप्रसाद धवन के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुई। यह कहानी प्रधान मासिक पत्रिका थी। हिन्दी की अनेक मासिक पत्रिकाओं में इसकी सफाई, छपाई, सामग्री

आदि आकर्षण की वस्तु थी। श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी इसके सहायक थे। धवन जी के अलग होने पर श्री विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी के सम्पादन में सफलता पूर्वक यह सन् १६५३ तक चल कर बन्द हो गई। सुमित्रा के द्वारा श्री विट्ठल जी नें काफी ठास सामग्री प्रस्तुत की। विट्ठलजी के सम्पादकत्व में सुमित्रा, कहानी प्रधान न रह कर साहित्य, संस्कृति की प्रमुख पत्रिका बन गई थी। इसमें भारत की प्रादेशिक तथा विदेशी भाषाओं का साहित्य भी अनुवादित होकर बराबर प्रकाशित होता था। भारतीय संस्कृत से सम्बन्धित विषयों पर इसके द्वारा अच्छा प्रकाश डाला गया। विशेषतः अरविन्द साहित्य और दर्शन पर उल्लेखनीय काम किया। सुमित्रा साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका थी। इसके कई विशेषांक बड़े अच्छे निकले। इनमें कौशिक स्मृति अंक, प्रसाद अंक तथा साहित्यांक, महत्व-पूर्ण हैं। प्रसाद अंक का श्री वाचस्पति पाठक ने और साहित्यांक का सम्पादन पं० बनारसी दास चतुर्वेदी ने किया। श्री विट्ठल नें सुमित्रा के द्वारा एकलेखक मण्डल तैयार किया था जिसमें हिन्दी तथा हिन्दी तर प्रदेशों के साहित्यकार शामिल थे। सुमित्रा की लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ कर देश के कोने कोने तक पहुँच रही थी और उससे हिन्दी के विकास में बड़ी आशा की जाने लगी थी। किन्तु संचालकों में साहित्यानुराग न होने से इस अच्छी पत्रिका को बन्द हो जाना पड़ा।

स्त्री दर्पण—श्री परशुराम मेहरोत्रा ने सन् १६२३ में निकाली। ये पत्रिका सन् १६३० तक चली। यह सत् साहित्य तथा पारिवारिक सुरुचि वृद्धि करने वाली पत्रिका थी।

कादम्बरी—द्विमासिक पत्रिका थी। सन् १६२७ में निकली और १६२८ तक चली। इसके संपादक पं० रामाज्ञाद्विवेदी 'समीर' थे। स्वर्गीय पूर्ण जी की स्मृति में निकली थी

धूप छाँह—जुलाई १६४८ से प्रकाशित होकर लगभग ढ़ाई वर्ष चल कर बन्द हो गई। यह कहानी प्रधान मासिक पत्रिका थी। इसके संचालक संपादक श्री बालमुकुन्द गुप्त थे।

उपर्युक्त पत्रों में अतिरिक्त कानपुर से प्रकाशित होकर बन्द हो जाने वाले पत्रपत्रिकाओं में दैनिक 'भारतोदय' (१८८५) 'भारतेन्दु' (१८८५) 'कानपुर गजट' (१९१३) 'लोकमत' (१९२०) 'मातृभूमि' (१९२२) 'विक्रम' (१९२३)

अर्द्ध साप्ताहिक—परिवर्तन (१९२२) नवयुग (१९२५)

साप्ताहिक—वेदप्रकाश (१८८४,) जीवन (१९१३) कानपुर समाचार (१९१८,) भविष्य (१९२४,) शंखनाद, सहयोगी, नव निर्माण, निर्माण, कानपुर समाचार, नागरिक, किसान, जयभारत, साथी।

पाक्षिक—राष्ट्रीय अध्यापक (१९२१) कानपुर म्युनिसिपल गजट (१९२२) किसान (१९२४)

मासिक—भारत भूषण (१८८४) भारत चन्द्रोदय (१८८५-१८९४) भारत वर्ष (१८८८-१८९४) गोधर्म प्रकाश (१८९०) बनिता हितैषी (१८९३) प्रेम पत्रिका, सुधासागर, सनातन धर्म पताका (१८९८) रसिकपत्रिका, रसिकमित्र, रसिकवाटिका, रसिकलहरी (१९०३) मित्र (१९०३) सुधासागर (१९०६) जीवन (१९११) धर्म कुसुमाकर (१९११) स्त्री शिक्षा (१९१३-१९१४) व्यापारी (१९१५,) प्रभात (१९१६) चिकित्सक (१९१७) सचिव (१९१८) रसिक शिरोमणि (१९१८) सौदागर (१९२१) धर्मप्रकाश (१९२१) मार्तण्ड (१९२२) हिन्दी ला जर्नल (१९२२) कपट सखा (१९२२) मस्ताना जोगी, (१९२२) साहित्य सुधार (१९२३) लावण्यता (१९२४) आरोग्य (१९२४) साहित्य (१९२४) साम्यवादी (१९२४) स्वास्थ्य (१९२४) विश्व कर्मा (१९२४) आयुर्वेद केसरी (१९२५) कलाकौशल (१९२५) खद्दर (१९२५) प्रेस बन्धु (१९२५) शिल्प सर्वस्व (१९२५) आधुनिक धन्वन्तरि (१९२४) व्यापार, उर्वशी, मनसुखा, प्रतिमा, अमरज्योति, बालसेवा (१९४८,) सिनेमा (१९४८) आलोक (१९५३) भारती (१९५४) ज्ञान, आदि प्रमुख हैं।

यहाँ से आये दिन दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, पत्र प्रकाशित हो कर अकाल काल कवलित होते रहते हैं। सम्भवतः पं० प्रतापनारायण मिश्र की शापयुक्त भविष्य वाणी का ही प्रभाव हो। चल रहे समाचार पत्रों में दैनिक विश्वमित्र का प्रचार पं० देवदत्त मिश्र और उनके बाद श्री रघुनाथ पाण्डेय'प्रदीप' के सम्पादन तक ठीक रहा। यह पत्र श्री मूलचन्द्र अग्रवाल का है। कानपुर के अतिरिक्त यह कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, व पटना से भी निकलता है। दैनिक जागरण सन् १९४८ से श्री पूर्णचन्द्र गुप्त निकालते हैं। श्री वेनीमाधव वाजपेयी दैनिक वीरभारत कई वर्षो से निकाल रहे हैं। इसका सांध्य संस्करण भी छपता है। कुछ दिन इसका प्रबन्ध बालकृष्ण महेश्वरी ने किया था, उस समय इस पत्र ने साहित्यिक दृष्टि से अच्छा कार्य किया।

कानपुर में हजारों प्रतियाँ बाहर के दैनिक पत्रों की खपती हैं। हिन्दुस्तान, अमृत पत्रिका, नवभारत टाइम्स, नवजीवन, भारत, आज, स्वतंत्र भारत, आदि प्रमुख हैं।

देश के सभी प्रमुख समाचार पत्रों के संवाददाता यहाँ रहते हैं और उनके कई संगठन भी हैं। पत्रकारिता के स्तर को ऊँचा बनाने में यहाँ के प्रमुख पत्रकार अब प्रयत्नशील दिखाई देने लगे हैं। पत्रकला की शिक्षा तथा श्रमजीवी पत्रकारों के संगठनादि में श्री जयदेव गुप्त का कदम आगे रहता है। पत्रकारों की ओर से एक व्याख्यान माला भी चलाई गई थी जिसमें पत्रकला के विभिन्न अंगों पर अधिकृत पत्रकारों के व्याख्यान हुए। अभी कानपुर को पत्रकारिता की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ना है।

लेखक

लेख, निबंध और प्रबंध

व्याख्या—लेख, निबन्ध और प्रबन्ध गद्य रचनाओं के लिये बहु-प्रचलित शब्द हैं। इनमें निबन्ध शब्द का अर्थ आज एक विशिष्ट प्रकार की गद्य रचना के लिए किया जाता है। अंग्रेजी essay और article के लिये हिन्दी में निबन्ध और लेख, और treatise के लिए प्रबन्ध शब्द का प्रयोग होता है।

किसी भी विषय पर प्रकट किये गये लिखित विचारों को लेख कहा जाता है। लेख का सम्बन्ध उपयोगी साहित्य से भी है और शक्ति सम्पन साहित्य से भी। लेख की सीमा अधिक विस्तृत है, वह किसी भी विषय, किसी भी वस्तु एवं किसी भी शैली में लिखा जा सकता है।

निबन्ध का क्षेत्र भी कम व्यापक नहीं है, परन्तु रूप और शिल्प के अनुसार निबन्ध को शुद्ध रूप से साहित्य के शक्ति सम्पन्न धारा के अन्तर्गत् लिया जाता है। निबन्ध लिखने की कुछ सीमाएँ हैं। निबन्ध हलके भी हो सकते हैं, और गम्भीर भी। भाव प्रधान हो सकते हैं, और वर्णन प्रधान भी।

लेख, निबन्ध और प्रबन्ध के शाब्दिक अर्थ के अनुसार 'लिखा हुआ' लेख, 'गठा या कसा हुआ' निबन्ध और व्यवस्थिति गद्य रचना को 'प्रबन्ध' कहना उपयुक्त है। लेख का जो शाब्दिक अर्थ है वही उसका तात्विक भी। निबन्ध और प्रबन्ध दोनों ही समानार्थी माने जाते हैं। उपर्युक्त तीनों ही शब्दों का प्रयोग कभी-कभी प्रायः एक ही रचना के लिए होता दिखाई देता है। हिन्दी गद्य के विकास ने प्रचलित व्याख्याओं में अन्तर पैदा कर दिया है। आजकल गम्भीर साहित्यिक

रचनाओं को निबन्ध, बड़ी रचनाओं को प्रबन्ध तथा साधारण या गम्भीर सभी प्रकार की लिखित रचनाओं को लेख कहा जाता है।

संस्कृत और अंग्रेजी में जो सीमा इन शब्दों की निर्धारित की गई है हिन्दी में ठीक उसी प्रकार की स्थिति नहीं है। अतः हमें अपने शब्दों के अर्थ को दृष्टि में रखकर विभाजन करना पड़ेगा। किसी भी विषय पर लिखित रूप से विचार, परिचय तथा समाचार पत्र के अग्रलेखोंको लेख के अन्तर्गत रखा जाता है, जो ठीक ही है। निबन्ध शब्द में गुरुता है और शाब्दिक अर्थ भी उसका बँधा या कसा हुआ है, अतः निबन्ध के अन्तर्गत सुगठित शैली में प्रकट किये गये स्पष्ट विचार तथा विवेचनपूर्ण साहित्यिक शक्ति रखने वाली रचनाएँ रखी जानी चाहिए। यद्यपि प्रबन्ध शब्द का अर्थ और उसका क्षेत्र निबन्ध से अलग नहीं है, परन्तु हिन्दी में प्रबन्ध शब्द का अर्थ व्यवस्था है, और व्यवस्था किसी बड़ी चीज की ही होती है। अतः प्रबन्ध के अन्तर्गत थीसिस जैसी बड़ी गद्य रचनाओं को लिया जाना उपयुक्त होगा, जिनमें प्रतिपादित विषय की अनेकता और मतव्यापकता के अतिरिक्त अन्य मतों की समीक्षा और समावेश होता है। प्रबन्ध शब्द का प्रयोग बड़ी साहित्यिक रचनाओं के लिए होता भी है। उदाहरणार्थ महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य। मैं समझता हूँ कि लेख, निबन्ध और प्रबन्ध के लिए अंग्रेजी article, essay और treatise की अनुकरण प्रवृत्ति को छोड़ कर उपर्युक्त सुझावों के आधार पर लेख, निबन्ध, प्रबन्ध की व्याख्या तर्क संगत एवं स्पष्ट रूप से की जा सकती है। पुराने अर्थों की संकुचित सीमा में विचरण करते हुए हम आज के हिन्दी गद्य साहित्य के विभिन्न रूपों की व्याख्या नहीं कर सकते।

विकास क्रम और शैली—पं० प्रतापनरायन मिश्र जी ने गद्य साहित्य के बहुमुखी विकास में अत्यधिक योग दिया है। मिश्र जी के द्वारा निबन्ध लेखन की विशिष्ट शैली तो हिन्दी को मिली ही, विषय की दृष्टि से भी उनका महत्वपूर्ण कार्य यह है, कि छोटे से छोटे विषयों पर

लिखकर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि यदि लेखक में प्रतिभा है, तो किसी भी विषय पर लिख कर, सफलता मिल सकती है। मिश्र जी ने हिन्दी गद्य को सरल बनाने में महत्वपूर्ण योग देने के अतिरिक्त मस्तानी शैली में बाँकपन का पुट देकर अपना स्थान सबसे अलग बना लिया है। सरलता की दृष्टि से उनके पूर्व इंशा अल्ला खां, राजा शिवप्रसाद और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाम प्रमुख है। इंशा की सरलता और फड़कन में दरबारी माधकता है तो राजा शिवप्रसाद में हिन्दी भाषा के प्रकृति विरोधी तत्वों का अत्यधिक समावेश हुआ है। भारतेन्दु जी ही माधु शैली के सृष्टा हैं। यद्यपि हास्य व व्यंग्य का पुट भी भारतेन्दु जी ने अपनी रचनाओं में दिया परन्तु घरेलूपन व बाँकपन का गुण मिश्र जी में ही अधिक स्पष्ट हुआ। मिश्र जी की हास्य व्यंग्यात्मक शैली प्रायः सभी परवर्ती लेखकों ने अपनायी और उसे अपनी विशेषताओं में रंगकर आगे बढ़ाया। ऐसे साहित्य मनीषियों में बा० बालमुकन्द गुप्त और पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का नाम प्रमुख है। कानपुर के गद्य लेखकों में कई लोगों ने मिश्र जी की शैली अपना कर हिन्दी की व्यंजना शक्ति को बढ़ाने में योग दिया है। ऐसे लोगों में श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा, पं० रमाशंकर अवस्थी, पं० विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' और पं० दुर्गादत्त पाण्डेय का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। 'कौशिक' जी के द्वारा बिजयानन्द दुबे के नाम से. लिखित दुबे'जी की चिट्ठियाँ, पं० रमाशंकर अवस्थी का मनसुखा के नाम से और पं दुर्गादत्त पाण्डेय द्वारा बेढब राम के नाम से लिखित गद्य रचनाएँ हिन्दी संसार में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। श्री भगवती चरण वर्मा की 'दो बाँके' तथा 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसी कहानियाँ, श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव द्वारा लिखित 'छब्बे जी का खरीता' तथा श्री देवीप्रसाद धवन का 'अरोड़ाजीका ब्याह' आदि रचनाओं में मिश्र जी की शैली का चरम विकास दिखाई देता है। पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भी जब तब अपने लेखों के शीर्षकों में मिश्र जी जैसी अलमस्ती का दर्शन करा देते

हैं। यथा—'बाँध के' "सूचासिंह जी सावधान", "हम घर साजन आये हो", आदि

मिश्रजी के पश्चात् हिन्दी गद्य को सरल, गम्भीर; परिष्कृत और परिमार्जित करने वाला व्यक्तित्व आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का है। द्विवेदीजी ने हिन्दी गद्य के हल्केपन को तथा व्याकरण सम्बन्धी दोषों को बहुत बड़े अंश में दूर किया। विभिन्न विषयों की ओर हिन्दी गद्य को मोड़ा और आगे बढ़ाया। यद्यपि द्विवेदीजी ने हिन्दी गद्य को अत्यधिक शक्तिशाली बनाया किन्तु द्विवेदीजी के गद्य में घरेलूपन, बेतकल्लुफी और स्वछन्दता का प्रभाव घटकर नागरिकता की सादगी, आचार्यत्व की गुरुता, पांडित्य की विशदता व इन सब के कारण उत्पन्न होने वाली मन्थरता को प्रश्रय मिला। द्विवेदीजी के अतिरिक्त एक दूसरी शैली बाबू बालमुकुन्द गुप्त के द्वारा प्रचारित हो रही थी, उसका भी महत्व कम नहीं है। सच तो यह है कि द्विवेदी युग में कई उत्कृष्ट शैलियों का जन्म एवं विकास हुआ।

जनपदीयता और उर्दू से प्रभावित शैली के प्रतिनिधियों में इंशा, राजा शिवप्रसाद, मिश्रजी, बालमुकुन्द गुप्त, देवकीनन्दन खत्री व प्रेमचन्द इसी धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरी शैली जो संस्कृत का आधार ग्रहण करके, हिन्दी की सरलता की रक्षा करती थी। उसके श्री सदल मिश्र, भारतेन्दुजी, स्वामी दयानन्द, बा० श्यामसुन्दरदास व आचार्य द्विवेदीजी का नाम आता है। यह शैली विकसित होकर पं० रामचन्द्र शुक्ल में अपनी चरमता को पहुँची। एक तीसरी शैली संस्कृत गर्भित होने के कारण शक्तिशाली किन्तु बोझिल थी, इसके उन्नायकों में पं० बालकृष्ण भट्ट, भीमसेन शर्मा, पं० गोविन्दनरायण मिश्र थे।

कानपुर में मिश्रजी द्वारा जन्मी शैली के अतिरिक्त आचार्य द्विवेदी द्वारा प्रचारित शैली का प्रयोग जो अनेकानेक प्रतिभासम्पन्न लोग

करते रहे हैं उनमें पं० उदयनारायण वाजपेयी, पं० देवीप्रसाद शुक्ल, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी, प्रो० शिवाधार पाण्डेय, पं० मुंशीराम शर्मा, पं० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, पं० रमाकान्त त्रिपाठी, पं० विष्णुदत्त शुक्ल का नाम प्रमुख है। पं० किशोरीदास वाजपेयी का नाम भी इसी धारा के अन्तर्गत लिया जा सकता है किन्तु वाजपेयीजी की शैली द्विवेदीजी से निकट होते हुये भी कुछ अपनी विशेषता रखती है। इसी प्रकार श्री गणेशशंकरजी की शैली का अपना विशेष स्थान है। गणेश जी व वाजपेयीजी दोनों ही अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुसार शैली निर्माता हैं। गणेशजी की शैली एक नेता की ओजमयी वक्तृता जैसी है जिसमें ओज, सरलता, प्रवाह व तीव्र आकर्षण शक्ति है। वाजपेयीजी वैयाकरण व भाषाविद् हैं, अतः उनकी शैली में प्रवाह के साथ गुरुता भी है और व्यंग में परशु की तीखी धार भी दिखाई देती है। कानपुर के संस्कृत गर्भित लेखकों में पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और आचार्य सद्गुरुशरण अवस्थी का नाम सर्वोपरि है।

कानपुर के गद्य लेखकों ने हिन्दी गद्य की समस्त प्रचलित शैलियों व विषयों को अपनाया है। विशेषतः राष्ट्रीय साहित्य के निर्माण में कानपुर सब से आगे है। राष्ट्रीय आन्दोलन, समाज सुधार, देश के जागरण व संग्राम सम्बन्धी कार्यों में कानपुर के गद्य लेखकों का ऊँचा स्थान है।

प्रताप नारायण मिश्र (१९१३-१९५१)—मिश्र जी का जन्म आश्विन कृष्ण ६ सम्वत् १९१३ को उन्नाव जिले के बैजेगांव में कान्यकुब्ज ब्राह्मण तथा प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० संकटा प्रसाद मिश्र के घर में हुआ था। शैशवकाल में ही कानपुर के नौघड़ा मुहल्ले में अपने पिता के पास आकर रहने लगे थे। पिताजी की इच्छा इन्हें ज्योतिष पढ़ाने की थी। मगर मनमौजी स्वभाव के कारण इनकी रुचि उस ओर नहीं लगी। आनन्द और अक्खड़ता के साथ आलस्य भी इनमें कम न था। फक्कड़-पन इनकी नस-नस में भरा था। मिश्रजी का जीवन एक रोचक उपन्यास

की तरह का था। अपना जीवन चरित लिखना भी इन्होंने शुरू किया था, परन्तु अकाल काल कवलित हो जाने से उसे पूरा नहीं कर सके और अपने पूर्वजों का वृत्तांत मात्र ही लिखकर ब्राह्मण में छाप सके।

पुस्तकें घोंटना इन्हें बिल्कुल नहीं रुचता था। कलाकार वे जन्म से ही थे। मिश्र जी की प्रतिभा चतुर्मुखी और विलक्षण थी। इनके निकटवर्ती तथा प्रियपात्र बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने सन् १९०७ में भारतमित्र में मिश्र जी का चरित लिखकर प्रकाशित किया था। उनके शब्दों में:—"पण्डित प्रतापनारायण मिश्र में बहुत बातें बाबू हरिश्चन्द्र की सी थीं। कितनी ही बातों में यह उनके बराबर और कितनी ही में कम थे, पर एक आध में बढ़कर भी थे। जिस गुण में वह कितनी ही बार हरिश्चन्द्र के बराबर हो जाते थे, वह उनकी काव्यत्व शक्ति और सुन्दर भाषा लिखने की शैली था। हिन्दी गद्य और पद्य के लिखने में हरिश्चन्द्र जैसे तेज, तीखे और बेधड़क थे, प्रतापनारायण भी वैसे ही थे। ...पिता से प्रताप कुछ दिन शीघ्रबोध और मुहूर्तचिन्तामणि पढ़ते रहे। पर इन पोथियों में प्रताप जी का मन न लगा, तब वह अंग्रेजी स्कूल में दाखिल किये गये। वहाँ उन्होंने कुछ सीखा जरूर पर केवल मेधा के प्रताप से। पढ़ने में परिश्रम उन्होंने कभी न किया और न कभी जी लगा कर पढ़ा। इसीसे उनकी पढ़ाई सब प्रकार अधूरी रही, तिस पर भी वह अंग्रेजी खासी बोल सकते थे। आध-आध घण्टा, घण्टा-घण्टा बराबर अंग्रेजी में बातें किये जाते थे, अंग्रेजी अखबार पढ़ लेते थे, कभी इच्छा करते तो कुछ अनुवाद भी कर लेते थे, पर बड़ी अनिच्छा से। अंग्रेजी पोथियों और अखबारों के पढ़ने में वह जरा मन न लगाते थे। कोई इसके लिये दबाता था तो भी परवाह न करते थे। मुँह बना के कागज या पोथी फेंक देते थे। यदि वह साल दो साल जी लगाकर अंग्रेजी पोथियाँ या अखबार पढ़ते तो अच्छे अंग्रेजी पढ़ों में उनकी गिनती होती। यही हाल उनकी संस्कृत का था। छः छः और आठ-आठ साल से जो विद्यार्थी कौमुदी रटते थे अथवा जिन पण्डितों को कथा कहते युग बीत गये थे,

उनके साथ हमने प्रतापनारायण जी को बातें करते देखा है। यह उनसे कुछ जल्दी बोलते थे और अच्छा बोलते थे पर रुचि आपकी संस्कृत पुस्तकों में भी वैसी ही थी जैसी अंग्रेजी पुस्तकों में।

उर्दू में भी वह बन्द न थे। उर्दू में उनकी बहुत सी कविता मौजूद है। ग़ज़लें लिखते थे, लावनियाँ लिखते थे, मसनवी लिखते थे। उर्दू में उनका एक छोटा सा दीवान भी देखा था। फारसी ग़ज़लों पर अपने उर्दू मिसरे लगाकर उनसे मुखम्मस वगैरह बनाते थे।...उर्दू में कविता करते थे और फारसी में भी कभी कभी कुछ कह लेते थे। फारसी की कई कविताओं का उन्होंने हिंदी अनुवाद किया है। इस प्रकार के अनुवाद बहुधा दिल्लगी के लिये करते थे।...जिस समय हमने उनको देखा उस समय उनकी शारीरिक अवस्था अच्छी न थी; बड़े कमजोर थे। इससे लेटे लेटे ही पढ़ा करते थे और लेटे लेटे ही लिखा करते थे। बैठ कर लिखने पढ़ने की शक्ति उनमें कम थी। उनके अक्षर एक विशेष सूरत शकल के थे। पंक्तियाँ सीधी नहीं लिख सकते थे। टेढ़ी भी यहाँ तक लिखते थे कि दो दो अढ़ाई-अढ़ाई अंगुल का फासिला पड़ता था और फिर उसके नीचे टेढ़ी टेढ़ी पंक्तियाँ लिखे चले जाते थे। उर्दू, हिंदी में ऐसा अधिक करते थे अंग्रेजी में कम! उर्दू में भी उनको अच्छे लेख लिखने की शक्ति थी। भारतप्रताप में उनके कई उर्दू लेख छपे थे, जो एक दम उर्दू ढंग पर थे।"[1]

मिश्रजी में मसखरापन बहुत था; आये दिन वे कुछ न कुछ ऐसे काम करते, जिनसे मनोरंजन के अतिरिक्त उनकी विलक्षणता का परिचय मिलता है। निर्भीकता, दबंगपन और मौजीपन उनकी हर बात में रहता था। मिश्र जी की अनेक मजेदार घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। एक दिन जनरलगंज में एक ईसाई पादरी भाषण दे रहा था। पादरी ने हिंदुओं को सम्बोधित करते हुए कहा, कि गाय तुम्हारी माता है तो बैल तुम्हारा

१—गुप्त निबंधावली पृष्ठ २—१२

पिता हुआ मगर मैंने बैल को नाली का पानी पीते हुये देखा है। इसके उत्तर में प्रतापनारायण जी, जो भीड़ में ही खड़े थे, तत्काल बोले—वह ईसाई हो गया होगा। जवाब सुनकर श्रोता हंस पड़े और पादरी महोदय झेंप कर भाग खड़े हुये। बन्द इक्कों पर बैठकर मेलों में शरीक होना तथा कान पर हाथ रखकर चौराहे पर ख्याल गाने में वे हिचकते नहीं थे। विद्वान और विख्यात होते हुए भी कृत्रिम गम्भीरता के वे शिकार नहीं हुये। प्रदर्शन से उन्हें चिढ़ थी। देहातीपन में उन्हें आनन्द मिलता था। सादगी और स्वदेश प्रेम तथा हिंदी प्रेम तो उनके रोम रोम में व्याप्त था। एक बार सूट-बूट धारी सज्जन उनसे मिलने आये। मिश्रजी अपनी मित्रमंडली में बैठे थे। आगन्तुक ने कहा हम पंडित प्रतापनारायण मिश्र से मिलना चाहते हैं। मिश्र जी ने उन सज्जन से देहाती बोली में कहा भाई उनसे मिलै की खातिर पन्द्रह रुपैया का एकु टिकट लेइ का परत है तब उइ मिलति हैं।

मिश्रजी अभिनय के बड़ प्रेमी थे। अभिनय करने के लिये मूँछे मुड़वाने की आज्ञा भी एक बार अपने पिता से इन्होंने ली थी। अभिनय में भी बड़े मजेदार पार्ट अदा करते थे। एक बार इन्होंने उदू' बीबी का पार्ट अदा किया। उस समय इनके और मुसलमान वेश्या के वेष में कोई अन्तर न था। दर्शकों में बैठी हुई एक प्रसिद्ध वेश्या से 'बुआ सलाम' कह कर इन्होंनें सलाम किया तो वह सहसा बोल उठी 'बेटी जीती रह'। अभिनय में एक मित्र के द्वारा अपने ऊपर किये गये इस व्यंग परः—

"कहाँ गई मेरी नास की पुड़िया कहाँ गई मेरी बोतल
उसको पीकर ऐसे नाचूँ जैसे टट्टू कोतल"

का उत्तर मल्लाह बन कर मिश्र जी ने इस प्रकार दिया:—

"खत्री पीवे बाह्मन पीवे पीवे अगगर वाला
हम मल्लाहन पी लई तो हँसेगा क्या कोई साला"

इस प्रकार की नोक-झोंक उनकी जब तब हो जाया करती थी। जब मौज होती तब सभाओं में व्याख्यान देते हुए इलायची के तेल से भीगा रूमाल साथ ले जाते, और मार्मिक बात कह कर आँखों से रूमाल लगा कर रोने लगते। इससे श्रोता वर्ग की करुणा फूट पड़ती थी। सादगी उनमें इस क़दर थी, कि एक बार जब ईश्वरचन्द विद्यासागर उनसे मिलने नौघड़ा के निवास स्थान पर आये, तो कागज से स्थान झाड़ कर उन्हें बैठाया और दो पैसे के पेड़े मँगा कर जलपान कराया। यद्यपि मिश्र जी बड़े पुर मज़ाक वाले थे। मगर उनमें गम्भीरता की भी कमी नहीं थी। कृत्रिम गम्भीरता उनके पास नहीं थी, मगर उनके हृदय और मन में कर्तव्य की शक्ति विद्यमान थी; जिससे उनकी सहज गम्भीरता का पता भी मिल जाता है। कन्नौज की गोरक्षा विषयक सभा में उनके भाषण और एक करुणा भरी लावनी जिसकी एक पंक्ति थी:—

"बाँ-बाँ करि तृण दाबि दाँत सों, दुखित पुकारत गाई है।"

सुनकर कन्नौज के मुसलमान कसाइयों ने गोहत्या से तौबा कर ली थी। कांग्रेस तथा अन्य विषयों पर उन्होंने अनेक गम्भीर लेख लिख कर प्रकाशित किये। ब्राडला स्वागत कविता की गम्भीरता और श्रेष्ठता इतनी थी कि उसका बहुत आदर हुआ, तथा इस कविता की समालोचना इग्लैंड तक में हुई।

मिश्र जी अपने को प्रेम धर्म का उपासक और ईश्वरावलम्बित लिखा करते थे। प्रेम में वे इतने मगन थे कि उसके अतिरिक्त सारी दुनियाँ उन्हें झमेला लगती थी।

कानपुर में नाटक सभा का संगठन करके मिश्र जी ने कई नाटक प्रदर्शित किये और लिखे। वयोवृद्ध कविवर वचनेश मिश्र, (जो काला काँकर के राजकवि रहे हैं) से मालूम हुआ, कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का सत्यहरिश्चन्द्र नाटक, बाबू रामदीन सिंह के प्रयत्न से बाँकीपुर में प्रदर्शित किया गया था। जिसमें भारतेन्दु जी ने राजा हरिश्चन्द्र का

और प्रतापनारायण मिश्र ने रोहिताश्व का अभिनय अत्यन्त सफलता के साथ किया था।

मिश्र जी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और बँगला का अच्छा ज्ञान रखते थे और इन भाषाओं से बहुत से अनुवाद भी उन्होंने हिन्दी में किये। सन् १८८३ में मासिक ब्राह्मण निकाल कर मृत्युपर्यन्त, वे उसके द्वारा हिन्दी साहित्य को विविध विषय से विभूषित कर उसकी श्रीवृद्धि करते रहे।

कविता, निबंध, नाटक, प्रहसन, कहानियाँ उन्होंने लिखीं, तथा बँगला के कई ग्रन्थों का अनुवाद किया। हिन्दी साहित्य के निर्माण में मिश्र जी का स्थान प्रमुख है। मिश्र जी की रचनाएँ जन साधारण को दृष्टि में रख कर रची गई हैं। हिन्दी की हास्य व्यंग्यात्मक शैली के मिश्र जी जन्मदाता हैं। चुटीली भाषा, रोचक वर्णन शैली, मिश्र जी के गद्य की प्रमुख विशेषता है। ऐसा बाँकपन और प्रवाह अब तक चार छः हिन्दी गद्य लेखकों को छोड़ अन्यत्र दर्शन को भी नहीं मिलता। घरेलू ढंग से बात चीत के तौर पर, सरलता के साथ बड़ी से बड़ी चीज सामने रख देना, वे भलीभाँति जानते थे। पाठक के हृदय तक पहुँचने का सीधा और सरल तरीका मिश्र जी ने खोज निकाला था।

मिश्र जी ने छोटे-बड़े ग्रन्थ पचास के लगभग लिखे। जिनमें से अधिकांश 'ब्राह्मण' में क्रमशः प्रकाशित हुए। जो पुस्तकाकार निकले उनके नाम निम्न लिखित हैं। मौलिक रचनाओं में 'प्रेमपुष्पावली', 'मन की लहर' 'दंगल खंड' 'लोकोक्तिशतक' 'तृप्यन्ताम' 'ब्राडला स्वागत' 'शैवसर्वस्व' 'श्रृंगारविलास' 'मानसविनोद' 'प्रतापसंग्रह' 'रसखानशतक' (कवितासंग्रह) तथा 'कलिकौतुक' 'भारत दुर्दशा' (रूपक) 'कलिप्रभाव' 'हठीहमीर' 'गो संकट' (नाटक) तथा जुआरी-खुआरी' (प्रहसन) है। अनूदित ग्रन्थों में 'राजसिंह' 'इन्दिरा' 'राधारानी 'युगलांगुरीय' श्री वंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास, 'चरिताष्टक' बंगाल के

आठ प्रसिद्ध पुरुषों के चरित, पंचामृत, पाँच प्रसिद्ध देवताओं का अभिन्नत्व निरूपण, नितिरत्नावली' बँगला नीति रत्नमाला का अनुवाद, है। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की पुस्तक 'कथा माला और 'वर्ण परिचय' का अनुवाद, 'सेनवंश' सेनवंशी राजाओं का इतिहास, सूबे बंगाल का भूगोल, वर्णमाला, शिशु विज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा आदि पुस्तकें पाठ्य क्रम के लिए लिखी गई थीं। इनके अतिरिक्त संगीत शांकुंतल' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के लिए आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है: "प्रतापनारायण की पुस्तकों में हम उनके संगीत संकुतल को सबसे अच्छा समझते हैं।"

हिन्दी गद्य के निर्माता और एक विशिष्ट शैली के जन्मदाता के रूप में पं० प्रतापनारायण मिश्र का नाम सदैव ही अगली पंक्ति में लिया जाता रहेगा। निबंध साहित्य के तो वे अपने युग के सर्वोत्तम लेखक हैं। मिश्र जी के छोटे-छोटे निबंध आज भी अपनी ताजगी बनाए हुए हैं। मिश्र जी के निबंधों के विषय और शीर्षक भी बड़े बढ़िया हैं। हास्य व्यंग्य शैली के प्रतिनिधि निबंधों में धोखा, परीक्षा, जवानी की सैर, भौं, ट, द, नारी, मुच्छ आदि और गम्भीर शैली के सोने का डंडा और पौड़ा, शिव मूर्ति, पतिव्रता, मनोयोग इत्यादि हैं। मिश्र जी की शैली पत्रकारिता के अध्याय में 'ब्राह्मण' के अंतर्गत दिखा चुके हैं। यहाँ उदाहरणार्थ गद्यांश उद्धृत किया जा रहा है :—

'परीक्षा'

यह तीन अक्षर का शब्द ऐसा भयानक है कि त्रैलोक्य की बुरी बला इसी में भरी है। परमेश्वर न करे इसका सामना किसी को पड़े। महात्मा मसीह ने अपने निज शिष्यों को एक प्रार्थना सिखाई थी जिसको आज भी सब क्रिस्तान पढ़ते हैं उसमें एक यह भी भाव है कि "हमें परीक्षा में न डाल वरंच बुराई से बचा" पर परमेश्वर करे सबकी मुंदी भल मंसी चली जाय नहीं तो उत्तम से उत्तम सोना भी जब परी-

पदार्थ अग्नि पर रक्खा जाता है तो पहिले काँप उठता है फिर उसके यावत परमाणु हैं सब छितर बितर हो जाते हैं यदि कहीं कुछ खोट हुई तौ तो जल जाता है घट जाता है। जब जड़ पदार्थों की यह दशा है तब चैतन्यों का क्या कहना है। हमारे पाठकों में कदाचित ऐसा कोई न होगा जिसने बाल्यावस्था में कहीं पढ़ा न हो। महाशय, उन दिनों का स्मरण कीजिए जब इम्तिहान के थोड़े दिन रह जाते थे क्या सोते जागते उठते बैठते हर घड़ी एक चिन्ता चित्त पर न चढ़ी रहती थी। पहिले से अधिक परिश्रम करते थे तौ भी दिन रात देवी देवता मनाते बीतता था देखिये क्या हो परमेश्वर कुशल करे! सच है यह अवसर ही ऐसा है परीक्षा में ठीक उतरना हर किसी के भाग में नहीं है।"

'ट'

"इस अक्षर में न तो लकार की सी लालित्य है। न दकार की सा दुरूहत्व न मकार का सा ममत्व बोधक गुण है पर विचार के देखिए तो शुद्ध स्वार्थपरता से भरा हुआ है। सूक्ष्म विचार के देखो तो फारस और अरब की ओर के लोग निरे छल के रूप कपट की मूरत नहीं होते। अप्रसन्न होके मरना मारना जानते हैं जबर्दस्त होने पर निर्बलों को मन मानी रीति पर सताना जानते हैं। बड़े प्रसन्न हों तो तन मन धन से सहाय करना जानते हैं। जहाँ और कोई युक्ति न चले वहाँ निरी खुशामद करना जानते हैं। पर अपने रूप में बट्टा न लगने देना और रसाइन के साथ धीरे धीरे हँसा खिला के अपना मतलब गाँठना जो नीति का जीव है उसे बिलकुल नहीं जानते। इतिहास लेके सब बादशाहों का परिचय देख डालिए ऐसा कोई न मिलेगा जिसकी भली व बुरी मनोगति बहुत दिन तक छिपी रह सकी हो यही कारण है कि उनकी वर्णमाला में तवर्ग है ही नहीं। किसी फारसी से टट्टी कहाइए फिर तो वह बीस कोने का मुँह बनायेगा पर कहेगा तत्ती।

'शिवरूप'

'शिर पर गंगा का चिन्ह होने से यह भाव कि गंगा हमारे देश की संसारिक और परमार्थिक सर्वस्व है और भगवान सदा शिव विश्व व्यापी हैं अतः विश्व व्यापी की मूर्ति कल्पना में जगत व सर्वोपरि पदार्थ ही शिरस्थानी कहा जा सकता है दूसरा अर्थ यह है कि पुराणों में गंगा को भगवान विष्णु के चरण से उत्पत्ति माना है शिवमूर्ति और शिव जी को परम वैष्णव कहा है उस परम वैष्णव की पुष्टि इससे उत्तम क्या हो सकती है कि यह उनके चरण निर्गत जल को शिर पर धारण करें। ऐसे ही विष्णु भगवान को परम शैव लिखा है कि भगवान विष्णु नित्य सहस्त्र कमल पुष्पों से सदा शिव की पूजा करते थे एक दिन एक कमल घट गया तो उन्हों ने यह विचार के कि हमारा नाम कमल नयन है अपना नेत्र कमल शिव जी के चरण कमल को अर्पण कर दिया।"

अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी (१८१४—१८७४)—कानपुर जिले के कुन्दौली ग्राम निवासी, सुयोग्य अध्यापक तथा हिंदी प्रेमी के रूप में प्रसिद्ध थे। 'ब्राह्मण' और 'सरस्वती' के प्रचार में आपने सक्रिय भाग लिया। मिडिल स्कूल के प्रधानाध्यापक तथा कुछ दिनों डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स रहे। आपने कई पुस्तकें लिखकर प्रकाशित कराईं। 'पत्र प्रबन्ध मंजरी' नामक पुस्तक के दस संस्करण हुये। इस पुस्तक का प्रचार स्कूलों में ज्यादा हुआ। देश प्रसिद्ध स्वामी भास्करानन्द सरस्वती का जीवन चरित भी गद्य और पद्य में लिख कर इन्होंने प्रकाशित कराया था। आपके तीन सुयोग्य पुत्र श्रीकांत, लक्ष्मीकांत और रमाकांत अपने अपने क्षेत्र के मान्य व्यक्तियों में हैं। श्रीकांत जी डाक्टर के रूप में जिले में प्रिय हैं। पण्डित लक्ष्मीकांत त्रिपाठी और पण्डित रमाकांत त्रिपाठी हिंदी के मान्य विद्वान एवं सुलेखक के रूप में हिंदी संसार में परिचित हैं।

राधामोहन गोकुल जी (१८२२—१८८२)—अग्रवाल सिंहानियाँ परिवार में भदरी राज्य के अन्तर्गत लालगोपालगंज में इनका जन्म हुआ

था। इनके ताऊ कानपुर में रहते थे। अतः ये कानपुर आ गये और जीवन भर कानपुर इनका कार्यक्षेत्र बना रहा। देशभक्त, क्रांतिकारी, समाज सुधारक के रूप में आप देश भर में सुविख्यात थे। हिंदी के अच्छे लेखकों में आपका स्थान था। पं० प्रतापनारायण मिश्र के संपर्क से ये लिखने की ओर मुड़े थे। इनकी शिक्षा फारसी, उर्दू, अंग्रेजी और हिंदी की हुई थीं। इनके विचार बड़े क्रांतिकारी और अग्रगामी थे। पारिवारिक और आर्थिक कठिनाइयों में फँसे रहकर भी, ये कभी अपने उद्देश्य से पीछे नहीं हटे। साम्यवादी विचार तथा साहित्य के लेखन और प्रचार में अपने युग में इनका स्थान प्रमुख था। राजद्रोह में कई बार जेलयात्रा की। क्रांतिकारी कामों में बराबर भाग लेते थे। इनके अगणित लेख, पत्रपत्रिकाओं में बिखरेपड़े हैं। जिन पत्रों में इनके लेख छपते थे उनमें प्रणवीर. मतवाला, मनोरमा, महारथी, नवयुग, माधुरी, सरस्वती, सतयुग आदि प्रमुख हैं। 'प्रणवीर' पत्र इनके सम्पादकत्व में ही नागपुर से निकला था। इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित भी हुईं। इनमें देश का धन, नीति-दर्शन, छंद संग्रह, नेपोलियन, देशभक्तलाजपति, मेजिनी, गेरीबाल्डी, गुरु गोविंदसिंह जी साहब, जर्मनी का अभियान तथा अन्ध विश्वास प्रमुख हैं। कट्टर सुधारवादी और उग्र विचारक होने के कारण आपके लेखों में तर्कयुक्त खंडन शैली का अच्छा परिचय मिलता है। देश में दूर-दूर तक यह घूमे भी थे। प्रगतिशील विचारधारा के लेखकों में इनका स्थान प्रथम और प्रमुख था। आज के अनेक प्रगतिशील आंदोलनों के जन्मदाता तथा क्रांतिकारी विचारों के प्रचारक थे।

कालूराम शास्त्री (१९२५-२००१):—शास्त्री जी का जन्म गौड़ ब्राह्मण पं० नाथूराम शर्मा वैद्य के यहाँ देहली में हुआ था। संस्कृत के पण्डित तथा सनातन धर्म के स्तम्भ थे। आर्य समाज तथा सनातन धर्म के शास्त्रार्थों में भाग लेने वालों में आपका प्रमुख नाम था। पढ़ाई समाप्त करके कानपुर जिले के अमरौधा नामक ग्राम में संस्कृत पढ़ाने के लिए आ गये थे, और फिर वहीं बस गये। संस्कृत साहित्य के प्रचार तथा

सनातन धर्म के प्रचार प्रसार में आपका प्रमुख स्थान है। आर्य समाज के खंडन में और सनातन धर्म के मंडन में शास्त्री जी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। 'हिन्दु' नामक मासिक पत्र भी निकाला था। देश भर में घूम-घूम कर आपने सनातन धर्म का कार्य किया। इनके छोटे-बड़े ग्रन्थों की संख्या लगभग सौ के ऊपर हैं। 'वैदिक सत्यार्थ प्रकाश' सवा चार सौ पृष्ठों का विशाल ग्रन्थ है जिसमें आपने सत्यार्थ प्रकाश के मतों का तर्क-पूर्ण खंडन किया है और सनातन धर्म का पक्ष समर्थन वेद-शास्त्र तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा किया है। शास्त्री जी की शैली कटोर और खंडन-मंडन करने वाले पण्डितों जैसी है। जो उस समय धर्म द्वन्द के कारण पण्डित वर्ग में व्याप्त थी ही।

अमरौधा में ही आपका गोलोक वास हुआ। ग्रामवासियों की आप पर अपार श्रृद्धा थी, अत: शास्त्री जी का स्मारक वहाँ स्थापित किया गया है। शास्त्री जी के द्वारा हिन्दी प्रचार में काफी योग मिला है। उनके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थों में मूर्ति पूजन मीमांसा, अवतार मीमांसा, मूर्ति-पूजा, श्राद्ध निर्णय, नियोग मर्दन, धर्म प्रकाश, आर्य समाज की मौत, निराकार की घुड़दौड़ आदि हैं।

ठाकुर गदाधर सिंह (१९२६-१९७८)—इनका जन्म कानपुर जिले में संचेड़ी ग्राम के निवासी राजपूत चन्देल वंशीय क्षत्रिय, ठाकुर दरियाव सिंह सरदार बहादुर के यहाँ बनारस में अक्टूबर सन् १८६८ में हुआ। भारतीय सेना से इनके परिवार का घनिष्ट सम्बन्ध रहा। इनके पिता ठाकुर दरियाव सिंह सन् १८६४ से १८७८ ई० तक बंगाल की पाँचवी नेटिव इन्फेन्ट्री में रहे तथा अपने दीर्घ कालीन सैनिक जीवन में कई लड़ाइयों में भाग लिया था। ठाकुर गदाधर सिंह दसवीं कक्षा पास करके अपनी सत्रह वर्ष की आयु में पलटन में भरती हो गये। सन् १८८७ में ब्रह्मा की लड़ाई में इन्होंने भाग लिया। सन् १८६४ में १६ वीं राजपूत पलटन में रह कर अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् सन् १८६६ में सातवीं राजपूत पलटन में सूबेदार मेजर के पद पर प्रतिष्ठित

हुये। सन् १६०० में चीन में बाक्सरों के विद्रोह का दमन करने के लिए भेजी गई भारतीय सेना में ये भी अपनी पलटन के साथ गये थे। चीन से लौटने पर फौजी आफिस में काम करते रहे। सन् १६०२ में सप्तम एडवर्ड के तिलक समारोह में इंगलैण्ड जाने वाले भारतीय फौज के प्रति निधियों में ये भी भेजे गये थे। इस प्रकार इन्हें विदेश यात्रा का अच्छा अवसर मिला। हिन्दी के प्रति इनका बड़ा अनुराग था। अपनी दोनों यात्राओं का रोचक वर्णन बड़ी सुन्दर शैली में लिखी गई पुस्तकों में किया है। ये पुस्तकें हैं—'चीन में तेरह मास' (१६०१ में प्रकाशित) 'हमारी एडवर्ड तिलक यात्रा' (सन् १६०३ में प्रकाशित)। हिन्दी में यात्रा साहित्य के प्रथम सबल लेखक ठाकुर गदाधर सिंह ही हैं। हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य का इनका अध्ययन गहन और विस्तृत तथा हिन्दी भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। संस्कृत तथा उर्दू से भी परिचित थे। इनकी बहिन ठकुराइन भाग्यवती देवी गहलौत इन की सहायता से ही 'बनिता हितैषी' नामक मासिक पत्रिका निकालतीं थीं।

ठाकुर साहब रूढ़ियों के विरोधी तथा आधुनिक ज्ञान विज्ञान के समर्थक थे। इतिहास, भूगोल, राजनीति और धर्म के ये पंडित थे। 'चीन में तेरह मास' तथा 'तिलक यात्रा' के अतिरिक्त ठाकुर साहब ने 'रूस जापान की लड़ाई दो भागों में (प्रथम भाग सन् १६०५ में प्रकाशित) तथा 'जापान की राज्य व्यवस्था' 'बुशीडो' 'विलायती रमणी' 'वलायती दम्पति' 'बुद्ध देव दर्शन' 'बुद्ध और शांति परिचय' 'चश्मा चढ़े चक्षु' नामक पुस्तकें लिख कर प्रकाशित कराईं इनकी मृत्यु २५ अक्टूबर सन् १६२० को हुई।

ठाकुर गदाधर सिंह आधुनिक हिन्दी के प्रथम यात्रा साहित्य के लेखक हैं। इनकी भाषा-शैली में गम्भीरता, स्वच्छता और प्रवाह जिस कोटि का देखने को मिलता है, वैसा उस युग के किसी लेखक में नहीं।

वर्णन चातुर्य और भाषा 'शैली की विशेषता समझने के लिए गद्यांश उद्धृत किया जा रहा है:—

"प्रातः काल ही हम लोग अपने सैनिक वेष विन्यास से सुसज्जित हुए और अपने कई अँग्रेज अफसरों के साथ-साथ जो कि केवल आदरार्थ पहुँचाने को पधारे थे, रेलवे स्टेशन को चले। फौजी बैंड बाजा आगे आगे सुरीले राग से (Soldiers of the king) राजा के सैनिकों की यात्रा इत्यादि बजाता हुआ आगे बढ़ा और पलटन के जन समूह ने बड़े उत्साह से महाराजा रामचन्द्र की जय, बजरंगबली की जय, राजा एडवर्ड की जय इत्यादि जय जय कार की ध्वनि की।

हम लोग सवारी गाड़ी से चले थे सो दस तारीख मई को लखनऊ छोड़ कर बारह को देवलाली कैम्प में पहुँचे। इस बीच के मार्ग में अनेकों प्रकार के प्राकृतिक दृश्य देखते हुए गंगा, रिन्द, यमुना, बेतबती, नर्मदा आदि नदियों को पार करके और अनेकों छोटे बड़े पर्वत,खाल जंगल और मैदान आदि की स्वाभाविक शोभा निरखते हुए बड़ा आनकुन्द पाते थे।

कहीं पलाश आदि के घने जंगल, कहीं दूर तक शश्य विहीन ऊसर मरुवत मैदान, कहीं-कहीं हरिण आदि वनचर जीव जन्तु स्वच्छंदता से इधर-उधर चरते विचरते दीख पड़े और कहीं छोटी-छोटी क्षुद्र कुटीरों के दस बीस जनावास जिनके आस पास अनेकों खर्व काय कृष्ण वर्ण बालक बालिकाओं और जर्जर कलेवर बूढ़े लोग, गाँव के ढंगर गोरन चरारहे हैं। जिनकी दशा देख कर अनुकम्पावान हृदय तो बिना किसी प्रकार का भाव मन में धारण किए अपनी दृष्टि फेर नहीं सकता।

सहस्त्रों, प्रायः सभी, अंग्रेज लोग इसी मार्ग से हिन्दुस्तान की यात्रा करते हैं। मुझको ज्ञात नहीं है कि कितने अंग्रेजों ने इस करुणोत्पादक दृश्य की ओर दृष्टिक्षेप किया है और उनके रसावह सुदृढ़ हृदयों में इन बेचारों के लिए क्षणिक, तनिक भी जगह मिली वा नहीं।"[1]

१—एडवर्ड तिलक यात्रा पृष्ठ ८-९

समुद्र यात्रा का वर्णन करते हुये लिखते हैं:—

"ज्यों-ज्यों दिन ढलता जाता था त्यों-त्यों सूर्य की तिरछी किरणें जल पर चंचलता से ऐसी खेलने लगीं मानों चँद्र सुवर्ण रेणु की वृद्धि हो रही है। अधिक काल विलम्ब न होने पाया था कि जल की निस्तब्धता भंग हो गई। निश्चल जल चंचल लहरों से उत्थलित हो उठा। स्वर्ण प्रभा सूर्य किरणें उसी उठते बैठते हुए जल के गंभीर हृदय में मानों प्रविष्ट होकर उसी में विलीन होने लगीं।

ज्वार के आते ही जहाज ने भी अपना लंगर उठाया और मस्तक ऊँचा करके (Heavens light our guide) "स्वर्गीय प्रकाश ही हमारा मार्ग दर्शक है" कहता हुआ समुद्र के विशाल वक्षस्थल पर अपने मार्ग चलता हुआ। धीरे-धीरे अग्रसर होते हुए आस पासकी सब चहल-पहल, नन्हीं-नन्हीं नौकाओं के चित्र खेल और बम्बई का पथरीला घाट किनारा आदि सभी छूटने लगे। थोड़ी ही देर पीछे बम्बई के प्रकाश स्तम्भ के सिवाय सभी कुछ मानों अंधकार में लीन हो गया।"[१]

+ + +

"जहाँ अव्यवस्थित अनुष्ठानों में कृत कार्यता असंभव है तहाँ, धीरता और व्यवस्था के साथ आरम्भ किये हुए काम का बिगड़ना भी संभव नहीं। हम जो अपने उपरोक्त धन धर्म आदि पदार्थों की चेष्टा करते हुए परस्पर वितंडा गढ़ कर एक दूसरे की निन्दा इस लिए करते हैं। कि वह अमुक पदार्थ ही को बचाने की चेष्टा करता है और अमुक को नहीं। इसी कारण प्रत्येक के अनुष्ठान में अव्यवस्था नहीं होती……पोर्ट आर्थर में पहिली लड़ाई के बाद का अगला दिन साफ बीत गया। सब ओर भेद भाव लेकर देखने से जाना गया कि बाहर के आसपास जापानियों का कहीं पाता नहीं। तब अच्छा अवसर समझ कर एडमिरल अलकजीफ ने बन्दर के मुहाने को बन्द करने

१—तिलक यात्रा, पृष्ठ १८—१९

की आज्ञा दी, क्योंकि उन्होंने जापानियों के अचानक हमला से बचाव का यही एक प्रधान उपाय समझा।'[२]

ठाकुर साहब ने 'स्थगित' शब्द के स्थान पर 'विलम्बित' 'देर' के लिए' 'बेर' 'तक' के बजाय 'लौं' आदि का प्रयोग किया है। यद्यपि ठाकुर साहब राजभक्त सैनिक थे किन्तु देश भक्ति और अपने समाज की दुरवस्था के प्रति सतत जागरूक रहते थे। अँग्रेजों की प्रशंसा करते हुये भी भारतीयों के साथ किये जाने वाले उनके दुर्व्यवहारों तथा भेद भाव पूर्ण नीति की आलोचना भी उन्होंने अच्छी तरह की है। पूर्व और पश्चिमी सभ्यता तथा रीति रिवाजों का तुलनात्मक दिग्दर्शन इन्होंने अपनी पुस्तकों में यथा अवसर कराया है।

ठाकुर साहब ने जीवन भर हिन्दी की सेवा की; यदि उनकी सम्पूर्ण सेवाओं को भुला भी दिया जाय, तब भी हिन्दी में यात्रा साहित्य के प्रथम लेखक के रूप में वे हमेशा याद किये जायेंगे। दुर्भाग्य से ठाकुर साहब जैसे प्रतिभा सम्पन्न लेखक की भी हिन्दी साहित्य के इतिहास-कारों ने खोज खबर नहीं ली।

नारायणप्रसाद अरोड़ा (१९३८)—कानपुर की राजनैतिक और साहित्यिक चेतना के विकास में, नगर के जिन दो चार महानुभावों की गणना की जाती है, उनमें से एक अरोड़ा जी हैं। सन् १९०६ में बी० ए० पास करके अध्यापन कार्य करते हुए, देश के स्वातंत्र्य युद्ध में निरन्तर भाग लिया। लगन-योग्यता और लोकप्रियता के कारण आप उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे, तथा सन् १९२४में प्रांतीय लेजिस्लेटिव असेम्बली के मेम्बर भी निर्वाचित हुये।

लोकमान्य तिलक के अनुयायी तथा राजनीति में उग्र विचार रखने वाले नेता हैं। सन् १९२१ से १९४२ तक के आन्दोलन में भाग लेकर

२—रूस जापान युद्ध, पृष्ठ १४८-१७४

पाँच बार जेल यात्रा की। कानपुर में लोकमान्य तिलक की स्मृति में तिलकहाल का निर्माण आपकी विशेष देन है। लाला हरदयाल से घनिष्ट सम्बन्ध रहा और क्रान्तिकारियों की सहायता करते रहे। हिन्दी साहित्य के कार्यों में आपका योग काफी है। आचार्य पं० महावीर-प्रसाद द्विवेदी जी से प्रेरणा पाकर लेखक बने।

सुप्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक 'प्रताप' के जन्मदाताओं में आप प्रमुख हैं। मासिक 'संसार' और दैनिक 'विक्रम' पत्र के सम्पादक तथा संचालक रहे।

नगर में होने वाले सभी साहित्यिक कार्यों में आपका सहयोग रहता है। कानपुर इतिहास समिति की स्थापना करके, पं० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी के सहयोग से, कानपुर का इतिहास लिखकर प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ पर उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक हज़ार का पुरुस्कार प्रदान किया। अरोड़ा जी के द्वारा लिखित, अनुवादित और सम्पादित छोटे बड़े ग्रन्थों की संख्या लगभग साठ की है। इन ग्रन्थों में बालोपयोगी, भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, पशुपालन, राजनैतिक, ऐतिहासिक, जीवन चरित आदि हैं। सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थों में 'स्वाधीनविचार' फलाहार और फल चिकित्सा, मेरे गुरु जन, नारायण निबन्धावली, पहलवानी और पहलवान, कानपुर के प्रसिद्ध पुरुष, कानपुर के विद्रोही, प्रताप लहरी, शाक और उनके गुण तथा लाला लाजपतराय, स्वामी रामतीर्थ, श्रीमती सेंट निहालसिंह, सर गुरुदास बनर्जी, पं० मदनमोहनमालवीय के लेखों तथा भाषणों के संग्रह आदि हैं। चींटी और मधुमक्खी जैसे ग्रन्थ भी आपने लिख कर प्रकाशित किये।

अरोड़ा जी हिन्दी के उन लेखकों में से हैं जिनके गद्य में कलात्मकता कम और सरलता ज्यादा है। विषय और शैली की दृष्टि से वे बहुल हैं। अन्यान्य विषयों पर उनकी पुस्तकें हैं। शैली की दृष्टि से उनमें कई विशेषताएँ हैं। देश की आज़ादी तथा समाज सुधार विषयों

पर लिखे गये निबन्धों में ओज के साथ वक्तृता का प्रवाह है। अन्य में सहज सरलता विद्यमान है। कृत्रिमता अरोड़ा जी के लेखों में नहीं है। पं० प्रतापनारायण मिश्र को वे अपना आदर्श और गुरु मानते हैं। मिश्र जी की शैली का पर्याप्त प्रभाव आपके लेखों एवं भाषणों में है। भाषा बोलचाल की रहती है :—

"आज कल हमारी अवस्था कुछ ऐसी बिगड़ी है कि कुछ कहते नहीं बनता। परन्तु बिना कहे भी नहीं रहा जाता। इसीलिए बड़े धर्म संकट में पड़े हैं कि यदि कहें तो आफत, न कहें तो आफत। 'भई गति साँप छछूँदर केरी' जो सच सच कहते हैं तो लोग कहेंगे कि नास्तिक है, महाभ्रष्ट है, पतित है; और जो लोगों की हाँ में हाँ मिलाते चले जायँ तो फिर क्या है जिधर देखो हमारी वाह वाह है। लोग कहते हैं कि हम बड़े धर्मात्मा हैं, हम बड़े सज्जन हैं। दयावान हैं। कर्मकांडी हैं। ऐसे हैं-वैसे हैं। (पर यह नहीं जानते कि हम कैसे हैं) इस उधेड़-बुन में बहुत दिन चुपचाप बैठे रहे पर अब नहीं रहा जाता क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि ये विचार भीतर ही पड़े पड़े सड़ जायँ। इसलिए इन्हें धूप दिखाने की आवश्यकता पड़ी।"[१]

स्वामी नारायणानन्द सरस्वती 'अख्तर' (१९४०-२०११)— जन्मस्थान पीली भीत। स्कूली शिक्षा नहीं मिली थी। परन्तु स्वाध्याय से हिन्दी संस्कृत, उर्दू और फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। असली नाम पं० लक्ष्मीनारायण था। १९६९ में सरस्वती सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे। कानपुर में राजनीति एवं साहित्यिक कामों में इनका सक्रिय सहयोग रहता था। सुप्रसिद्ध ख्यालगायक और रचयिता थे। कविता भी अच्छी लिखते थे। लाठी मोहाल की लक्ष्मणदास की धर्मशाला आप का निवास स्थान था। यहीं से अप्रैल सन् १९२४ से मासिक 'कवीन्द्र' का प्रकाशन एवं सम्पादन किया। प्रसिद्ध कवि श्री अनूप शर्मा इस पत्र के सहायक सम्पादक थे। इस पत्र में कविता, लेख, आलोचना तथा

---

१ नारायणनिबन्धावली पृष्ठ ११२—प्रमाण का पुछल्ला

शोधपूर्ण सामग्री छपती थी। सन् १९३४ में गया से प्रकाशित 'सन्त सन्देश' का भी इन्होंने सम्पादन किया। देववन्द जिला सहारनपुर के 'देवी कुंड महाविद्यालय' के संस्थापक एवं संचालक रहे। प्रकाशित स्फुट लेखों के अतिरिक्त इनका इनका 'लावनी साहित्य का इतिहास' अपने विषय का प्रथम समीक्षात्मक ग्रन्थ है।

उदयनारायण बाजपेयी (१८४१)—वयोवृद्ध वाजपेयीजी हिन्दी के तरस्वी लेखक एवं पत्रकार हैं। आचार्य द्विवेदी जी के सहायक रूप में 'सरस्वती' का कई वर्ष तक सम्पादन किया। तत्पश्चात् मासिक 'संसार' कानपुर एवं 'बिजली' इटावा का सम्पादन किया। पिता के स्वर्गवास हो जाने तथा आर्थिक दुरवस्था के कारण मैट्रिक की परीक्षा में नहीं बैठ सके। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अँग्रेजी, बँगला, गुजराती का स्वतंत्र अध्ययन किया और कई ग्रन्थों का अनुवाद किया। सरस्वती, संसार और बिजली में आपके लेख बिखरे हैं। आपकी प्रकाशित पुस्तकों में "प्राचीन भारत का वैदेशिक व्यापार" 'इलियडकाव्यसार' 'स्वदेशप्रेम' तथा 'स्वराज्यतत्वमीमांसा' प्रमुख हैं। अप्रकाशित ग्रन्थों में 'कार्यक्षेत्र' तथा 'विकासवाद' मकान गिर जाने से नष्ट हो गये। आपने एक नाटक 'दासत्वमोचन' भी लिखा था। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के कई ग्रन्थों के लेखन में वाजपेई जी ने पर्याप्त अंश लिख कर योग दिया है। आचार्य द्विवेदी जो और आपकी शैली में समानता है। जीवन के प्रारंभ काल में आपने कई बर्ष तक अध्यापन कार्य किया और सार्वजनिक क्षेत्र में सक्रिय भाग लिया। कानपुर शहर कांग्रेस के मंत्री और जिला कांग्रेस कमेटी के सभापति भी रहे। हिन्दी भाषा और देश सेवा के लिये अपनी परिस्थितियों से जूझते हुए आपने खूब काम किया। आज कल आप अपने कठोर परिश्रम के कारण नेत्रों की ज्योति खोकर, अवश जीवन यापन कर रहे हैं।

लक्ष्मीधर वाजपेयी (१९४३-२०१०) —वाजपेयी जी हिन्दी के उन प्रमुख साहित्य सेवियों में थे, जिन्होंने हिन्दी गद्य साहित्य के निर्माण में अपना भरपूर योग दिया है। हिन्दी के श्रेष्ठ पत्रकार के रूप में वे प्रसिद्ध थे। निबन्ध लेखक और कवि के रूप में भी, उनसे हिन्दी संसार परिचित है। वाजपेयी जी का जन्म कानपुर जिले के मैथा नामक ग्राम में हुआ था। मिडिल तक शिक्षा प्राप्त करके मसवानपुर और कानपुर के स्कूलों में अध्यापन कार्य किया। योग्यता प्राप्त करने की धुन में अध्यापकी छोड़ कर, भयंकर मुसीबतों का सामना करते हुए वे हिन्दी सेवा की ओर प्रवृत्त हुये। काशी मे बाबू श्यामसुन्दरदास के सहयोग से पं० माधव राव सप्रे जी के यहाँ पहुँचे। हिन्दी पुस्तक माला का काम करते हुए, सप्रे जी के पास अँग्रेजी और मराठी सीखी। तत्पश्चात जब सप्रे जी ने 'हिन्दी केसरी' निकाला, तब पहले उसके सहायक और सप्रे जी की गिरिफ्तारी के बाद सम्पादक रहे। 'हिन्दी केसरी' के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध समाचार पत्र 'चित्रमय जगत' (पूना) 'आर्य मित्र' (आगरा) 'मर्यादा' (प्रयाग) आदि का सम्पादन किया। हिन्दी के अनेक ख्याति प्राप्त लेखक वाजपेयी जी के द्वारा प्रोत्साहित और बढ़ाये हुए हैं।

'चित्रमय जगत' के सम्पादक बनने के पूर्व जब हिन्दी केसरी बन्द हुआ, तब सप्रे जी के साथ रामदासी सम्प्रदाय में दीक्षित होकर माधवानुज के नाम से आश्रम में रहे और यहीं महाराष्ट्र के संतों तथा उनके साहित्य का अध्ययन किया; और कई पुस्तकें लिखीं। सप्रे जी के सहयोग से 'दासबोध' नामक विशाल ग्रन्थ तैयार किया। यहीं महाकवि कालिदास के मेघदूत का छन्दोबद्ध अनुवाद किया।

तरुण भारत ग्रन्थावली नामक प्रकाशन संस्था स्थापित कर, सत् साहित्य का प्रचार और प्रकाशन किया। वाजपेयी जी हिन्दी, संस्कृत के तो पंडित थे ही अँग्रेजी, मराठी, गुजराती और बँगला भाषा का भी अध्ययन करके कई ग्रन्थों का अनुवाद किया। धर्म, साहित्य, राजनीति, इतिहास, दर्शन, का अध्ययन वाजपेयी जी का उच्च कोटि का था। उन

राजनीतिज्ञ, कट्टर समाज सुधारक, तपस्वी साहित्य साधक और अलमस्त जनसेवी के रूप में वे प्रसिद्ध रहे। कृत्रिमता उनके पास फटकी नहीं।

बाजपेयी जी द्वारा लिखित, अनुवादित, सम्पादित ग्रन्थों की संख्या पचास के लगभग है। उनमें सर्वाधिक ख्याति पाने वाले, 'मेघदूत' का हिन्दी छन्दोबद्ध अनुवाद, धर्मशिक्षा, गार्हस्थ्यशास्त्र, रानाडे, सदाचार और नीति, काव्य और संगीत, गैरी बाल्डी, वज्राघात, चाणक्य और चन्द्र गुप्त, इब्राहमलिंकन, विद्रोही राजकुमार, वीर राजपूत, हिन्दी गद्य निर्माण आदि प्रमुख हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रमुख कार्य कर्ता और उसके साहित्य मंत्री रहे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लेकर कई बार जेल यात्रा की।। क्रान्तिकारी कामों में आप का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता था। नागपुर में हिन्दी केसरी का सम्पादन करते हुये तथा आगरे में 'आर्य मित्र' के सम्पादन काल में आपका घर क्रान्तिकारियों का अड्डा था। खुफिया की निगाह से बचने को 'आर्य मित्र' का सम्पादन सर्वानन्द के नाम से करते थे।

कानपुर से प्रकाशित 'प्रकाश' साप्ताहिक का सम्पादन भी बाज-पेयी जी ने किया।

बाजपेयी जी के निबंध, विषय से गम्भीर और भाषा शैली की दृष्टि से स्वच्छ, बोधगम्य एवं साधु हैं। संस्कृत निष्ठ, किन्तु सरल, सुगठित और प्रवाह युक्त शैली बाजपेयी जी की विशेषता है। इतनी परिष्कृत और आडंबर हीन शैली कम लोगों के पास है:—

"कवि रत्न पं सत्यनारायण जी का जीवन आदि से अन्त तक, सबाह्याभ्यन्तर, अत्यंत मधुर था मधुरता ही उनके जीवन का रहस्य है। आगरे में मेरा उनका तीन वर्ष तक घनिष्ट सत्संग रहा। ऐसा एक दिन भी नहीं बीतता था कि वह शहर में आवें, और मेरे द्वार पर आकर मधुरता की आवाज न लगावें। चाहे जितनी जल्दी में हों, दो मिनट अपने संभाषण का सुख मुझे अवश्य दे जाते थे। उनका हृदय

जितना कोमल था, उनके वचन और उनके कार्य भी उतने ही कोमल थे। तीन वर्ष के अन्दर मैंने उनको कभी क्रोधित होते हुये नहीं देखा।''[१]

''प्रवृत्ति और निवृत्ति से सृष्टि चलती है। प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति और निवृत्ति के बाद प्रवृत्ति सृष्टि का आवश्यक नियम है। इसी के अनुसार दिन को कार्य करना और रात को आराम करना सब जीवों के लिए आवश्यक है। मनुष्येतर जीव तो इस विषय में नियम से खूब बँधे हुए हैं। जहाँ सायंकाल हुआ, चिड़िया बसेरा लेने के लिए अपने अपने घोसलों की ओर दौड़ती हैं। परन्तु मनुष्य प्राणी का कोई नियम नहीं है और इसी कारण अल्पायु होकर मर जाता है।''[२]

गणेशशंकर विद्यार्थी (१९४७-१९८८)—गणेश जी न केवल लोकप्रिय नेता तथा पत्रकार थे वरन् उच्च कोटि के शैली कार तथा निबंध लेखक भी थे। साधारण कायस्थ परिवार में जन्म हुआ। मैट्रिक तक शिक्षा पाकर पहले कानपुर करेंसी में क्लर्की और उसके बाद कुछ दिन अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सहायक बनकर 'सरस्वती' के सम्पादन कार्य में भाग लिया और अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी पत्रकार कला के सर्वोत्तम व्यक्तियों में पहुँच गये। 'सरस्वती' के बाद 'अभ्युदय' का सम्पादन किया। १९१३ में कानपुर से साप्ताहिक प्रताप का प्रकाशन शुरु करके हिन्दी पत्र जगत के सामने पत्रकारिता का एक आदर्श प्रस्तुत किया। राजनीति, समाज और साहित्य को आपने बहुत कुछ दिया। एक महान् मनुष्य, कुशल पत्रकार, श्रेष्ठवक्ता, सुलेखक, तथा अमर शहीद के रूप में गणेश जी देश में विख्यात हैं। गणेश जी की शैली में भावात्मकता, ओज, गम्भीरता, और निर्भीकता के मिश्रण से जिस वक्तृता प्रधान शैली का हिन्दी में जन्म हुआ, वह अनोखी है। गणेश जी के लेख और निबंध

१-कविरत्न सत्यनारायण की जीवनी पृष्ठ ७

२-धर्म शिक्षा निद्रा पृष्ठ १९७

सरस्वती, कर्मयोगी, प्रताप, प्रभा आदि पत्र पत्रिकाओं के पृष्ठों में बिखरे हैं। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा लिखित 'हमारी आत्मोत्सर्गता, भारतीयों के आत्म त्याग की ऐतिहासिक कथाओं का संग्रह तथा विक्टर ह्यूगो के उपन्यास 'ला मिज़राब्ल्स का आहुति, तथा नाइन्टी थ्री का बलिदान नाम से अनुवाद किया था। प्रताप में उत्तमोत्तम लेख जो भारतीय युवक, हरि, दिवाकर, वक्रतुण्ड, कलाधर, लम्बोदर, बन्देमातरम् आदि नामों से छपे हैं, विद्यार्थी जी के ही लिखे हुये हैं। गजेन्द्र तथा श्री कांत एम० ए० के उप नाम से गणेश जी के सरस्वती, अभ्युदय और हितवार्ता, में कई लेख छपे थे।

गणेश जी की भाषा सरल और अत्यन्त शक्तिशाली होने के साथ स्वच्छ और प्रवाह युक्त है। गणेश जी की भाषा में इतनी सजीवता और शैली में ऐसा रंग था; जिसके द्वारा एक अच्छा सा चित्र पाठक के सामने वे खड़ा कर देते थे। महाराणा प्रताप पर लिखा हुआ 'उनका लेख इस दृष्टि से सर्वोत्तम है। उदाहरणार्थ :—

"बलिदान-केवल बलिदान-चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी बलिदान चाहती है। बादल उमड़े थे, बिजलियाँ कड़की थीं। और घोर अंधकार छा गया था। अपवित्रता पवित्रता पर कब्जा करना चाहती थी और अनाचार आचार और व्यवहार की ईंट से ईंट बजा देने वाला था। हृदय काँप उठे। अशान्ति की लहरें बड़े जोरों में शान्ति के किले के कंगूरों को एक-एक करके ढारहीं थीं। सूर्य देव भी अपने वंशजों को सदा के अन्धकार में छोड़ देने के लिये तैयार थे और चित्तौड़ की दीवारें भी ऊँचा सिर रखते हुये नीची नज़र कर चुकी थीं। बेढब बाजी लगी थी। पद्मिनी का दाँव था। पाँसे उलटे पड़ रहे थे। लेकिन रुख बदला। किसी की दया या कृपा से नहीं, और किसी की कमजोरी या नीचता से भी नहीं। रक्त की वर्षा हो गई। रक्त की प्यासी भूमि

की प्यास मिट गई। चित्तौड़ की देवियों की राख का ढेर होते देख कर चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी के हृदय की ताप मिट गई।"[१]

"गणेश जी की स्वाभाविक शैली का नमूना यह है:—

"हिन्दी के प्रचार का सब से बड़ा साधन है हिन्दी प्रांतों में लोक शिक्षा का आवश्यक और अनिवार्य बना देना। कोई ऐसा घर न रहे, जिसके नर नारी, बच्चे बूढ़े तक तुलसी कृत रामायण और साधारण पुस्तकें और समाचार पत्र न पढ़ सकें। यह काम उतना कठिन नहीं है, जितना कि समझा जाता है। यदि टरकी में कमाल पाशा बूढ़ों और बच्चों तक को थोड़े से समय के भीतर साक्षर कर सकते हैं और सोवियत शासन दस वर्ष के भीतर रूस में अविद्या का दीवाला निकाल सकता है, तो इस देश में सारी शक्तियाँ जुट कर बहुत थोड़े समय में अविद्या के अन्धकार का नाश कर प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ने और लिखने के योग्य बना सकती हैं।"[२]

रामलाल पाण्डेय (१६४८-२००८)—हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार तथा संस्कृत, प्राकृत, पाली, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी एवं फ्रेंच के ज्ञाता थे। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरी की। असहयोग आन्दोलन में नौकरी छोड़, राष्ट्रीय कार्यों में सक्रिय भाग लेकर, तीन बार जेल यात्रा की। कानपुर जिला काँग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री, सभापति एवं डिक्टेटर रहे। कानपुर के दैनिक 'वर्तमान' का सम्पादन कार्य कई वर्ष तक किया। इनके लेख सरस्वती, माधुरी, वीणा, विश्ववाणी, आदि सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं में छपते रहते थे। पाण्डेय जी ने अबुलफजल की 'आईने अकबरी' जैसे वृहद् इतिहास ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद, अपने जीवन के बहुमूल्य सत्रह वर्ष लगा कर किया। इनके द्वारा अनुवादित पूरे ग्रन्थ में से कुल चार भाग अभी तक प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी संसार का दुर्भाग्य है कि

१—प्रताप प्रथम अंक सन् १६१३

२—गोरखपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्षीय भाषण पृष्ठ २४

आपके परिश्रम का फल पूर्णरूप से अब तक हिन्दी संसार को प्राप्त नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त लार्ड कर्जन और महात्मा मेज़िनी आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। पाण्डेय जी गम्भीर विद्वान और साधक साहित्यकार थे।

विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक (१६४८-२००२)—कौशिकजी हिन्दी के अमर कथा कार ही नहीं वरन् एक अच्छे सम्पादक तथा लेखक भी थे। कहानी प्रधान मासिक पत्रिका निकाली थी। मासिक प्रभा में आपकी एक लेख माला 'संसार की स्त्रियों' पर कई अंकों में छपी थी। इन सब से अधिक गद्य साहित्य में बिजयानन्द दुबे के नाम से लिखे गये आपके निबंधों का स्थान है। 'चाँद' मासिक में ये निबंध बराबर छपते थे। 'दुबे जी की चिट्ठियाँ' नामक पुस्तक इन्हीं निबंधों का संग्रह है, जो चाँद कार्यालय से ही प्रकाशित हुई थी। बाबू बालमुकुन्द गुप्त के शिव शम्भु के चिट्ठे और कौशिक जी द्वारा लिखित बिजयानन्द दुबे की चिट्ठियाँ, हिन्दी निबंध क्षेत्र की हास्यव्यंग्य प्रधान रचनाओं में अपना शीर्ष स्थान रखती हैं। सोद्देश्य किन्तु सहज सरल और आनन्दमय वातावरण को बनाये रखकर कौशिक जी ने अपनी लेखनी के चमत्कार से निबंध क्षेत्र को प्रभावित एवं प्रकाशित किया। हास्यपूर्ण शैली में लिखे निबंधों की झलक देखिये:—

"ऐसे-ऐसे लोग हैं जो घर से बाहर जाते समय ऐसा रूप बनाते हैं कि मानो काले पानी जा रहे हैं। तीन तीन चार-चार दिन पहले से सायत मुहूर्त देखा जाता है। ऐसों के लिये सप्ताह में एकाध दिन ऐसा निकलता है, जिस दिन श्रीमान् कहीं परदेश की यात्रा कर सकते हैं, अन्यथा आज दिशा शूल है, आज नक्षत्र ठीक नहीं, आज बाएँ चन्द्रमा है, आज भद्रा है, इसी फेर में रहते हैं। जिस समय घर से निकलते हैं तो ऐसा प्रबन्ध रहता है कि मानों बायस राय की सवारी निकल रही है। कोई आदमी नंगे सिर सामने न आवे। किसी को नंगे सिर देखा तो ललकारा, हटो सामने से, या सिर ढक लो, जानते नहीं, फलाने

जा रहे हैं ! यह औरत जो खाली डोल लिये खड़ी है, इसे कहो, सामने से हट जाय या डोल में पानी भर ले। इस बिल्ली को मारो, रास्ते में खड़ी है, ऐसा न हो कि रास्ता काट जाय। यदि कारणवश किसी ने टोक दिया "कहिये महाराज, कहाँ चले ?' फिर है ! बस गजब हो गया।"[१]

विष्णुदत्त शुक्ल (१८५३) हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक और पत्रकार हैं। 'प्रताप' तथा 'विक्रम' के सहायक सम्पादक रहे। कई वर्ष कलकत्ते रहे और वहीं से जापान की यात्रा की। सन् १६४६ में कानपुर से 'सहयोगी' साप्ताहिक का प्रकाशन और सम्पादन किया। हिन्दी पत्र कला के आप अधिकृत विद्वानों में से हैं। सन् १६३६ में हिन्दी पत्रकारिता पर विधिवत अध्ययन के रूप में 'पत्र कार कला' अपने विषय की महत्वपूर्ण एवं पहली पुस्तक लिख कर प्रकाशित की। इस ग्रन्थ का हिन्दी पत्रकार जगत में बड़ा सम्मान हुआ। आचार्य द्विवेदीजी पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, पाराड़कर जी, पं० बनारसी दास चतुर्वेदी, श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे जैसे हिन्दी के मान्य पत्रकार तथा बाबू श्यामसुन्दर दास और आलोचक प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे उद्‌भट विद्वानों ने प्रशंसा की। इस ग्रन्थ की सारगर्भित भूमिका युग प्रवर्तक पत्रकार श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने लिखी थी। 'सभा शास्त्र' नामक ग्रन्थ भी आपने लिख कर प्रकाशित कराया। दोनों ही ग्रन्थ अपने युग के अद्वितीय और महत्वपूर्ण ग्रन्थ थे। स्फुट निबंध तथा लेख भी आप ने बहुत से लिखे हैं। शुक्ल जी की भाषा शैली साधु, सरल और परिमार्जित हैं। पत्रकारों में ऐसी गठी शैली के लेखक थोड़े ही मिलेंगे :—

"समाचार पत्रों के जन्म के संबन्ध में कहा जाता है कि पहले जब समाचार पत्र न थे, तब यह चलन था कि राष्ट्र के बड़े-बड़े अधिकारी अपने आदमी विशेष स्थलों पर नियुक्त कर देते थे। ये लोग अपने स्थान की खास-खास बातें पत्र के रूप में लिख कर अधिकारियों को सूचना के लिये भेजा करते थे। धीरे-धीरे व्यय भार से बचने के विचार से एक

१—दुबे जी की चिट्ठियाँ पृष्ठ १६

से अधिक अधिकारी एक ही आदमी से समाचार मँगवाने लगे। दूसरी ओर ऐसे आदमी यह प्रयत्न करने लगे, कि वे अकेले ही कई अधिकारियों को समाचार भेज कर अधिक धन उपार्जन करें। इस प्रकार काम करने से एकओर तोअधिकारियों को लाभ हुआ—वे अलग अलग आदमी रखने का अधिक व्यय भार उठाने से बचने लगे। दूसरी ओर इस प्रकार के सम्वाददाताओं की आमदनी भी कई अधिकारियों से थोड़ी थोड़ी सहायता मिलने के कारण बढ़ गई। इसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रकार के सम्वाददाताओं की संख्या बढ़ने लगी। एक-एक सम्बाददाता के पास कई अधिकारियों का काम आ जाने से एक ही समाचार कई बार लिखने की जरूरत पड़ने लगी और इसी प्रकार जब चिट्ठियों की संख्या बहुत अधिक हो गई और छापेखानों का आविष्कार हो गया, तब सम्वाददाता अधिक परिश्रम से बचने के लिए चिट्ठियाँ छपवा कर अधिकारियों के पास भेजने लगे। इन्हीं चिट्ठियों ने आगे चल कर समाचार पत्रों का रूप धारण किया।''[1]

केशव कुमार ठाकुर (१९५३)—कानपुर जिले की अकबरपुर तहसील के पीराज़ोर ग्राम के निवासी तथा हिन्दी के पुराने लेखक हैं। प्रारम्भ में कविताएँ लिखीं, फिर कथा साहित्य के क्षेत्र में आ गये। स्फुट कहानियों के अतिरिक्त कई उपन्यास लिखे। 'कलकत्ता समाचार' और 'माधुरी' के कई वर्ष सहायक सम्पादक रहे। इतिहास आपका प्रिय विषय है। आपकी छोटी बड़ी लगभग चालीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बाल साहित्य, स्वास्थ्य, प्राकृतिक चिकित्सा आदि विषयों पर भी आपने काफी लिखा है। सन् १८५७ के विद्रोह के सेनानायकों के जीवन चरित भी आपने लिखकर प्रकाशित कराये हैं। आपके प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रन्थों में विवाह और प्रेम, बुढ़ापा उसके कारण और निवारण, स्वास्थ्य और व्यायाम, फल उनके गुण तथा उनका उपयोग, उपवास चिकित्सा, भारत में अंग्रेजी राज्य के

१—पत्रकार कला पृष्ठ १७

दो सौ वर्ष, और जीवन चरित में जनरल तात्या टोपे, केशरी कुँवरसिंह, वीरांगना लक्ष्मीबाई, नानाराव पेशवा के अतिरिक्त जहाँनारा की आत्मकथा प्रमुख हैं। 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ आप लिख रहे हैं। ठाकुर साहब की शैली रोचक और सरल है। मूक साधक की तरह आप साहित्य साधना में लगभग तीस पैंतीस वर्ष से रत हैं।

लक्ष्मीकांत त्रिपाठी(१९५४) —आपका जन्म कुन्दौली ग्राम में २७अक्टूबर सन् १८९८ में पं० अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी के यहाँ हुआ। सन् १९१८ में कानपुर क्राइस्टचर्च कालेज से बी०ए०, तत्पश्चात् प्रयाग विश्वविद्यालय से इतिहास में एम०ए० पास किया। इतिहास के मान्य विद्वानों में आपकी गणना है।

आज कल आप कानपुर क्राइस्टचर्च कालेज के इतिहास विभाग के अध्यक्ष हैं। बीच में एक वर्ष कानपुर कान्यकुब्ज कालेज के प्रिन्सिपल भी रहे। त्रिपाठी जी साधक साहित्यकार हैं। प्रदर्शन और अभिमान उनको छू नहीं गया।

'सरस्वती', 'श्री शारदा', तथा 'माधुरी', जैसी उच्च कोटि की पत्रिकाओं में आपके अनेक विद्वतापूर्ण ऐतिहासिक शोध–निबन्ध प्रकाशित हुये है। इतिहास के अतिरिक्त, भाषाविज्ञान तथा शब्दशास्त्र का आपका अच्छा अध्ययन है। साहित्य, राजनीति धर्म और सामाजिक विषयों पर प्रायः आपके उत्तमोत्तम, आलोचनात्मक, विचारपूर्ण, क्रान्तिकारी लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

सन् १९२५ में गंगा पुस्तकमाला लखनऊ से रायदेवीप्रसाद पूर्ण पर गहन अध्ययन 'पूर्ण संग्रह' केनामसे प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका त्रिपाठी जी की समीक्षा का उत्तम उदाहरण है। 'कानपुर के कवि' पुस्तक बालमीकि से पूर्णजी तक कवियों का परिचयात्मक समीक्षा है।

अरोड़ाजी के सहयोग से लिखित सचित्र 'कानपुर का इतिहास' आपका वृहद आदर्श ग्रन्थ है। इसमें त्रिपाठी जी ने ऐतिहासिक विवेचन

के अतिरिक्त जनपदीय इतिहास लिखने की आवश्यकता और महत्ता पर प्रकाश डालकर हिन्दी की एक विशिष्ट कमी को पूरा करने का आदर्श प्रस्तुत किया है। इतिहास के प्रथम भाग पर उत्तर प्रदेश सरकार ने एक हजार रुपया का पुरस्कार भी दिया।

जनपदीय, अनुसंधान-कार्यों में आपकी विशेष रुचि है। और इस क्षेत्र में आप सदैव कुछ न कुछ करते रहते है। महत्वपूर्ण ऐतिहासिक निबंधों का अभीतक आपका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है।

त्रिपाठी जी की भाषा शैली अपेक्षाकृत गम्भीर और ललित है। गठन और गुरुता, प्रवाह और स्वच्छता आपकी शैलीकी विशेषता है:—

"स्थानीय इतिहास की शोध करने वाले के लिए उपर्युक्त पुराने पारिवारिक काग़ज़ातों, स्थानीय इमारतों, प्राचीन स्थलों के अतिरिक्त अध्ययन के अनेक अन्य साधन भी हैं। अनेक जातियाँ तथा कबीले पाये जाते हैं जिनकी उत्पत्ति, विस्तार, पार्थक्य तथा दूसरों के साथ सम्मिलन के इतिहास का अध्ययन उनके स्थानीय रस्म रिवाज, पंचायत की प्रणाली तथा अन्य संस्थाएँ इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करेंगी। यह अत्यन्त लजा की बात है कि अधिकतर यूरोपीय विद्वानों ने ही इस दिशा में कार्य किया है। हम इसकी बहुत दिन उपेक्षा कर चुके। हमारी शिक्षा पद्धति के पूर्णतः विदेशी ढंग पर निर्मित होने तथा हमारे राष्ट्रीय जीवन के मूल स्रोत से उसके पूर्णतया पृथक होने के कारण वह हमें कभी भी इस क्षेत्र की ओर न आकर्षित कर सकी। अपनी नागरिक सभ्यता के अभिमान में पड़कर अपने इस ग्राम्य दाय की हमने खेदपूर्ण उपेक्षा की है। हम अपने पुराने लोक गीतों, कहावतों, ग्राम्य साहित्य तथा बोलियों को भूल गये हैं। डा० ग्रियर्सन को हमारे देश में भाषा संबंधी छानबीन क्यों करनी पड़ी ? रिसले, क्रुक्स, नेसफील्ड, पादरी एलविन्स तथा अन्य विदेशियों को हमारी जातियों तथा कुटुम्बों के इतिहास का अध्ययन क्यों करना पड़ा ? अपनी खोज तथा परिश्रम के लिए ये यूरो-

पीय विद्वान पूर्ण सम्मान के पात्र हैं परन्तु प्रश्न यह है कि इस दिशा में हमने क्या किया ?"[1]

रमाशंकर अवस्थी (१९५४)—प्रसिद्ध पत्रकार के अतिरिक्त अच्छे निबंध लेखक भी हैं। अवस्थी जी के निबंधों की शैली सरल और वर्णन का ढंग बड़ा कलात्मक रहता है। विषय, भाषा और शैली के प्रभाव से पाठक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में आपका जोड़ नहीं। मनसुखा के नाम से ये प्रायः छोटे-छोटे मनोरंजनात्मक निबंध लिखते रहते हैं। इनके निबंध तथा अन्य मजेदार गद्य-पद्य मिश्रित रचनाओं का संग्रह उन्नीसवाँ पुराण, एवं बीसवाँ पुराण नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। पं० प्रतापनारायण मिश्र के बाद कानपुर में उनकी धारा का सफल नेतृत्व अवस्थी जी ने ही किया। आपके शीर्षक भी मजेदार होते हैं। ग्रामोफोन, खट्टे अंगूर, लीडरी के उम्मेदवार, मिनिस्ट्री की कन्वेसिंग, स्वतंत्र उम्मेदवार, सेक्रेट्री चाहिये, आदि निबंध बहुत बढ़िया हैं। आपके हास्य और व्यंग्य में मधुरता की कमी नहीं रहती। अवस्थी जी उन हास्यव्यंग्य के लेखकों में से हैं, जिनके हास्य और व्यंग्य अपनी शुद्धता और शिष्टता से रंच मात्र पीछे नहीं, वरन् आनन्द की वृद्धि ही करते हैं :—

"लीडरी का धन्धा भी कुछ ऐसा ही है। लोग यह जानते हुए भी कि आग के अंगारों पर जलना सहज है पर लीडरो का निर्वाह कठिन है। उम्मेदवारी का फार्म भरे हुये अखबारों के दफ्तरों में चक्कर लगाया करते हैं। क्योंकि जिस तरह इक्का ताँगा और मोटरों की रजिस्ट्री चुंगीघर में होती है उसी तरह लीडरी का सार्टीफिकेट अखबारों के दफ्तर से ही मिलता है। परसों शाम को हम ठंढाई छान रहे थे। एक खासे "डील डौल वाले क्लीन शेव सज्जन छड़ी हिलाते हुये आ पहुँचे। हमको तो बहुत अखरा। थोड़ी छानते हैं, तिस पर कोई साझा लड़ाने आ पहुँचे, तो नशा कट जाता है। मगर, आव भगत तो करनी

१—कानपुर का इतिहास 'स्थानीय इतिहास की महत्ता' पृष्ठ ६

ही पड़ती है। हमने कहा आइए बस, तैयार ही है! वह बोले क्षमा चाहता हूँ। मैंने तो गाँधी जी के १६२० वाले आन्दोलन से ही गाँजा, चरस, अफीम, और भाँग का सेवन करना छोड़ रक्खा है।[1]

"ईश्वर झूठ न बुलवाये। और अपने राम को झूठ बोलने से है भी सख्त परहेज। बिला जरूरत तो आज तक हम कभी झूठ बोले भी न होंगे। अल्ला मियाँ ने चाहा तो इसी बहेबूदी के साथ उम्र की कड़ियाँ कटती चली जायँगी। बात हम सवा सोलह आने की ही कहेंगे जो आज नहीं तो कल जरूर सच निकलेगी।[2]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'(१६५४)—शर्माजी राजनीति और साहित्य क्षेत्र के यशस्वी व्यक्तियों में हैं। कवि, लेखक, पत्रकार और नेता के अतिरिक्त सहृदय मनुष्य के रूप में वे प्रसिद्ध हैं। 'प्रताप' साप्ताहिक और दैनिक तथा 'प्रभा' मासिक का संपादन किया। नवीन जी की भावुकता, अल्हड़ता और फक्कड़पन उनके गद्य में भी व्याप्त है। नवीन जी का गद्य संस्कृत से बोझिल है। उच्च कोटि के वक्ता होने के कारण उनके लेखों में ओज, प्रवाह और जनमन को पकड़ लेने की शक्ति विद्यमान है। किन्तु प्रायः आपका गद्य क्लिष्टता से मुक्त नहीं रह पाता। कहीं-कहीं तो वाक्य इतने जटिल और अस्पष्ट होते हैं कि उसमें पाठक उलझ कर रह जाता है। नवीन जी का गद्य साधारण पाठक के लिए दुरूह और दुर्बोध ही अधिक रहता है। शर्माजी की भाषा संस्कृत बहुल होकर भी कहीं-कहीं इस प्रकार जनपदीय बन जाती है कि आश्चर्य होता है। शब्दों के चिन्त्य प्रयोग भी आपके गद्य और पद्य में जहाँ तहाँ मिलते हैं। नवीन जी के लेख और निबन्ध पर्याप्त मात्रा में पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु

---

१ उन्नीसवाँ पुराण, लीडरी के उम्मेदवार पृष्ट ८

२—उन्नीसवाँ पुराण मिनिस्ट्री की कन्वेसिंग पृष्ठ १५

अभी तक कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। दर्शन, राजनीति, धर्म और इतिहास आपके प्रिय विषय हैं। नवीन जी की भावुकता उनके भाषण और कविताओं में ही नहीं लेखों में भी पूर्णरूपेण उभर आती है।

सत्यभक्त (१९५४)—जन्म और शिक्षा भरतपुर में हुई। हिन्दी के लेखक, पत्रकार तथा राजनीतिज्ञ। सन् १९१६ में महात्मागाँधी के सत्याग्रह आश्रम में रहे, और सन् १९२२ में राजस्थान के जनआन्दोलन में भाग लिया। साम्यवादी सिद्धान्तों के प्रचारक तथा दल के संगठन कर्ताओं में प्रमुख रहे।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध 'चाँद' के अतिरिक्त भविष्य, प्रणवीर, सतयुग का संपादन किया। स्फुट लेखों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों में -साम्यवाद का संदेश, साम्यवाद के सिद्धान्त, कार्लमार्क्स, गोरिल्ला, सम्वत दो हजार, मरने के बाद प्रमुख हैं। आजकल आप कानपुर में मासिक ज्ञान का सम्पादन करते हैं।

रमाकान्त त्रिपाठी (१९५७)—पं० लक्ष्मीकांत त्रिपाठी के अनुज एवं हिन्दी के सुलेखक हैं। म्योर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग से बी० ए० और अंग्रेजी में एम० ए० पास किया। पहले जोधपुर के जसवंत कालेज में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष थे फिर हर्बर्ट कालेज कोटा के प्रिन्सिपल नियुक्त हुये। आजकल जोधपुर कालेज के प्रिंसिपल पद पर प्रतिष्ठित हैं। अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी और संस्कृत के भी आप पंडित हैं। विदेशी तथा भारतीय साहित्य का आपने गहन अध्ययन किया है। स्फुट निबंध लिखने के अतिरिक्त कई पुस्तकें भी आपने लिखी हैं। सन् १९२३ में प्रकाशित 'हिन्दी गद्य मीमांसा' नामक पुस्तक हिन्दी गद्य की वैज्ञानिक विवेचना की प्रथम पुस्तक है। हिन्दी संसार में इस ग्रन्थ का प्रचार काफी है और उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के पाठ्य क्रम में भी अब तक चल रही है। इस ग्रन्थ का दूसरा संस्करण सन् १९३१ में और तीसरा १९४९ मेंहुआ। तीसरे संस्करण में इसका कलेवर काफी बढ़ गया।

इसमें संशोधन और परिवर्धन करके हिन्दी गद्य की नवीनतम समस्याओं तथा स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त आपकी 'पूर्ण वियोग', 'प्रतापनारायण मिश्र', कानपुर के कवि, महाराजा सर प्रतापसिंह, पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी शैली सरल और सीधी है :—

"महाराजा जसवंत सिंह जी मारवाड़ के राजवंश के एक रत्न थे। उन्होंने अपने जीवन काल में वीर योद्धा, राजनीतिज्ञ तथा साहित्यसेवी सभी रूपों में अच्छी ख्याति कमाई थी। मुग़ल सम्राट शाहजहाँ के तो वे एक परम विश्वास पात्र सलाहकार थे। इन पर बादशाह की बराबर कृपा दृष्टि रही और कई बार उन्हें वह लड़ाइयों में भी ले गया था। जब औरंगज़ेब ने अपने भाइयों की मारकाट मचाकर राज्य छीना तब उसे जसवंतसिंह जी की ओर से बहुत समय तक भय बना रहा। इसी से उन्हें अपने साथ बनाये रखने का उसनेप्रयत्न भी किया। अन्त में उसके राजपूती पराक्रम तथा राजनीतिक कुशलता से भयभीत होकर उसने उन्हें काबुल की लड़ाई में बहाने से भिजवा दिया।"[1]

मुंशीराम शर्मा 'सोम' ((१६५०))—कानपुर डी० ए० वी० कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, वैदिक साहित्य के पंडित तथा हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखकों में से हैं। साहित्य, धर्म और दर्शन आपके प्रिय विषय हैं। संस्कृत साहित्य—विशेषतः वेदांग के अतिरिक्त हिन्दी के सन्तों तथा भक्तों के साहित्य का आपका अध्ययन गहरा और विशद है। हिन्दी जगत में सूर साहित्य के विशिष्ट और अधिकारी विद्वानों में आपका स्थान है। 'सूर सौरभ' को ब्रज साहित्य मंडल ने अपने विषय का श्रेष्ठ ग्रन्थ स्वीकार करके पुरस्कृत किया। 'भारतीय साधना और सूरसाहित्य' आपका महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस प्रबन्ध पर आपको आगरा विश्व विद्यालय ने पी०एच०डी० की उपाधि से विभूषित किया है। इस ग्रन्थ को सन् १६५४ के श्रेष्ठ आठ ग्रन्थों में एक स्वीकार करके उत्तर प्रदेश सरकार ने एक सहस्र रुपये से पुरस्कृत किया। कवि, निबन्ध लेखक तथा समी–

१—हिन्दी गद्य मीमांसा तीसरा संस्करण पृष्ठ १७८

चक के रूप में शर्मा जी हिन्दी साहित्य जगत में प्रसिद्ध हैं। 'सोम' उपनाम से कविताएँ लिखते हैं। वेदों की ऋचाओं का सर्वोत्तम हिन्दी पद्यानुवाद आपने किया है। स्फुट निबन्धों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों का सृजन तथा सम्पादन किया है। इनमें कुछ विश्व विद्यालय के पाठ्य क्रम के लिए हैं, शेष हिन्दी साहित्य की स्थायी निधि हैं। 'महाभारत और श्रीकृष्ण' तथा 'प्रथमजा' आपके निबन्धों का संग्रह है। शर्मा जी की शैली संस्कृत गर्भित तथा व्यास पद्धति जैसी है। विषय की क्लिष्टता और अभिव्यक्ति की गुरुता के कारण आपकी शैली में मन्थरता का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण :—

चिन्तन और मनन के ऊपर भी निर्णयात्मिका बुद्धि का बल है। एक स्पष्ट निर्णय सूझते ही नाना संकल्प विकल्पों के तार नष्ट हो जाते हैं। मानव का मन विचारों, वितर्कनाओं और विविध कल्पनाओं का पुञ्ज है। कभी एक कल्पना से प्रेरित होकर यह एक दिशामें चलता है, तो दूसरे ही क्षण दूसरी कल्पना आकर इसे दूसरी ओर मोड़ देती है। कल्पना लहरियों के थपेड़े खाता हुआ मानव तब तक किनारे से नहीं लग पाता, जब तक वह निर्णयात्मिका बुद्धि रूपी नौका पर सवार होकर विवेकरूपी केवट का आश्रय ग्रहण नहीं कर लेता। अनेक विचारों में भी वह बल नहीं है जो इस बुद्धि के एक निश्चित प्रत्यय में निहित है। संशय का दोल निश्चय के स्तम्भ से ही शांत होता है। मन का वेग बुद्धि के बाँध से ही थमता है।[1]

सद्गुरुशरण अवस्थी (१६५८)—कानपुर बी० यन० यस० डी० कालेज के प्रिन्सिपल तथा हिन्दी जगत में वर्तमान युग के मेधावी साहित्य सृजन कर्त्ताओं में हैं। गम्भीर अध्ययन, सरल स्वभाव और बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार के रूप में आप प्रसिद्ध हैं। कविता, कहानी,

---

१—प्रथमजा चिन्तन की ओर पृष्ठ ५१

रेखाचित्र, निबंध, एकांकी, नाटक, समीक्षा के क्षेत्र में आपकी देन प्रमुख है। आपकी अनेक स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त प्रकाशित ग्रन्थ रूप में- तुलसी के चार दल, (दो भाग में गोस्वामी तुलसीदास के चार ग्रन्थों की समीक्षा) विचार विमर्श, हृदय ध्वनि, बुद्धि तरंग (लेख, निबंध सग्रह) हिन्दी गद्य गाथा (हिन्दी गद्य का इतिहास) महात्मा बुद्ध, त्रिमूर्ति (जीवनी) फूटा शीशा, एकादशी (कहानी संग्रह) मुद्रिका, दो एकांकी नाटक, नायक और नाटक (एकांकी नाटक संग्रह) मझली महारानी (नाटक) तथा भ्रमित पथिक (गद्य काव्य) प्रमुख हैं।

'तुलसी के चार दल' नामक ग्रन्थ को हिन्दुस्तानी अकादमी ने नायक और नाटक तथा 'बुद्धि तरंग' को उत्तर प्रदेश सरकार ने पुरुष्कृत किया है। विषय और भाषा की दृष्टि से आपके निबंध, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की याद बरबस दिला देते हैं। सौंदर्य, स्वभाव, शील, संस्कृति, प्रेम, युद्ध आदि निबंध इसी प्रकार के हैं। आपकी भाषा विशुद्ध, परिमार्जित तथा शैली ओज एवं प्रभावपूर्ण है। यद्यपि संस्कृत निष्ठ होने के कारण सहज बोधता की कमी खटकती है, किन्तु विषय की जटिलता देखते हुए इस प्रकार की शैली दोषपूर्ण नहीं कही जा सकती। जहाँ तहाँ सरल विषय को प्रतिपादित करते हुए भी अवस्थी जी ने भारी भरकम शैली का प्रयोग किया है। आपके निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता है भाषा के कवच में छिपी हुई सहज ज्ञान राशिः—

'स्वभाव'

"स्वभाव अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं। जिस व्यक्ति के स्वभाव अच्छे अधिक और बुरे कम होते हैं, उसे हम साधारण प्रकार से अच्छा मनुष्य कहते हैं और जिसमें बुरे स्वभावों की प्रधानता होती है, उसे बुरा व्यक्ति कहते हैं। ऊपर हमने स्वभाव के साधारण स्वरूप का अर्थ देते हुए उसे केवल मानसिक विकार कहा है परन्तु इस परिचयात्मक

स्वभाव के स्वरूप में हमें अर्थ में वेग और बोझ भरना पड़ेगा, अतएव हम इस वैयक्तिक स्वभाव को आभ्यंतरिक वेग सम्पन्न प्रेरणा कह सकते हैं, जो पोषक परिस्थिति को बाहर पाकर मानसिक स्थिति को उद्दीप्त कर देती है और व्यक्तित्व को झनझना देनेवाले सात्विक भावों को जागरित करती हुई ऐहिक तंतुओं को क्रियमाण करती है। विकार का रूप अधिक सक्रिय होकर शरीर से होता हुआ कभी-कभी कर्मेन्द्रियों तक उतर आता है।"[1]

उद्धृत गद्यांश अवस्थी जी की स्वाभाविक शैली का उदाहरण है। आपके आचार्यत्व की गरिमा और विचारशील लेखक की भावनाओं का प्रकटी करण मुख्यतः उपर्युक्त शैली में ही हुआ है परन्तु कुछ निबंधों में अवस्थी जी की भाषा कृत्रिम और अनावश्यक रूप से जटिल हो गई है। उदाहरण के लिए 'इक्का' शीर्षक निबंध को देखा जा सकता है।

किशोरीदास वाजपेयी—हिन्दी-संस्कृत के प्रकांड पंडित तथा सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री एवं वैयाकरण हैं। कवि और समीक्षक के अतिरिक्त गद्य की विशिष्ट शैली कार के रूप में वाजपेयी जी का प्रमुख स्थान है। हिन्दी भाषा और व्याकरण के क्षेत्र में वाजपेयी जी ने अकेले दम जितना काम किया है वह किसी संस्था से कम नहीं कहा जा सकता। वाजपेयी जी ने अपनी मौलिक सूझ बूझ से प्रेरित होकर जिन महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की, वे अपने क्षेत्र की भूमिका मात्र होकर भी अपने विषय की उत्तम कृतियाँ हैं। स्फुट निबंधों के अतिरिक्त प्रकाशित ग्रन्थों में, राष्ट्रभाषा का प्रथम व्याकरण, हिन्दी निरुक्त, अच्छी हिन्दी का नमूना, राष्ट्र भाषा का इतिहास, मानव धर्म मींमांसा, ब्रज भाषा का व्याकरण, साहित्य निर्माण, लेखन कला, रस और अलंकार, काव्य में रहस्यवाद, साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण तथा 'द्वापर की राज्य क्रान्ति, नामक नाटक प्रमुख है। राजनीति से संबंधित काँग्रेस

---

१ बुद्धितरंग पृष्ठ ४६-५०

का संक्षिप्त इतिहास, मि० ह्यूम की परम्परा, तथा स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री सुभाष चन्द्र बोस नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आप मराल' मासिक पत्र के प्रधान तथा 'चाँद' के सहायक सम्पादक भी रहे।

वाजपेयी जी की समीक्षा पद्धति प्रायः तीखी और खंडनात्मक है। परन्तु भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है। संस्कृत के पंडित होकर भी इतनी प्राँजल और प्रवाहपूर्ण हिन्दी लिखने वाले संभवतः ये अकेले हैं।

वाजपेयी जी हिन्दी गद्य में एक विशिष्ट शैली के प्रवर्तक भी हैं। शब्द योजना के अतिरिक्त स्थान स्थान पर मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करके रोचकता तथा चमत्कार उत्पन्न करने में वे अद्वितीय हैं। उदाहरणार्थः—

"वस्तुतः आलोचक में सह अनुभूति चाहिए। कवि ने जिस वस्तु को जिस दृष्टि से देखा है, आलोचक को उस वस्तु को देखने में वही हृदय रखना होगा, उस वस्तु की वैसी ही अनुभूति चाहिए। इसी सह अनुभूति या सहृदयता को लोगों ने सहानुभूति बना दिया है। कवियों पर दया करो और इनका सब तरह से समर्थन करो क्या यह ठीक है? आलोचना का क्षेत्र है या अनाथालय का कमरा?"[1] औरः—

"हिन्दुस्तानी ने डा० ताराचन्द्र का जो नहला फेंका था उस पर हिन्दी ने यह डा० झा के रूप में दहला मारा।"[2]

कृष्णशंकर शुक्ल—हिन्दी साहित्य के मान्य आलोचक, इतिहास लेखक, साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान तथा डी० ए० वी० कालेज में हिन्दी के अध्यापक हैं। काव्य सौंदर्य की तीव्र अनुभूति, शास्त्रीय नियमों की गहरी पैठ, साहित्यिक आस्था की दृढ़ता और चिंतन की मौलिकता ने आपको न केवल गम्भीर आलोचक प्रत्युत सरस और श्रेष्ठ निबंध लेखक बनाया है। 'केशव की काव्य कला' 'कविवर रत्नाकर' और 'आधुनिक हिन्दी

---

१ - साहित्य निर्माण पृष्ठ ६२

२ - अनुभव और संस्मरण पृष्ठ ८५

साहित्य का इतिहास'तथा 'हिन्दी साहित्य' की रूप रेखा आपके सुप्रसिद्ध प्रकाशित ग्रन्थ हैं। 'वेलिक्रिसन रुक्मिणी का हाल में सम्पादन भी किया है। आज कल आप सन्त साहित्य पर विशेष अध्ययन कर रहे हैं। आपकी भाषा अत्यन्त स्वच्छ तथा प्रवाहपूर्ण एवं शैली रोचक है। छोटे-छोटे वाक्यों में गम्भीर से गम्भीर विषय का प्रतिपादन तथा निर्णयात्मक पद्धति से विश्लेषण करने में आप अद्वितीय हैं। सुलझे तथा स्पष्ट विचार आपकी प्रमुख विशेषता है :—

"निर्मल जल के पुष्कर में तट के वृक्ष आदि प्रतिबिंबित होते हैं पर शैवाल, रज कण आदि से अच्छादित जल प्रतिबिंब ग्रहण नहीं करता। इसी प्रकार सजीव साहित्य में समाज की भावनाओं,कल्पनाओं विचारों, आकांक्षाओं आदि का प्रतिबिंब अवश्य पड़ता है। यदि ऐसा न हो तो समझना चाहिए कि वह साहित्य वैयक्तिक है, जनता का प्रतिनिधि नहीं। उसमें समाज नहीं है, वह समाज का नहीं है। साहित्यिक समाज में प्रचलित भावनाओं के साथ साहित्यिक विचारधारा का समन्वय प्रस्तुत करता है और जहाँ ऐसा समन्वय नहीं होता वहाँ इतिहास का कार्य यह निर्देश करना होता है कि किसी समय विशेष के साहित्य पर लोक में प्रचलित भावनाओं का प्रतिबिंब क्यों नहीं पड़ा। यद्यपि अलंकारिक रूप में साहित्य का उपमान पुष्कर कहा गया है, परन्तु सत्यता की रक्षा और साम्य में अधिक एकरूपता लाने के लिए यदि उसे निर्मल जल की सरिता कहा जाय तो अधिक समीचीन हो। साहित्य, सरिता की धारा की भाँति प्रवाहित होता रहता है, वह बँधे हुए पुष्कर सा नहीं होता।"[१]

सुन्दरलाल त्रिपाठी—विशिष्ट प्रतिभाशाली निबन्ध लेखक हैं। बस्तर में आप के पितामह व्यवसाय करते थे, किन्तु आप को उसमें लाभ नहीं मिला। परिस्थितियों की चक्की में पिसते हुए आप ने सरस्वती तथा माधुरी में काम किया। इनकी प्रकाशित

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १

प्रसिद्ध पुस्तक 'दैनन्दिनी' के सम्बन्ध में पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि "सुन्दर लाल जी की यह कृति हिन्दी के लिए एक सुन्दर उपहार है। इससे हिन्दी निबंध साहित्य की श्री वृद्धि हुई है। डायरी के साँचे में निबंध लेखन की यह नई शैली है। जो भविष्य के लिए उत्तम संभावनाएँ रखती है"। इनकी वर्णन पद्धति प्रभाव पूर्ण तथा भाषा प्रांजल है। प्रायः गद्य काव्य का आनन्द आता है। कलात्मक भाषा शैली में हृदय की सहज भावधारा का प्रकाशन दृष्टव्य है:—

"राधा की तन्मयता, मीरा की एक निष्ठता, वैष्णवकवियों की निविड़ता सुनता हूँ अध्यात्म का बोध है। सो चाहे जो हो किन्तु निर्विवाद तुम इन सबसे परे, ऊँचे, रहस्यमय सीमातीत, वर्णनातीत, वेदनामय, कोमल; सुन्दर दीख पड़ते हो साधक! एक निमिष के स्नैप के अवसर के तुम इतनी ममत्व वेदना से युक्त-इतने निविड़ शाश्वत हो"।

चन्द्रशेखर पाण्डेय—हिन्दी और संस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान तथा सनातन धर्म कालेज में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष और काव्य के मर्मज्ञ पंडित थे। उनकी जैसी विद्वत्ता की महत्ता के साथ निश्छलता और सरलता का संयोग विरले मनुष्यों में ही पाया जाता है। संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, संस्कृत गद्य मंजरी, काव्य दीपिका, इनके प्रकाशित ग्रन्थ हैं।

विश्वनाथ गौड़—सनातन धर्म कालेज में संस्कृत के प्राध्यापक तथा संस्कृत और हिन्दी साहित्य के मौन साधक हैं। स्फुट निबन्धों के अतिरिक्त 'पृथ्वीराज रासो पद्मावती समय' नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

श्यामनारायण कपूर (१९६५) वैज्ञानिक विषयों पर लिखने वाले प्रसिद्ध लेखकों में हैं। स्फुट निबन्धों के अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों के रचयिता हैं। प्रकाशित ग्रन्थों में साबुन विज्ञान (साबुन बनाने की वैज्ञानिक विधि एवं क्रियाओं का विशद परिचय और विवेचन) भारतीय वैज्ञानिक (देश के विश्व विख्यात १२ वैज्ञानिकों के जीवन तथा

उनके कार्यों का सविस्तार वर्णन) जीवट की कहानियाँ (संसार के अन्यतम साहसी व्यक्तियों के जीवन और उनके रोमांचकारी कार्यों का वर्णन) तथा आविष्कारों की कहानियाँ और विज्ञान की कहानियाँ हिन्दी में अपने-अपने क्षेत्र की अनूठी कृतियाँ हैं। विज्ञान जैसे रूखे विषय के वर्णन में भी आपने कलात्मक प्रतिभा के द्वारा अपनी शैली में उल्लेखनीयसरसता प्रदान की है। जीवन चरित्रतथा रोमांचकारी वर्णनों में सशक्त भाषा, प्रवाह की गति तथा सहज रोचकता इनका अपना गुण है।

बालकृष्ण बलदुआ (१६६८) प्रचार और प्रदर्शन से परे रह-कर अनवरत साहित्य साधना करने वाले साहित्यकार हैं। बी० ए० एल०एल० बी०करके कुछ दिनअमेठी नरेश के निजी सचिव रहे। बाद में अनेक कठिनाइयों के बीच मार्ग बनाकर अपने पूर्वजों से होने वाला तमाखू का व्यवसाय अपना लिया। कवि, कहानीकार, रेखाचित्र कार, निबंध लेखक एवं अनुवादक के रूप में हिन्दी संसार में परिचित हैं। अँग्रेजी के माध्यम से विश्व साहित्य का आपने गहन अध्ययन किया है। 'विश्व काव्य' नामक प्रकाशित पुस्तक के दो भागों में विश्व के सर्व श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं का, आपने गद्य पद्य मिश्रित अनुवाद प्रस्तुत किया है। आपके निबंध प्रायः पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। स्फुट निबंधों के अतिरिक्त 'समाजवादी विचारधारा' नामक पुस्तक में अट्ठाइस निबंध संगृहीत हैं। बलदुवा जी के निबंध आकार में प्रायः छोटे, चुस्त एवं भावना प्रधान होते हैं। मार्मिकता इनकी शैली का विशेष गुण है :—

"अभी-अभी रिमझिम रिमझिम वर्षा हो चुकी है। ये हरे-हरे पोखर ये हरे-हरे मैदान और ये हरे-हरे पेड़-कितने शांत! कितने शीतल! कितने मुदमय! यह भगवान की देन थी-मानव के लिए, एक से उपभोग के लिए। भगवान ने इन्हें दिया था जिससे उसके प्यारों का हर्ष बढ़े—शांत और शीतल! इसीलिए उसने इन्हें मुक्त रक्खा-बंधन हीन, सर्वदा स्वतंत्र,

पूर्णतः समदर्शी। पर मानव ने इनका दुरुपयोग किया। कुछ ने अनेक का सुख हड़प लिया। मैदानों को घेरा गया; पेड़ों को गिना गया, और उन पर अधिकार की छाप लगाई गई। वे ही पोखर, वे ही मैदान वे ही पेड़-जो सबके लिए थे कुछ की संपति बने, और बहुतों के लिए उनकी ओर निगाह उठाना भी गुनाह करार दिया गया।"[1]

ज्योतिर्मयी ठाकुर (१९७०) सुप्रसिद्ध साहित्य सेवी श्री केशव कुमार ठाकुर की पत्नी और हिन्दी की सुपरिचित लेखिका हैं। स्त्रियोपयोगी साहित्य इन्होंने बहुत लिखा है। इनकी लिखी हुई कई पुस्तकें घरों में बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय नारियों के जागरण और ज्ञान वर्द्धन में जितना योग श्रीमती ठाकुर ने दिया है, उसका मूल्यांकन सहज नहीं। हिन्दी साहित्य में नारी साहित्य के अभाव को आपने बड़े अंशों में दूर किया है। स्त्रियों के लिए उनकी रुचि के विषय और बोलचाल की सरल भाषा में आपने बड़े-बड़े ग्रन्थ दिए हैं सन् १९३५ में प्रयाग से स्त्रियोपयोगी श्रेष्ट मासिक पत्रिका 'कमलिनी' का सम्पादन और प्रकाशन भी दो ढाई वर्ष तक किया। स्फुट कहानियाँ तथा मधुबन नामक एक उपन्यास भी आपने लिखा है। अन्य प्रकाशित महत्वपूर्ण पुस्तकों में, खेल और व्यायाम, लड़कियों को क्या जानना चाहिए, लड़कियों का जीवन, नवीनदम्पति, स्वामी के पत्र, स्त्री सौंदर्य, सौभाग्यवती, आदर्श पत्नी, घर की लक्ष्मी, स्त्री शिक्षा, स्त्रियों के कर्तव्य, पत्नी के पत्र, आदर्श पाक शिक्षा, पाक विज्ञान, आहार और आरोग्य, सरल बुनाई, संतान-निग्रह-क्यों और कैसे, प्रमुख हैं।

सत्यनारायण पाण्डेय—सनातन धर्म कालेज में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष तथा हिन्दी के कवि तथा लेखक हैं। स्फुट प्रमुख लेखों के अतिरिक्त, कृष्ण काव्य की परम्परा तथा सांख्य कारिका, नामक

---

१ समाजवादी विचार धारा पृष्ठ १००

पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। 'कश्मीर विजय' काव्य ग्रन्थ है। बहुत से गीतों की रचना भी की है।

प्रेमनारायण शुक्ल (१६७०) डी० ए० वी० कालेज में हिन्दी प्राध्यापक तथा प्रमुख आलोचक हैं। हिन्दी साहित्य में विविधवाद शीर्षक प्रबन्ध पर इन्हें आगरा विश्वविद्यालय से पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई; तथा उत्तर प्रदेश सरकार ने इसे पुरुष्कृत किया। इस ग्रन्थ में शुक्ल जी ने प्रचलित सभी वादों का परिचय और विवेचन करते हुए प्राचीन साहित्य में वादों के स्वरूप का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया है; तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य के विभिन्न वादों का खंडन करते हुए एक मात्र मानव हित वाद की स्थापना की है। 'भारतेन्दु की नाट्यकला' नामक एक और पुस्तक इनकी प्रकाशित हो चुकी है। विवेचन शैली में व्याम पद्धति का प्रभाव दिखाई देता है। गम्भीरता के साथ मंथरता का योग इनके गद्य का स्वभाव है :

"आधुनिक काव्य के संबंध में यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जहाँ कहीं भी कवि ने अपनी आत्माभिव्यक्ति में मिलन और वियोग के गीत गाये वहीं आलोचकों ने उन्हें अध्यात्मिक जामा पहिना दिया और रचनाकार को रहस्यवादी होने का प्रमाण पत्र प्रदान कर दिया। इस कथन से हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में रहस्यात्मक रचना का पूर्ण अभाव है। कुछ ऐसी विशिष्ट रचनाएँ अवश्य हैं जिनमें हमें रहस्यानुभूति का दर्शन होता है। हाँ, हम इतना अवश्य कहेंगे कि इस दर्शन में हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क की झाँकी अधिक है।"[1]

कानपुर के अन्य विद्वान लेखकों में प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रो० शिवाधार पाण्डेय द्विवेदी युग के लेखक हैं। आपकी आलोचना पद्धति तर्क पूर्ण एवं चुटीली होती है। गम्भीर अध्ययन और स्पष्ट विचार

---

१ हिन्दी साहित्य में विविधवाद पृष्ठ ४३६

आपकी प्रमुख विशेषता रही है। 'चेतना' नामक मासिकपत्रिका भी आप प्रयाग से निकालते हैं। पण्डित कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' अच्छे कवि तथा वीणा जैसी पत्रिका का सम्पादन कर चुके हैं। पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल ने एक वर्ष तक सरस्वती का सम्पादन किया। तथा स्फुट निबन्ध लिखे हैं। शुक्ल जी ने इधर कुछ संस्मरण लिखे जो रेडियोंसे प्रसारित हुए हैं। पं० बैंकटेशनारायण तिवारी सुप्रसिद्ध पत्रकार और हिन्दी अंग्रेजी के अच्छे लेखक हैं। स्वर्गीय श्री हरिशंकर विद्यार्थी अच्छे पत्रकार के अतिरिक्त हिन्दी के प्रतिभाशाली गद्य लेखकों में से थे। प्रताप में उनके कई अच्छे निबंध प्रकाशित हुये थे। स्वर्गीय श्यामविजय पाण्डेय कवि लेखक और पत्रकार थे। इनकी कई छोटी-छोटी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। इतिहास और राजनीति से इनका विशेष लगाव था। इन्होंने 'शनिश्चर' नामक पाक्षिक पत्र भी निकाला था।

अन्य पुराने लेखकों में पं० बद्रीदत्त शर्मा, शिवली के पं० हनुमानप्रसाद त्रिपाठी तथा पं० कैलाशनाथ बाजपेयी, ने धार्मिक विषयों पर काफी लिखाथा। भगवानपुर के पं० गौरीशंकर भट्ट सुलेखाचार्य ने सुलेख कला पर कई पुस्तकें लिख कर प्रकाशित की थी। स्वर्गीय महाशय काशीनाथ जीने कई पुस्तकें लिखी तथा कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजलि का बहुत अच्छा अनुवाद करके प्रकाशित किया था। श्री शिवव्रतनारायण जी हुतात्मा गणेशशंकर विद्यार्थी के अग्रज हैं और विभिन्न विषयों पर लेख लिखते रहते हैं। पं० कृष्ण विनायक फड़के जी ने बाल मनोविज्ञान पर काफी लिखा है। प्रो० हरनारायण बाथम ने विज्ञान सम्बन्धी लेख तथा पुस्तकें, डा० प्रसादी लाल झा ने बनस्पति शास्त्र एवं आयुर्वेद पर काफी मात्रा में लिखा है। पं० भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने 'संसार' मासिक तथा अपने संपादित ग्रन्थों की भूमिका स्वरूप कई बहुत अच्छे लेख लिखे हैं। विभिन्न विषयों पर अन्य प्रतिभा सम्पन्न लेखकों में पं०

रामदुलारे अवस्थी, श्री देवीदत्त मिश्र, पं० भूदेव शर्मा, श्री छैल बिहारी दीक्षित कंटक, श्री शिवनरायण टंडन, श्री अर्जुन अरोड़ा, श्री देवी प्रसाद धवन, श्रीमती सीतादेवी धवन, बाबू प्रतापनारायण श्रीवास्तव, श्री श्यामसुन्दर त्रिपाठी, श्री सोमनाथ शुक्ल, श्री धर्मनाथ शास्त्री श्री बृजनारायण बाजपेई, श्रीमती लीला कपूर, श्री पुरुषोत्तम कपूर श्री रामआसरे का नाम प्रमुख है। श्री रामदुलारे त्रिवेदी ने चन्द्रशेखर आजादसरदार भगतसिंह, काकोरी के दिल जले और आजादी के परवाने, नामक पुस्तकें लिखीं हैं।

नयी पीढ़ी के गम्भीर साहित्य विवेचक एवं लेखकों में लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० भगीरथ मिश्र कानपुर के उन व्यक्तियों में से हैं, जिनका नाम हिन्दी आलोचना क्षेत्र की अगली पंक्ति में लिया जाता है। 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास' तथा अन्य कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। गहन अध्ययन शील श्री ओंकारशंकर विद्यार्थी प्रायः कम लिखते हैं, परन्तु जो स्फुट निबंध उनके प्रकाशित हुए हैं उनसे इनकी साहित्यिक प्रतिभा का अनुमान किया जा सकता है। इनके अलावा डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा, प्रो० श्रीनारायण अग्निहोत्री, प्रो० रमानाथ त्रिपाठी, श्रीब्रजलाल वर्मा, श्रीहरस्वरूपमाथुर, श्रीरामस्वरूप चतुर्वेदी श्री ललितमोहनअवस्थी, श्री देवीशंकर अवस्थी, श्री सिद्धनाथ मिश्र, का नाम भावी आशा के रूप में लिया जा सकता है जिनका स्थान कल के हिन्दी आलोचना क्षेत्र में होगा।

उपर्युक्त नामों में कुछ लोगों का काम सामने आचुका है, जिसे देखकर कहा जासकता है कि वे अधिकार पूर्वक आलोचना की सीढ़ी पर पैर रखरहे हैं। डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा ने अपनी थीसिस का हिन्दी अनुवाद 'हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव' नाम से प्रकाशित कराया है। श्रीनारायण अग्निहोत्री ने कई उत्तम निबंध लिखे हैं। प्रो० रमानाथ त्रिपाठी के लेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रयाग विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं और

रिसर्च कर रहे हैं। इन्होंने शरद के नारी पात्रों का विधिवत् गम्भीर अध्ययन ग्रन्थ रूप में प्रस्तुत करके हिन्दी आलोचना के नये पथ पर पैर रक्खा है। श्री ललित मोहन अवस्थी ने 'आज के कवि' नामक पुस्तक लिख कर नये कवियों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है। श्री देवीशंकर अवस्थी के कुछ निबंध प्रकाशित हो चुके हैं तथा सन् १९५४ की कविताओं का संकलन और सम्पादन श्री अजित कुमार के साथ किया है। श्री गोविन्दप्रसाद त्रिपाठी 'अनल' के निबंधों का संग्रह(मेरे तीन निबंध) नाम से प्रकाशित हुआ है। श्री बृजलाल वर्मा की नूरजहाँ समीक्षा, और कामायनी समालोचन श्री हरस्वरूप माथुर की कथाकार जयशंकर प्रसाद, मृगनयनी समीक्षा, कर्मभूमि समीक्षा नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

अन्य विविध विषयों पर हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों में श्री नौलखा (तर्क शास्त्र) लाला कृष्णकुमार (दर्शन शास्त्र) प्रो० मदनमोहन पाण्डेय श्री हृदयनारायण सम्भरवाल, श्री रामगुलाम गुप्त, श्री कालीशंकर भटनागर, श्री मोहनलाल विद्यार्थी(इतिहास और राजनीति)श्री कालका प्रसाद भटनागर (अर्थशास्त्र) श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद श्री वास्तव, श्री एस० आर रतन, श्री अम्बादत्त, श्री ए० पी गौड़, श्री बलवानसिंह (वाणिज्य) श्री श्रीप्रकाश (रसायन) श्री निर्विकारशरण (भूगोल) श्री कैलाशनाथ शर्मा और शम्भूरत्न त्रिपाठी (समाज शास्त्र) प्रमुख हैं। इन महानुभावों के ग्रन्थ प्रायः उच्च शिक्षाओं के पाठयक्रम में सम्मिलित हैं। और इस प्रकार ये लोग विद्यार्थी समाज तथा उच्च कक्षाओं में हिन्दी प्रचार के कार्य में महत्वपूर्ण योग तो देही रहे हैं प्रत्युत राष्ट्र भाषा हिन्दी के अभाव की पूर्ति में जुटे हुये हैं।

डा० हीरालाल ने प्राकृतिक चिकित्सा पर कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित कराये हैं।

अष्टम अध्याय

कथासाहित्य

हिन्दीकथा साहित्य आयु की दृष्टि से अभी एक शताब्दी का भी नहीं है। इंशा की 'रानी केतकी की कहानी भाषा की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, बजाय एक कथा के। अँग्रेजी भाषा और साहित्य के सम्पर्क होने पर इस क्षेत्र में युग परिवर्तन हुआ। बँगला का स्थान भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। हिन्दी कविता की तरह हिन्दी कथा साहित्य ने भी अपने शृंगार की सामग्री पहले बँगला के माध्यम से ग्रहण की।

बँगला के कई उपन्यास और कहानियों का अनुवाद भारतेन्दु युग में हुआ था और तबसे निरंतर बँगीय कथा साहित्य हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में अनूदित होकर आया। फिर अँग्रेजी से सीधा संबंध स्थापित हुआ और हिन्दी का कथा अंग ही नहीं प्रत्युत सभी अंग उससे प्रभावित हुए। अँग्रेजी भाषा के माध्यम से कई प्रमुख रूसी और फ्रेन्च लेखकों की कृतियाँ हिन्दी में आईं और उनके विचार और टेकनीक से हिन्दी कथा साहित्य प्रभावित हुआ। टाल्सटाय, चेखव, गोर्की, मोपासाँ, इनमें प्रमुख थे।

व्याख्या—कथा एक विशिष्ट गद्य-कृति है, और उसकी व्याख्या में कहा जा सकता है, इस प्रकार की गद्यात्मक कृति जिसमें औत्सुक्य, आनन्द और मनोरंजन का समावेश हो। कथा का प्रमुख तत्व मनोरंजन है। यद्यपि कथा साहित्य के निरंतर विकास ने कथा का उद्देश्य केवल मनोरंजन तक सीमित न रख कर उसकी परिधि का विस्तार कर दिया है। फिर भी मनोरंजन उसका मुख्य तत्व है। इसे प्रत्यक्ष भले ही स्वीकार न किया

जाय ; अप्रत्यक्ष रूप से उसे भुलाया नहीं जा सकता । मनोरंजन को पूर्णरूपेण समाप्त करके यदि कोई कथा लिखना चाहे तो वह कृति निश्चय ही ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक या अन्य किसी भी विषय पर लिखा गया लेख या प्रबन्ध होगा कहानी अथवा उपन्यास नहीं ।

युगों से कथा की एक शैलीप्रचलित चली आ रही है और आज भी बालकों तथा अशिक्षित और अर्धशिक्षित समाज में उस शैली का अधिपत्य है । भारत के सभी ग्राम्य क्षेत्र के निवासियों में रवीन्द्र, प्रेमचन्द्र शरद आदि की कहानियों की शैली भलेही न मिले परन्तु उनकी कथाओं में वस्तु, उद्देश्य, और वर्णन शैली जितनी रोचक मिलती है वह किसी भी प्रकार शिक्षित वर्ग में प्रचिलित शिष्ट कहानियों से कम नहीं । एक था राजा या "एक दिन की बात है" से शुरू होकर ये कथायें 'जैसे उनके दिन बीते वैसे सबके बीतें और "भगवान ये दिन किसी को न दिखाये" से समाप्त हो जाती हैं । बालकों को सुनाई जाने वाली कहानियाँ, आज भी नानी और दादी की शैली नहीं छोड़ सकीं और देश का बहु संख्यक समाज आज भी अपनी कथाओं में इतिवृत्तात्मकता के साथ अपनी विचारानुभूति का सम्मिश्रण करके अपने कथाक्रम को चलाए जा रहा है । यद्यपि शिक्षा के प्रचार प्रसार और विदेशी साहित्य के विस्तृत उपवन में हिन्दी भी स्वच्छन्द विचरण करके नई नई उद्भावनाओं का संकेत दे रही है ।

कथा की प्रमुख विशेषता यह समझी जाती है कि वह पाठक या श्रोता पर बोझ न बने वरन् उसकी उत्सुकता को बनाए रखकर सरलता के साथ वर्ण्य वस्तु को स्पष्ट करके रखदे । कथा साहित्य, पंडित या मुल्लाओं का उपदेश, राजनीतिक नेताओं और समाज सुधारकों का व्याख्यान, वैज्ञानिकों का भौतिक विवेचन, भोगियों की वासनाओं का प्रदर्शन, देश और समाज के उत्थान पतन की विवेचना और दार्शनिकों की उड़ान मात्र नहीं है । यद्यपि कथा साहित्य में उपर्युक्त सभी बातों

का समावेश होता है। सभी विषय वस्तुओं और घटनाओं को लेकर कथा लिखी या कही जाती है। कोई घटना, कोई भी विषय, कोई भी क्षेत्र उससे वर्जित नहीं हैं; परन्तु इस सभी विषयों पर कथात्मकता की चादर चढ़ाये बिना सफल कथा कृति बनाना सम्भव नहीं होता।

विकास—शिक्षा का विस्तार-होने से वर्णन और कथन का तरीका बदल गया है, फिर भी मनोरंजन और शैली का महत्व कथा से अलग नहीं हो सकता। प्रायः देखने को मिलता है कि छोटी से छोटी घटना को लेकर कहानी की सृष्टि हो जाती है और कथन की विशेषता के अनुसार रचना अच्छी या बुरी कहलाने लगती है।

प्रारम्भिक कथा साहित्य में उपदेश की प्रधानता रही और फिर अनुवादों का प्राधान्य रहा। भारतेन्दु युग के कई लेखकों ने इस ओर ध्यान दिया था। पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० प्रताप नारायण मिश्र, लाला-श्रीनिवास दास का नाम प्रमुख रूप से इस विषय में लिया जा सकता है। मिश्र जी ने कथा साहित्य को पुष्ट करने के लिये बँगला के कई उपन्यासों का अनुवाद किया। भट्ट जी और लाला जी ने इस क्षेत्र में सौ अजान और एक सुजान' और परीक्षा गुरु की रचना द्वारा प्रयोगात्मक कदम रक्खा।

द्विवेदी युग के उदय तक मौलिक रचनाएँ कम किन्तु अनुवाद अधिक हुए। सरस्वती के प्रकाशन के साथ हिन्दी कथा साहित्य में नवोन्मेष हुआ। द्विवेदी जी के सम्पादन काल में हिन्दी कथाकार के रूप में कई अच्छी अच्छी प्रतिभाएँ सामने आईं। मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं के भी अच्छे अच्छे अनुवाद प्रकाशित हुए। अंग्रेजी, फ्रेन्च और रूसी कथाकारों से हिन्दी का परिचय हुआ। बँगला मराठी और गुजराती से भी अच्छा सम्बन्ध इसी युग में स्थापित हुआ। मौलिक कथाकारों में श्री किशोरी लाल गोस्वामी, बंगमहिला, लाला

पार्वती नन्दन इत्यादि का नाम प्रमुख है। पंडित रूप नारायण पाण्डेय ने वंग कथा साहित्य का उत्तम और सफल अनुवाद करके हिन्दी जगत को प्रदान किया। द्विवेदी युग के अन्य कृती कथाकारों में श्री प्रेमचन्द, कौशिक जी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रसाद, पं० ज्वाला दत्त शर्मा, और राजा राधिका रमण सिंह दूसरी पंक्ति का नेतृत्व करने वाले श्री चतुर सेन शास्त्री, श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी, श्री चन्डीप्रसाद हृदयेश, श्री जैनेन्द्र, निराला, उग्र, प्रतापनारायण श्रीवास्तव आदि।

प्रारम्भ में प्रतापनारायण मिश्र ने बँगला के तीन उपन्यासों का अनुवाद करके कथा साहित्य का दिशा निर्देश किया और पं० बालकृष्ण भट्ट, लालाश्रीनिवासदास, हरिऔध और देवकी नन्दन खत्री ने उद्देश्य मौलिकता, भाषा और रोचकता प्रदान की। आगे चलकर प्रेमचन्द्र ने अपने विशाल अध्ययन और तीव्र अनुभूतियों के द्वारा हिन्दी कथा-साहित्य को पूर्ण ही नहीं प्रत्युत महत्वपूर्ण सिद्ध कर दिया। प्रेमचन्द्र जी कानपुर में कई वर्ष तक डिप्टीइंसपेक्टर आफ स्कूल्स और बाद में मारवाड़ी विद्यालय के प्रधानाध्यापक के रूप में रहे। कानपुर से प्रकाशित उर्दू मासिक "ज़माना" में उनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। प्रेम चन्द्र जी की कीर्ति की प्रथम रश्मि कानपुर में प्रकाशित हुई। उनकी सर्व प्रथम पुस्तक "सोजे-वतन" में उर्दू की पाँच कहानियाँ संकलित थी। हिन्दी की भी अनेक कहानियों के अतिरिक्त उनका एक उपन्यास यहीं लिखा गया।

कानपुर का योग—कथा साहित्य में कानपुर की देन कम नहीं है। कौशिक जी के अतिरिक्त पं० भगवती प्रसाद बाजपेयी, श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बाबू भगवती चरण वर्मा का नाम चोटी के कथाकारों में गिना जाता है।

वर्मा जी हिन्दी के अन्यतम कलाकार हैं। और कथाकार के रूप में वे कभी भुलाये नहीं जा सकते। उनकी कई कहानियाँ और कई उपन्यासों में एक चित्रलेखा ही इतनी श्रेष्ठ कृति है, जो हिन्दी कथा के

भाल पर सुहाग-बिन्दी के समान शोभित है। चित्रलेखा की कोटि में रखने वाले उपन्यासों की संख्या आज भी हिन्दी कथा साहित्य में दो चार ही है। वर्मा जी की साहित्य साधना का सूत्रपात कानपुर में हुआ और यहीं उनके साहित्यकार का निर्माण भी हुआ। प्रताप, प्रभा और हिन्दी मनोरंजन उनकी उन्नति के सोपान बने। आजकल वे कानपुर के लिए परदेशी हैं। कथा साहित्य का रथ जिन मोड़ों से होकर चलता रहा है और जिन प्रवृत्तियों से वह प्रभावित हुआ है उसके संचालन में कानपुर के कलाकारों का भी प्रमुख हाथ है।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक (१९४८-२००२)

द्विवेदी युग के उत्तर काल में यदि कथा साहित्य की त्रिमूर्ति का निर्वाचन किया जाय तो वह प्रेमचन्द-प्रसाद और कौशिक की होगी। प्रसाद जी के साहित्य की धारा तो सर्वथा अनूठी रही और सभी क्षेत्रों में वे अतीत के प्रतिनिधि बनकर आये। प्रेमचन्द और कौशिक ने वर्तमान को सम्हाला। किन्तु दोनों में एक अन्तर है। प्रेमचन्द देश के निम्न मध्यवर्ग तथा ग्रामीण समाज के सबल छविकार; और कौशिक-जी नगर संस्कृति तथा उच्च मध्य वर्गीय समाज के चित्रकार थे। प्रसाद-जी ने अपने हिस्से में धूमिल चित्रों को रंग भरकर सजाने और विस्मृत को स्मरण कराने का काम लिया। प्रेमचंद ने देश की वर्तमान समस्याओं तथा आर्थिक विषमता से पीड़ित समाज को अपना क्षेत्र चुना, और कौशिक जी ने सामाजिक दुरवस्था को अपना लक्ष्य बनाया। प्रसाद जी की रचनाओं में भूतकाल का वैभव जगमगाता है, प्रेमचंद में बिखरे, टूटे, दुःखी, प्रताड़ित, गुलाम किन्तु साहसी भारत साकार हो उठा है, और कौशिक जी में उच्च मध्य वर्गीय, जमींदार और बाबू सभ्यता के प्रतिनिधि भारतीयों का चित्र खिंच आया है। प्रेमचंद और कौशिक के जीवन के जो अंतर है वही उनके साहित्य का है। प्रेमचंद स्वयं अपने निर्माता थे अतः उनका जीवन क्षेत्र व्यापक, गहरा, संवेदनशील और तीव्र था। कौशिक जी एक साधन सम्पन्न परिवार में गोद आये थे; अतः उन्हे

सामाजिक संबंधों, रीतिरिवाजों तथा रूढ़ि संस्कारों का ही अच्छा परिचय मिल सका। प्रेमचंद पूरे देश को देख सकने में समर्थ थे और कौशिक जी एक समाज के गहन अध्येता थे।

कौशिक जी ने लगभग चारसौ कहानियाँ और तीन उपन्यास लिखे। मणिमाला, कल्लोल, चित्रशाला, पेरिस की नर्तकी, (कहानी संग्रह) तथा संघर्ष, भिखारिणी और माँ (उपन्यास) प्रकाशित हो चुके हैं। कौशिक जी को ज़िंदगी के उतार चढ़ाव देखने का अवसर नहीं मिला; परन्तु उनकी प्रतिभा और हृदयानुभूति इतनी गहरी और तीव्र थी कि वह अभिव्यक्ति का माध्यम बनने पर, श्रेष्ठ कलाकृति के रूप में बन जाती। कौशिक जी ने वर्तमान युग को अपना क्षेत्र अवश्य चुना लेकिन न तो उन्होंने देश के सर्वहारा वर्ग का चित्रण किया और न राजनीतिक आन्दोलन के प्रचार का माध्यम अपने साहित्य को बनाया। सभी झगड़ों से दूर वे शुद्ध रूप से कलाकार थे और समाज की चिंतन धारा को प्रभावशाली ढंग से मोड़ने और बढ़ाने में उन्होंने योग दिया। सामाजिक परिस्थितियाँ और शहरी सभ्यता को बड़ी गहराई के साथ उन्होंने देखा था। स्वयं सुखी होते हुए भी उन्होंने देश के निम्न वर्ग और मानवता के प्रति अपने दायित्व से आँखें नहीं चुराईं।

मानवता, प्रेम, स्वस्थ चिंतन और सहिष्णुता कौशिक जी के साहित्य का आदर्श था। पारिवारिकता; विचारों की ऊहापोह, मानवीय प्रक्रियाओं तथा उत्थान पतन की सजीवता, कौशिक जी की कृतियों में सफलता के साथ चित्रित हुई हैं। जड़ता के विरुद्ध प्रहार, यथार्थ का मूल्याँकन और आदर्श की प्रतिष्ठा, कौशिक जी का साहित्यिक लक्ष्य रहा। कुरूपता का चित्रण करते हुए भी प्रवृत्ति की निम्नता उनमें नहीं रही। असुन्दर को अपनी कला के माध्यम से सुन्दर बनाने की क्षमता उनमें विद्यमान थी।

कौशिक जी ने मानव जीवन की एकाँगी तस्वीर कभी नहीं खींची, प्रत्युत उसके पूर्णत्व की ओर वे अधिक चेष्टावान रहे। आदर्शवादी होकर भी यथार्थ से वे दूर नहीं गये। सम्पन्न होकर भी विपन्न के

प्रति अनुदार नहीं बने। शांति प्रिय होकर भी क्रान्ति के अवसर को जान बूझकर पीछे नहीं ढकेला और प्राचीन संस्कृति के उपासक होते हुये भी अन्ध विश्वासों का समर्थन नहीं किया। वैज्ञानिक विवेचक होकर कौशिक जी ने सत्य को टुकड़ों में बाँटकर देखने का प्रयास नहीं किया। उनकी कृतियों में छिपाव और दुराव नहीं है। वे पाठक के प्रति उत्तरदायी औरकला के प्रति ईमानदार रहे।

कौशिक जी अपनी कहानियों में जितने सफल हैं उतने ही उपन्यासों में भी। कथानक, घटना संयोजन, कथोपकथन, मनोविश्लेषण, चरित्र चित्रण और वर्णन शैली आदि तत्वों का सम्यक विकास उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। कौशिक जी की रचनाएँ व्यर्थ का बोझ नहीं जान पड़तीं। उनके पात्र कठपुतली नहीं हैं वरन् जीवित जाग्रत समाज के अंग और हमारे आपके आसपास चलने फिरने वाले हैं।

कौशिक जी ने जितना भी लिखा, सोद्देश्य लिखा। साहित्य को उन्होंने मानव के उच्चादर्शों भावधारा के रूप में देखा। मनुष्य के सत् और असत् दोनों ही पक्षों का सफल चित्रण करके जहाँ उन्होंने अपने कलाकार की तटस्थता और सहृदयता का परिचय दिया है, वहीं लोकरंजन के साथ लोक कल्याण की प्रवृत्ति का सामंजस्य करके समाज के प्रति कलाकार के उत्तर दायित्व का निर्वाह भी किया है। वर्णन में कृत्रिमता और पात्रों में अस्वाभाविकता का दोष कौशिक जी में प्रायः नहीं मिलता।

चरित्र चित्रण में कौशिक जी अत्यंत सफल हुए हैं। माँ और भिखारिणी उपन्यास तथा ताई, रक्षाबंधन, हिंदुस्तानी, जैसी कहानियाँ उनकी सर्वोत्तम कृतियाँ हैं। चरित्र विश्लेशण में कौशिक जी का लक्ष्य निरंतर ऊर्ध्व मुखी रहा। इनकी अनुभूति की गहराई का ही यह प्रभाव है कि उनके पात्रों को सहज भुलाया नहीं जासकता। एकबार पढ़ लेनेके बाद 'ताई'कोऔर भिखारिणी की नायिका 'जस्सो' को भूल जाना पाठक के लिए सरल नहीं है। भावपूर्णकहानियाँ भी उन्होंने बहुत अच्छी

लिखी हैं। फाँसी इस दृष्टि से बहुत अच्छी रचना है। सभी कहानियों में कौशिक जी का सर्वश्रेष्ठ रूप यद्यपि नहीं उभरा क्यों कि बहुत सी कहानियाँ जल्दी में लिखी गईं जान पड़ती हैं। परन्तु आधिकांश कहानियाँ और प्राय: सभी उपन्यास बहुत अच्छे हैं। कौशिक जी ने मानवीय दुर्बलताओं का चित्रण अवश्य किया परन्तु कुप्रवृतियों को उभाड़ने की चेष्टा नहीं की और इसी लिए उनके पात्र मनुष्य हैं। उन्होंने अपने पात्रों को देवता या राक्षस नहीं बनने दिया। साहित्य को प्रेरणा का स्त्रोत बनाकर वे समाज को उन्नत और सुख की ओर बढ़ाने में तत्पर रहे। वे सब कुछ अपना आँख से देखने सुनने के आदी थे अतः उनकी कला में प्राण हैं, प्राणों में चेतना है और चेतना में वह शक्ति है जो एक से विकसित होकर अनेक का आकार ग्रहण करती है। इसी लिए सीमित क्षेत्र में रहकर भी कौशिक जी प्रेमचन्द युग के दूसरे कथाकार हैं; जो साहित्य की गौरव रक्षा में अपना महत्व पूर्ण योग दे सके।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी(१८५६)—कानपुर जिले के मंगलपुर ग्राम में इनका जन्म हुआ। मिडिल तक शिक्षा प्राप्त कर पहले ग्राम पाठशाला में अध्यापक रहे फिर लाइब्रेरियन और इसके बाद मासिक 'संसार' के सहायक संपादक तथा संपादक रहे। वाजपेयी जी उन साहित्य सेवियों में से हैं जिनका सब कुछ साहित्य ही बन जाता है। साहित्य इनके लिए शौक की वस्तु नहीं प्रत्युत जीविका का माध्यम है। वाजपेयी जी ने आर्थिक कठिनाइयों की चक्की में घिसते हुए और उच्च शिक्षा के अभाव में भी जितना काम किया है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कवि, नाटककार, लेखक, सम्पादक और कथाकार के रूप में हिन्दी संसार में वे परिचित हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अबोहर अधिवेशन में साहित्य-परिषद के अध्यक्ष चुने गये। कई वर्ष तक बम्बई में फिल्मी कथानक तथा संवाद लेखन का कार्य भी किया। आप के कई उपन्यास तथा कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशित ग्रन्थों में-प्रेमपथ, मीठी-चुटकी, अनाथ पत्नी, त्यागमयी, लालिमा, प्रेमनिर्वाह, पतिता की–

साधना, पिपासा, दो बहनें, निमंत्रण, गुप्तधन, चलते चलते, पतवार, मनुष्य और देवता, धरती की साँस (उपन्यास) मधुपर्क, दीप मालिका, हिलोर, पुष्करिणी, खाली बोतल, मेरे सपने, ज्वार भाटा, कला की दृष्टि, उपहार, अंगारे, (कहानी संग्रह) छलना (नाटक) ओस की बूँदें (कविता संग्रह) हैं।

यद्यपि वाजपेयी जी कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि सभी कुछ लिख चुके हैं किन्तु उनका कहानीकार सबसे प्रबल और महत्वपूर्ण है। वाजपेयी जी प्रमुखतः कथाकार हैं। वे उपन्यासों से अधिक अपनी कहानियों में सफल हुए हैं। गहरी पकड़, सूक्ष्म विश्लेषण मानसिक ऊहापोह का सफल चित्रण एवं अनुभूति की तीव्रता इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। रोचकता और गठन में भी आपकी कहानियाँ बहुत आगे हैं।

कला की रंगीन चादर इनकी हर कृति को ढँके रहती है। कथा वस्तु, वर्णन, शैली, पात्र आदि सभी अंगों पर कला का गहरा रंग देखने को मिलेगा। कथा कहने के लिए कोई खास चीज वे नहीं लाते प्रत्युत किसी भी चीज को कथा बनाकर रख देना इनकी विशेषता है।

मनोविकारों का कलात्मक प्रदर्शन, यथार्थ का रोचक वर्णन, और अन्तर का द्वन्दात्मक विश्लेषण करने में वाजपेयी जी विशेष-पटु हैं। वाजपेयी जी की कहानियों में हृदय पक्ष का जितना अच्छा विकास होता है उतना उपन्यासों में नहीं। 'निंदियालागी' और 'मिठाईवाला' कहानी पढ़कर कोई भी पाठक द्रवित हुए बिना नहीं रह सकता। परन्तु उपन्यासों में वह गहराई नहीं आ पाती। कहानियों में वाजपेयी जी का हृदय और उपन्यासों में उनका मस्तिष्क प्रधान रहता है।

मानवीय संवेदनाओं का अभाव न होते हुये भी वाजपेयी जी के उपन्यास, सामान्य पाठक के लिए नहीं हैं। इसका कारण सामान्य घटनाओं और सामान्यपात्रों का चित्रण कलात्मक और प्रायः अतिरंजित होजाना है।

वाजपेयी जी के साहित्य में 'सेक्स' की बहुलता भी रहती है। इनके पात्र प्रायः अस्वस्थ विचारक और दुर्बल हैं। यद्यपि काल और घटना प्रवाह के सागर में डूबते उतराते वे अंत में घाट पार लगते हैं, परन्तु इस बीच वे पाठक के मन पर जो अशुद्ध प्रभाव डालते हैं; वह एक श्रेष्ठ कलाकार के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। आस्थावादी कलाकार वाजपेयी जी के पात्रों में वासना जैसे घर करके बैठ गई है और उससे वे कहीं भी मुक्त नहीं हो पाते। यद्यपि परिस्थितियों और घटनाओं का गहन ताना बाना बुनकर वाजपेयीजी वासनात्मक प्रवृत्तियों की आवश्यकता और संभवता का विश्वास पाठक को दिलाने में नहीं चूकते; परन्तु उस गहनता में पाठक डूबते ज्यादा; उबरते कम हैं। वाजपेयी जी के पात्र प्रायः भोगी दार्शनिक, प्रदर्शन में ऊँचे कामों में नीचे, सहिष्णु उदार किन्तु कठोर और वंचक जान पड़ते हैं। आत्म विश्लेषण में आत्म प्रवंचना की अधिकता हो जाती है। और इसीलिये कृतियों में जीवन के महत्वपूर्ण तत्वों का अभाव दिखाई देता है।

गुप्तधन, दो बहिनें, पिपासा, चलते-चलते, पतवार, मनुष्य और देवता आदि सभी उपन्यासों में पात्र पतनोन्मुखी ज्यादा हैं। यदि कुछ ठहराव है तो गुप्तधन, पिपासा, तथा मनुष्य और देवता में। मनुष्य और देवता वाजपेयी जी के इधर के सभी उपन्यासों से अच्छा है। 'चलते-चलते' उपन्यास में चरित्र विश्लेषण अच्छा हुआ है किन्तु उसके पात्र सिद्धांत हीन और नपुसंक हैं। इस उपन्यास में संघर्ष का प्रदर्शन अधिक है और वास्तविक संघर्ष का अभाव है आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास अपनी छाप छोड़ने में असमर्थ है। नायक राजेन के रूप में वाजपेयी जी ने एक सम्पन्न, भोगी, दूषित विचारक और कोरी बातें बनाने वाले व्यक्ति का चित्रण किया है। अतिरंजना का ऐसा विचित्र प्रदर्शन चलते-चलते के अतिरिक्त शायद ही कहीं 'देखने को मिले। चलते-चलते का नायक उलझा हुआ हो नहीं प्रत्युत एक ऐसा प्राणी है जो किसी भी

रूपसी को देखते ही आसक्त हो उठता है। उसका मन सदाशयता और अन्य सामाजिक संबंधों से परे हटकर वासनात्मक विचारों की ऊहा-पोह में पड़ जाता है। किसी भी स्त्री, चाहे वह विवाहित हो या विधवा सभी के रूप सौन्दर्य पर उसकी निगाहें अटकती हैं, और स्त्री के प्रत्येक साधारण कार्य कलाप में नायक को मौन निमंत्रण का आभास मिलता है। यह प्रवृत्ति किसी भी दृष्टि से न तो स्वस्थ कही जा सकती है और न अनुकरणीय। यह तो मनुष्य के पशु रूप का प्रदर्शन ही कहा जा सकता है। बाजपेयी जी के उपन्यासों में सामाजिक दायित्व की भावना का लोप दिखाई देता है। इनके अन्य पात्र भी (प्रोफेसनल सफरर्स) आत्म पीड़क से लगते हैं। उनमें मानवीय करुणा और शोक का प्राधान्य होकर भी निखरता नहीं। 'गुप्तधन' इस दृष्टि से अच्छा बन पड़ा है। आचार्य गौरीशंकर का चित्रण अत्यन्त सफल और स्वाभाविक है।

बाजपेयी जी की कृतियों में नारी प्रायः दो पुरुषों के प्रेम में झूलने वाली और पुरुष दो स्त्रियों के बीच चक्कर काटने वाले चित्रित किये गये हैं। लगता है जैसे इनके पात्रों केसमक्ष यौन वासनाओं और मनोविकारों के अतिरिक्त इतने बड़े संसार में कुछ रहा ही नहीं। छोटे से लेकर बड़े तक सब एक ही मर्ज के मरीज हैं।

वाजपेयी जी की भाषा बहुत अच्छी है। लच्छेदार भाषा लिखने में वाजपेयी जी आज के दो चार उपन्यास कारों को छोड़ कर शेष सभी से आगे हैं। पात्रोचित भाषा के प्रयोग में उनका कोई नियम नहीं है। कभी कभी मूर्ख और अशिक्षित पात्र संस्कृत निष्ठ हिन्दी बोलते हैं; और कभी घोर ग्रामीण भाषा का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। हिन्दी भाषा पर अच्छा अधिकार रखने वाले वाजपेयी जी जब अन्य भाषाओं से मोहाभिभूत होकर अपने पात्रों से अँग्रेजी-बँगला या अन्य कुछ बुलवाते हैं तो बड़ा विचित्र सा लगता है। अँग्रेजी शब्दों और वाक्यों के प्रयोग का भयंकर शौक भी उन्हें लग गया है। आश्चर्य उस समय अपनी

चरम सीमा को पहुँचता है, जब निरर्थक और बे मौके संस्कृत गर्भित हिन्दी बोलने वाले पात्र तो अँग्रेजी झाड़ते हैं; और विदेशीपन के प्रतीक पात्र संस्कृत गर्भित हिन्दी बोलते हैं।

वाजपेयी जी ने सदाचार के पाखंड पर कड़ी चोट की है। पाप और पुण्य की परिभाषाएँ भी उन्होंने अपने पात्रों से जहाँ तहाँ कराने का प्रयत्न किया है। वाजपेयी जी का हिन्दी कथा साहित्य में जो स्थान है उसका कारण उनकी मनोविश्लेषण पद्धति, वर्णन चातुर्य और शैली की कलात्मकता प्रमुख है। आदर्श चरित्र व प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। यथार्थ और आदर्श का समन्वय करने के बाद भी जीवन की विविधता उनके किसी उपन्यास में नहीं आई है। कला की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण गुण उनमें यह है कि वे अपनी कला के माध्यम से ऊँची-ऊँची बातें करते हैं परन्तु उपदेशक नहीं बनते। उनके पात्र मनुष्य हैं, अच्छे या बुरे। सूत्र रूप में वे बड़ी बड़ी बातें कह जाते हैं और उन सूत्रों में झकझोर देने की शक्ति होती है। यथार्थ की नग्नता को कला की चादर में लपेट कर रखना वाजपेयी जी का दूसरा गुण है। वाजपेयी जी अन्तर्मुखी कलाकार हो सकते थे परन्तु उनमें अन्तः गरिमा की न्यूनता है और वहिर्मुखी बनने के लिए जो मुखरता चाहिए उसका पूर्ण विकास उनमें हो नहीं सका। वस्तुतः वे दोनों के बीच रहने वाले कथाकार हैं।

प्रतापनारायण श्री वास्तव(१९५१)श्रीवास्तव जी कहानियाँ और उपन्यास लिखने में सिद्ध-हस्त हैं। परन्तु आप कहानी-कार से अधिक उपन्यासलेखक के रूपमें प्रसिद्ध हैं। आपके प्रकाशित आशीर्वाद, दोभाई नवयुग (कहानी संग्रह) और विदा, विजय, विकास, बयालिस, विसर्जन (उपन्यास) हैं। विदा उपन्यास आपका पहला उपन्यास है और इस पहली ही कृति के द्वारा आपने-कथा जगत में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया। आप आदर्शवादी लेखक हैं और सोद्देश्य साहित्य निर्माण कर्ताओं में प्रमुख स्थान रखते हैं। वर्णनप्रधान चरित्र चित्रण और रोचकता के

अतिरिक्त वातावरण को निरंतर शुद्ध और स्वस्थ बनाने वाले कथाकारों में आप आगे हैं । आपके उपन्यासों में यथार्थ के चित्रण पर आदर्श का परिधान रहता है । भारतीय संस्कृति और देश के प्राचीन गौरव की रक्षा जितनी तत्परता से आपने अपनी कृतियों में की है उतनी अन्य लोगों ने नहीं । देश प्रेम, समाजिक उन्नति के मार्ग, समस्याएँ और समाधान आपकी कथा वस्तु रहीं । उच्च शिक्षा प्राप्तकर राजस्थान में न्यायाधिकारी के पदपर रह कर भी श्रीवास्तव जीने मानसिक गुलामी को पास नहीं फटकने दिया । कृत्रिमता से वे जीवन में जितनी दूर हैं उतनी ही दूर अपनीकृतियों में भी। स्वाभाविकता और मुक्त वातावरण उनके जीवन और साहित्य की विशेषता है। बँगलों की चमक दमक में छिपे हाहाकार और बौद्धिक दिवालियापन का अपनी कृतियों में इन्होंने बहुत अच्छा चित्रण किया है । उच्च मध्य वर्गीय समाज को आपने अपनी कृतियों का माध्यम बनाया । सामाजिक कुरीतियों तथा व्यर्थ के पाखंड के विरुद्ध आपने कड़ी चोट की और देश के अच्छे संस्कारों को अपने गले का हार बनाकर साहित्य में दिया। विदा आज से अठ्ठाईस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। आज भी उनकी ताज़गी में कमी नहीं आई । शाश्वत सत्य की तरह विदा के कई पात्र सदैव पाठक की आँखों के सामने नाचते रहते हैं । चरित्र चित्रण में आप अत्यंत सफल हुए हैं । भारतीय नारी और भारतीय सभ्य पुरुषों का चित्रण आपके द्वारा अत्यंत स्वाभाविक हुआ है । विदा की भूमिका में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने लिखा है "विदा मौलिक उपन्यास है और मेरे विचार में भाषा सौष्ठव, चरित्र चित्रण और भाव व्यंजना में जो उपन्यास के तीन प्रधान स्तम्भ हैं प्रतापनारायण जी को अपने पहले प्रयास में जितनी सफलता मिली है वह महान आशाओं से परिपूर्ण है । मता का चित्र तो अद्वितीय है" श्रीवास्तवजीने विदा के प्रायः सभी पात्रों का स्वाभाविक विकास होने दिया है । मानवीय गुण अवगुण उन पात्रों में है; और इसी लिए वे हमें आज भी आस पास चलते फिरते दिखाई देते हैं । मुख्य पात्रों में निर्मलचन्द्रसिनहा, कुमुदिनी, शांता

माधवबाबू के अतिरिक्त लज्जावती, मुरारी, मि० वर्मा और चपला के चरित्रचित्रण में श्रीवास्तव जी ने असाधारण सफलता प्राप्त की है। भारतीय नारी की सहिष्णुता और मातृत्व की गरिमा शांता में आकर मूर्तिमान हो गई है। अँग्रेजियत की अन्ध भक्ति और आदर्श भारतीयता का द्वन्द उनके सामाजिक उपन्यासों में देखने को मिलता है। विदा, विजय और विकास इन तीनों उपन्यासों में एक एक समस्या को उठा कर भारतीय परम्परा के अनुसार उनका निदान बताने का प्रयास किया है। विदा में नई रोशनी की लेडी और भारतीय पत्नी की समस्या, विजय में विधवा विवाह और विकास में नारी की स्थिति को उठाया गया है, और इन तीनों उपन्यासों में कथा साहित्य के मुख्य तत्वों का पूर्ण परिपाक भी मिलता है। राजनीति और देश की अर्थ व्यवस्था की समस्या को आपने बयालिस और विसर्जन में उठाया है। बयालिस में देश की स्वाधीनता की समस्या और विसर्जन में स्वतन्त्र भारत के मिल मालिक और मज़दूर के प्रश्न को व्यापक दृष्टि से दिखाकर, गहराई में पहुँच कर, लेखक ने आर्थिक विषमता तथा उसका अभिशाप मनुष्यता का अभाव को बड़ी मार्मिकता के साथ लाके रक्खा है। हड़तालों—आन्दोलनों के औचित्य को स्वीकार करके अहिंसा का प्रतिपादन किया गया है। पिछले उपान्यासों में गाँधीवादी दर्शन का सम्यक विवेचन और आर्थिक विषमता के विनाश के लिए शांति पूर्ण लड़ाई का चित्रण सफलता पूर्वक हुआ है। बयालिस और विसर्जन को उत्तर प्रदेश की सरकार ने पुरुष्कृत किया है।

आदर्शवादी लेखक होने के नाते आपके उपन्यासों में सूत्रों तथा उपदेशात्मक वाक्यों की कमी नहीं है परन्तु यह प्रकृति बयालिस और विसर्जन में ज्यादा बढ़ी दिखाई देती है। पीछे के दोनों उपन्यासों में कथात्मकता में कुछ न्यूनता आ गईहैं और लेखक की दार्शनिकता का प्रदर्शन अधिक हो गया है। कहीं कहीं आवेश की अधिकता में अस्वाभाविकता भी आ गई है।

आपके सभी उपन्यासों का अनुवाद मलयालम भाषा में किया जा रहा है। 'विदा' का मलयालम अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। आजकल आप सन् १८५७ के सिपाहीविद्रोह को लेकर बहादुरशाह नामक ऐतिहासिक उपन्यास लिख रहे हैं।

श्रेष्ठ कथावस्तु, प्रभावशाली वर्णन, स्वाभाविक चरित्र चित्रण तथा सरल भाषा के माध्यम से आप पाठक के हृदय तक पहुँचने में समर्थ हैं। और यही कारण है कि अपने युग के विवादीस्वरों तथा गुट्ट बाजी से बिलकुल दूर रहकर भी आप हिन्दी भाषी कथा प्रेमियों के प्रिय हैं और अहिन्दी भाषी जनता में भी आपके साहित्य का प्रवेश हो रहा है।

सद्गुरुशरण अवस्थी(१९५५) अवस्थी जी का पाण्डित्य निबंधों में है और हृदय की द्रावकअनुभूति कहानियों में। चित्रात्मकता आपकी कहानियों में विशेष रहती है। आपके कलाकार हृदय की अनुभूति समाज की धरोहर है। इनके पात्र अत्यंत सजीव और पुरुषार्थी हैं। अवस्थी जी उन साहित्य साधकों में हैं, जिनकी कला निरंतर ऊर्ध्व मुखी रहकर लोक कल्याण में समाहित होती है। मनोविश्लेषण और चरित्र चित्रण में अवस्थी जी अपनो सानी नहीं रखते। उनके भावुक हृदय की झाँकी प्रत्येक रचना में देखने को मिलती है। वर्ण्य वस्तु की सार्थकता, वर्णन शैली में प्रवाह और गुरुता, चरित्र चित्रण की स्वाभाविकता और स्वस्थ चिंतन आपकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। हिन्दी के अनेक कहानीकारों में अवस्थी जी अपने से अकेले केवल इस लिएहैं कि उनकी रचनाओं में उनके मस्तिष्क की ऊँचाई के साथ हृदय की गहराई का सफल समन्वय हुआ है।

फूटाशीशा, एकादशी, पड़ोसकीकहानियाँ नामक तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। रेखा चित्र भी आपके बहुत अच्छे होते हैं। 'बड़े बाबू' पल्हड़' जैसे रेखा चित्र तो अद्वितीय हैं।

देवी प्रसाद धवन 'विकल'—मात्रा की दृष्टि से धवन जी ने बहुत लिखा है। प्रदर्शनी, दस कहानियाँ, जन्मपत्र (कहानीसंग्रह) कुबेर, दोषी कौन, समस्या, निरंजन शर्मा, भाभी, दो विद्रोही, अरक्षिता, आत्महत्या, तपस्या, उलटामार्ग, चिनगारी, ससुराल, दिल्लीरहस्य, प्रभात पुर की रानी (उपन्यास) प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें कई उपन्यास अपनी विषय वस्तु और वर्णन कौशल के कारण अच्छे बन पड़े हैं। साफसुथरी भाषा और रोचकता का गुण इनकी सभी रचनाओं में दिखाई देता है। धवन जी कुशल कथाकार ही नहीं प्रत्युत सफल हास्य व्यंग्य लेखक, कवि तथा सम्पादक भी हैं। 'महारथी' और 'सुमित्रा' जैसी साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं का कई वर्ष सम्पादन तथा 'सविता' का प्रकाशन और सम्पादन किया। धवन जी की कई रचनाएँ जल्दी में लिखी गई जान पड़ती हैं किन्तु जिन रचनाओं का सृजन वे मनोयोग से करते हैं वे बहुत अच्छी बन जाती हैं। इनकी कहानियाँ उपन्यासों से अधिक प्रभावशाली होती हैं। वस्तु, वर्णन, जिज्ञासा, कुतुहल और रोचकता आदि गुणों का निर्वाह इनकी कई कहानियों में बहुत अच्छा हुआ है। इस दृष्टि से अकबर की कब्र, साड़ी की साध, सीकरी का संत, संसार डूब रहा है, अशिक्षित मानव, मंगू पंसारी, आदि कहानियों में धवन जी के कुशल कथाकार का परिचय मिलता है। इनकी अन्य कहानियों में भी रोचकता की कमी नहीं है। प्रेम का चित्रण धवन जी को प्रिय है। परन्तु वर्णित प्रेम में गम्भीरता का अभाव खटकता है। वर्तमान गिने कथाओं जैसे हलके फुलके कथानक लेकर लिखी गई कहानियाँ हिन्दी के उन्नत कथा साहित्य के समक्ष नहीं ठहरतीं। सीधे सीधे कथा कहना धवन जी को प्रिय है। घुमाव और गोपनीयता इनकी कहानियों में नहीं है। पात्रों के विकास में लेखक की तादात्म्यता होते हुए भी, कलाकार की तटस्थता नहीं रह पाती। और इसी लिए उनके पात्र पाठक हृदय के निगूढ़ तंतुओं को झन झना नहीं पाते बल्कि उसकी सतही सहानुभूति को जगा कर रह जाते हैं।

बालकृष्ण बलदुवा—कहानी और रेखा चित्र लिखने में आप का प्रमुख स्थान है। स्फुट कहानियों के अतिरिक्त उर्वशी नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुका है। बलदुवा जी की कहानियों में समाज का यथातथ्य चित्रण देखने को मिलता है। इनका यथार्थ देश की आर्थिक विषमता के पहलू को अधिक छूता है। वैयक्तिक करुणा के अतिरिक्त सामाजिक असमानता के विरुद्ध तीव्र विद्रोह की भावनाओं का प्रदर्शन इनकी रचनाओं में स्पष्ट लक्षित होता है। मार्मिकता इनका प्रमुख गुण और थोड़े में बहुत कहना इनकी विशेषता है।

राय सोमनरायण सिंह—हास्यरस की कहानियाँ लिखते हैं। देवी जी और पंडा जी नामक कहानीसंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कहानियों में यथार्थ का चित्रण अच्छा होता है और हास्य का पुट भी रहता है। हास्यरस का सहज परिपाक इनकी कहानियों में न्यून ही रहता है। यदि इनकी कहानियाँ शैथिल्य दोष से बच पातीं तो कई रचनाएँ बहुत सफल और हास्यरस की श्रेष्ठ कृति बन सकती थीं।

श्री श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'—कविता के अतिरिक्त कहानियाँ भी लिखते हैं। मस्तिष्क की रेखाएँ नाम से इनकी कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है। सामाजिक कुरीतियों तथा प्रचलित अनाचार के अच्छे चित्र इनकी कहानियों में देखने को मिलते हैं। भावावेश मयी शैली में कुछ चित्र बहुत सजीव बन पड़े हैं।

अज्ञात एम० ए०—कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त नाटक भी लिखते हैं। स्फुट कहानियों के अतिरिक्त तीन उपन्यास प्रकशित हो चुके हैं। जिनके नाम हैं घर की ओर, अमृतकन्या, मरघट। घर की ओर इनका प्रथम उपन्यास है और उसमें परिवारिक समस्या को उठाया गया है। अमृतकन्या में भारत विभाजन से होने वाले रक्तपात अपहरण तथा अन्य पैशाचिक कृत्यों का बड़ा मार्मिक वर्णन है। मरघट में सन १६४२के स्वातन्त्र्य युद्ध का चित्रण किया गया है। हिंसा और अहिंसात्मक विचारों का प्रतिपादन

अच्छा हुआ है। इसमें कई पात्रों का चरित्र विकास बड़ा स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण हुआ है। अज्ञात जी वर्णन करने में चतुर हैं और इतनी मार्मिकता उनके पास है कि जिसके द्वारा वे पाठक की सहानुभूति जगा देते हैं।

कला की ऊँची शिल्प इनके पास नहीं है पर कहने के लिए अच्छा कथानक अवश्य रहता है। वस्तुत; अज्ञात के उपन्यास विषय-वस्तु में आधुनिक और शिल्प तथा घटना विधान में पुराने हैं। परिष्कृत भाषा तथा भावना की उँचाई इनकी कृतियों में स्पष्ट है।

लक्ष्मीचन्द्र बाजपेयी (१९७५)—कहानीकार के रूप में ये परिचित हैं। इधर उपन्यास लिखने की ओर झुके हैं। नीला लिफाफा, रानी का रंग, युगचित्र, शहीद साहब, सभ्यता की देन (कहानी संग्रह) तथा श्रीमतीविश्वास उपन्यास प्रकाशित हैं। बाजपेयी जी गम्भीर लेखक हैं और अपनी कहानियों तथा उपन्यास में वातावरण की गुरुता बनाये रखनेमें समर्थ भी। कई कहानियाँ इनकी काफी अच्छी हैं। चरित्र चित्रण करने में ये पटु हैं और कला की रंगीनी भी इनके पास है। भाषा प्रौढ़, वर्णन प्रभाव शाली तथा कथात्मकता इनकी रचनाओं में विशेष रूप से देखने को मिलती है।

रामस्वरूप द्विवेदी (१९७८)—प्रभावशाली कहानीकार तथा गद्य लेखक हैं। विश्ववाणी, अभ्युदय, चाँद माधुरी, सरिता, सुमित्रा आदि पत्र पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। प्रकाशित ग्रंथों में नये चित्र (कहानी संग्रह) स्वातंत्र्य कथा (खंड काव्य) तथा विद्यार्थियोपयोगी समीक्षा की कई पुस्तकें लिखी हैं। आस्करवाइल्ड के एक उपन्यास का अनुवाद सौंदर्य की रेखाएँ नाम से किया है। यह अनुवाद धारावाहिक रूप से सुमित्रा में प्रकाशित भी हुआ था। द्विवेदी जी की कहानियाँ बड़ी प्रभावशाली और उत्तम होती हैं। सरल और सीधापन इनकी हर कृति में देखने को मिलता है।

सिद्धेश्वर अवस्थी—कविता के अतिरिक्त उपन्यास-कहानियाँ लिखने में भी सिद्धहस्त हैं। फुटकर कहानियाँ पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। नीलकंठ और तूफान का यात्री उपन्यास लिखे हैं। नीलकंठ इनका अच्छा उपन्यास है। कला इनके पास बड़ी परिष्कृत तथा उच्चकोटि की है। शब्दों के शिल्पी और भावों के धनी हैं। बढ़िया और शक्तिशाली गद्य लिखने वालों में ये आगे हैं। सफल चित्रण, सूक्ष्म विश्लेषण, आदर्श भाषा और प्रवाहयुक्त शैली के माध्यम से इनकी कथा कृतियाँ बहुत अच्छी बन पड़ी हैं। नाटकीयता और स्वर का उतार चढ़ाव इनके गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से लक्षित होता है। लघु कथाएँ भी इन्होंने काफी लिखी हैं। सूत्र के समान अपनी बात कह देना इन्हें प्रिय है। गठन और रोचकता पर्याप्त मात्रा में इनके पास है।

कमल शुक्ल—उदीयमान तरुण उपन्यासकार हैं। सर्वप्रथम प्रकाशित नगीना प्रथम उपन्यास था। इधर राग और त्याग, मौलश्री तथा कालानगर नामक तीन उपन्यास और प्रकाशित हुए हैं। इन उपन्यासों को देखकर इनकी सफलता पर विश्वास किया जा सकता है। कथाकार की प्रतिभा इनमें है और कृतियों में विकास का क्रम दृष्टिगोचर होता है।

ज्ञानेन्द्र पथिक—थोड़े में बहुत कुछ कहने की शक्ति है। अनुभूति की गहराई और विश्लेषण की सूक्ष्मता इनकी सभी कहानियों में देखने को मिलती है। अभी तक कहानियों का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है परन्तु पत्र पत्रिकाओं में जो कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, उन्हें पढ़कर लगता है कि प्रवृत्तियों का विश्लेषण और मनोभावों का सजीव चित्रण करने में ये बहुत सफल होते हैं।

उपर्युक्त कथाकारों के अतिरिक्त स्वर्गीय पं० चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र भी बहुत अच्छी कहानियाँ लिखते थे। मिश्रजी कौशिक जी के अन्यतम मित्र और सहयोगी थे। इनका एक कहानी संग्रह नोवेकेन्सी नामसे प्रकाशित

हो चुका है। श्री रसिकमोहन प्रतिभाशाली तरुण कथाकार थे जो असमय ही अपनी जीवन लीला समाप्त करके चले गये। इस कलाकार में श्रेष्ठ कहानीकार होने के तत्व विद्यमान थे। लगभग चार पाँच कहानियाँ ही इन्होंने लिखीं होंगी जिनमें एक कहानी 'प्रेस में' शीर्षक सर्वोत्तम है। यह कहानी रामराज्य के पत्रकार विशेषांक में प्रकाशित हुई थी और इस कहानी को हिन्दी की अच्छी कहानियों में रक्खा जा सकता है। श्रीमतीसीताधवनका वारुणी नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुका है। श्री यादवचन्द्र जैन का पत्थर पानी नामक वृहद् उपन्यास अभी हाल में प्रकाशित हुआ है।

श्री श्रीनारायण अग्निहोत्री का फाउन्टेनपेन नाम से पत्रात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास प्रकाशित हो चुका है।

श्री विनोद रस्तोगी भी अच्छी कहानियाँ लिखते हैं। इनका ठंडी आग नामक उपन्यास अभी हाल में प्रकाशित हो कर आया है।

श्री यशोविमलानन्द का 'इन्सान के रूप' नामक कहानी संग्रह तथा एक उपन्यास भी प्रकाशित हुआ है। अन्य प्रतिभाशाली कहानी लेखकों में श्री शिवरानी बिश्नोई, श्री ललितमोहन अवस्थी, दिलीप कुमार चौधरी, चन्द्रमुखीओझा 'सुधा', श्री श्रीकृष्ण टण्डन, श्री बैजनाथ गुप्त के नाम प्रमुख हैं।

नवम अध्याय

नाटक

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रथम उत्थान काल (भारतेन्दुयुग) में साहित्य के जिन अंगों की प्राण प्रतिष्ठा हुई, उनमें नाटक का स्थान प्रमुख है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगियों ने संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला के अनेक नाटकों का अनुवाद किया तथा मौलिक नाटकों की रचना की। यद्यपि संस्कृत की दीर्घ एवं महत्व पूर्ण परम्परा हिन्दी नाटकों के लिए वरदान रूप में प्राप्त थी, और हिन्दी नाटक उसका आधार ग्रहण करके बढ़ सकते थे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। साहित्य के अन्य अंगो की भांति नाटकों के उत्थान में भी पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव है। भारतेन्दुमंडल की नाट्यकला सम्बन्धी देन पर विचार करने के पूर्व हिन्दी नाटकों का जन्म और विकास पर दृष्टि डालना उचित होगा

जन्म और विकास—चौदहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी में रचित कुछ नाटक कही जाने वाली रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिन्हें नाटक तो नहीं कहा जा सकता हाँ उनमें नाटकीय पृष्ठभूमि का दर्शन किया जा सकता है। संस्कृत भाषा का ह्रास होने पर देश की परिस्थिति इस योग्य नहीं थी जिसमें संगीत, काव्य के मिश्रण से बनी नाट्य कला को विकास और उन्नति करने का अवसर मिलता। मुस्लिम शासकों ने भारतीय साहित्य और संगीत आदि कलाओं की ओर ध्यान अवश्य दिया परन्तु नाट्यकला की ओर उनका ध्यान नहीं गया। चारसौ वर्ष की

लम्बी अवधि में सुयोग्य और शिष्ट समाज से दूर रहने के कारण नाट्य कला में जो विरूपता आई उसने नाटक को सभ्य समाज से काफी दूर कर दिया। स्वांग, रासलीला, रामलीला तथा अन्य प्रकार के नाटकाभास जैसी चीजों ने नाट्य कला की गरिमा और महत्ता को बहुत हानि पहुँचाई।

रामलीला आदि में रंगमंच का स्थान तख्त पर होने वाले केवल परिसंवादों और स्वाँगों में बेतुके हावभावों का प्रदर्शन, मूर्खतापूर्ण अभिनय तथा गन्दी गजलों और वासनात्मक कथोपकथन ने ले लिया था। अतः जब नाटक की ओर भारतेन्दु मण्डल सचेत हुआ, तब उसके समक्ष सबसे बड़ी परेशानी इस बात की थी, कि सभ्य समाज की दृष्टि में उसे मान्य कैसे बनाया जाय। अविद्या और अभावों की लम्बी अवधि के कारण, नाटक भी कोई देखने या पढ़ने की चीज है, इस पर सर्वसाधारण विश्वास नहीं करता था। इस स्थिति का संकेत करते हुए श्री किशोरीलालगोस्वामी ने अपने नाटक मयंकमंजरी (सं० १९४८) में सूत्रधार से कहलाया है:—

"नाटक लिखना तो दूर है जो नाटक रचे या अभिनय करे वह हास्यास्पद गिना जाता है"। गोपीचन्द नाटक (सं० १९५३) के यह शब्द भी द्रष्टव्य हैं—"बिश्व विख्यात भवभूति और कालिदास के समय से दृश्य या काव्य नाटक का आरम्भ माना जाता है कुछ अनुचित नहीं है उस काल आज कल की भाँति नाटक का नाम निन्दा का पात्र नहीं था।"

उपर्युक्त उद्धरणों से तत्कालीन नाटक सम्बन्धी धारणाओं का पता चलता है। नाटक के प्रति ऐसी धारणा के मूल में पारसी थियेटर भी थे जो श्रेष्ठ भारतीय कथानकों को भद्दे और मूर्खतापूर्ण बनाकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करते थे। पारसी थियेटरों में शकुन्तला, सीता आदि कमर लचका कर भद्दी गजलें गाती थीं और दुष्यन्त तथा राम विलासी और हीन प्रकृति के दिखाये जाते थे। अमर्यादित प्रदर्शन ने नाटकों के

प्रति सभ्य समाज की अरुचि को और बढ़ाया। भारतेन्दु ने इस स्थिति को समझा और संस्कृत के कई उच्चकोटि के नाटकों का अनुवाद तथा कुछ मौलिक रचनाओं के द्वारा हिंदी जगत के सामने नाटकों की महत्ता को सिद्ध करने का सफल प्रयास किया। "रत्नावली" (संवत् १६२५) का अनुवाद करते हुए भारतेन्दु ने लिखा है "राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनूदित शकुन्तला के अतिरिक्त कोई नाटक नहीं जिनको पढ़ के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रगट हो इस वास्ते मेरी इच्छा है कि दो चार नाटकों का तर्जुमा हिंदी में हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।" यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संवत् १६१८ में राजा लक्ष्मण सिंह ने महाकवि कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल का सफल और श्रेष्ठ अनुवाद प्रस्तुत किया था। इस प्रकार सर्व प्रथम उच्चकोटि का नाटक हिंदी में लाने का श्रेय राजा लक्ष्मण सिंह को और नाटक की महत्वपूर्ण परम्परा को पुष्ट बनाने का श्रेय भारतेन्दु को है। वस्तुतः प्रथम व्यक्ति भारतेन्दु जी हैं, जिन्होंने संस्कृत के कई श्रष्ठ नाटकों का उत्तम हिंदी अनुवाद करके अपने सहयोगियों का मार्ग निर्देशन किया।

हिन्दी में मौलिक नाटकों की परम्परा स्थापित करने वाले भारतेन्दु जी के पिता गिरधरदास जी हैं, जिन्होंने संवत् १६१६ में 'नहुष' नाटक की रचना की। यह नाटक संपूर्ण रूप से अब अप्राप्य है। इसका प्राप्त भाग संवत् १६६२ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाग ६ में प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि इसके पूर्व भी नाटक से मिलती-जुलती अनेक रचनाएँ और डाक्टर दशरथ ओझा के कथनानुसार तेरहवीं शताब्दी के 'गय सुकुमार रास' से हिन्दी नाटकों का प्रारम्भ होता है। परन्तु भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी नाटकों की कोई निश्चित परम्परा नहीं थी। अतः भारतेन्दु से पूर्व की रचनाओं का स्थान शोध कार्यों के अन्तर्गत ही रक्खा जा सकता है। हिन्दी नाटकों की प्रारम्भिक श्री वृद्धि में भारतेन्दु के अतिरिक्त उनके अन्य सहयोगियों में श्री देवकीनन्दन त्रिपाठी, पं० प्रतापनारायण

मिश्र, श्री बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल जी गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास श्री राधाचरण गोस्वामी, लाला सीताराम बी० ए० आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी युग में नाटकों की परम्परा क्षीण रही। साहित्य के अन्य अंगों की भाँति उसका विकास नहीं हुआ। कुछ ही दिन बाद हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि श्री जयशंकर प्रसाद ने नाटकों की ओर ध्यान दिया, और कई ऐतिहासिक नाटक लिखकर अपनी विशिष्टप्रतिभा से साहित्य-सेवी और प्रेमियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, द्विवेदी युग में इस परम्परा को विशेष प्रश्रय नहीं मिला। अतः हिन्दी नाटक के द्वितीय उत्थान काल के नेता प्रसाद जी को ही कहना उपयुक्त होगा। कुछ दृष्टियों से प्रसाद जी हिन्दी नाटकों के एक विशिष्ट परम्परा के स्रष्टा हैं। प्रसाद जी ने न केवल विषय की दृष्टि से वरन परम्पराओं नियमों तथा टेकनीक की दृष्टि से सर्वथा नवीन दिशा की ओर हिन्दी नाटकों को अग्रसर किया।

प्रसाद जी के पश्चात् पश्चिमी प्रभाव से प्रभावित होकर मनोविश्लेषणात्मक शैली का अधिक प्रचार हुआ और साहित्य के अन्य अंगों की भाँति हिन्दी नाटक भी विभिन्न दिशाओं की ओर उन्मुख हुआ। नवीन धाराओं के प्रवर्तकों में सर्व श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दास, श्री रामकुमार वर्मा, श्री पं० सद्गुरुशरण अवस्थी, श्री भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट, अश्क तथा श्री गोविन्दवल्लभ पंत का नाम उल्लेखनीय है।

अभिनय और रंगमंच—नाटकोंके प्रचार के लिये रंगमंच का होना आवश्यक है। हिन्दी नाटक का प्रचार भी अभिनय के साथ ही हुआ। पहले लोग नाटक को पढ़ने की चीज नहीं मानते थे। भारतेन्दु युग के प्रायः सभी नाटकों का अभिनय हुआ परन्तु इसमें स्वयं लेखकों का प्रयास ही मुख्य था। यहाँ यह बात भी स्मरण रखने की है कि हिन्दी से पहले बँगला और मराठी का रंगमंच उन्नत हुआ और उसके मान्य

स्वरूप की प्रतिष्ठा भी हो गई जबकि भारतेन्दु से अब तक एक शताब्दी बीत जाने के बाद भी हिन्दी रंगमंच की स्थापना नहीं हो सकी।

कुछ लोगों के विचार से नाटक का अभिनय होना न तो आवश्यक है और न अभिनय तत्व को प्रमुखता देना ही जरूरी है। परन्तु अभी अधिकांश लोग इस विचार से सहमत नहीं हैं। वस्तुतः कथावस्तु, कथोपकथन, पात्र, घटनासंयोजन आदि के अतिरिक्त अभिनेयता उसका प्रमुख तत्व मानना ही होगा, अन्यथा नाटक की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जायगी। पं० सद्गुरुशरण अवस्थी ने अपने नाटक शीर्षक निबंध में विचार प्रकट करते हुए लिखा है "नाटक भी अब केवल मनोरंजन का साधन न होकर मनोन्मथन का साधन बन रहा है... आज के नाटककार अधिकतर रंगमंच के लिए लिखते ही नहीं। हाँ जो रंगमंच के लिए लिखते हैं, वे पैसा पैदा करने के लिए लिखते हैं। वे साहित्य सृष्टा नहीं। जो नाटककार रंगमंच का मुँह ताक कर अपने नाटक की रचना करते हैं अथवा जो अभिनेय नाटकों को साहित्यिक समझते हैं वे शुद्ध भ्रम में हैं"

यहाँ सवाल उठता है कि यदि 'अभिनय' का लक्ष्य नहीं तो नाटक की रचना न कर उपन्यास, लेख आदि ही क्यों न लिखे जाँय? नाटक रचना की आवश्यकता ही क्या? विकास और उन्नति नये अध्याय जोड़ते हैं, मिटाते नहीं। वस्तुतः नाटक की रचना तभी होती है जब लेखक दर्शक के समक्ष आना चाहता है। अभिनय की सर्वथा उपेक्षा का सिद्धांत स्वीकार करने के बाद अंक, दृश्य, अभिनय-संकेत आदि की सार्थकता ही क्या है? नाटक का मुख्य लक्ष्य अभिनय तत्व है और उसे अभिनय युक्त होना चाहिए। हाँ, अवस्थी जी ने उन समीक्षकों को जो वर्तमान को देखकर ही त्रिकाल वक्ता बनने का दम भरते हैं—चेतावनी दी है, और निस्संदेह, हम भी यही कहना चाहते हैं कि हमारा नाटक साहित्य अब पुरानी रूढ़ियों में दब कर चल नहीं सकता, नवयुग में समस्या और

चिन्तन प्रधान नाटकों की रचना का बाहुल्य है और वे सर्वथा अभिनेय भी हैं। यदि कुछ कठिनाई है तो आज के हमारे दर्शक और अभिनय शास्त्र की अविकसित अवस्था ही! दुर्भाग्य से अभी ऐसे मूढ़ग्राहियों की कमी नहीं है जो प्रसाद के नाटकों को अनभिनेय घोषित करते हैं और अपने पक्ष में १०० वर्ष पुरानी दलीलें देकर अभिनय विकास के इतिहास से आँख बन्द कर लेते हैं। यदि नान्दी, सूत्रधार और भरत वाक्य छोड़कर नाटक लिखे और खेले जा सकते हैं तो कौन सा कारण है कि आज के मनोन्मथन और चिन्तन प्रधान नाटक प्रदर्शित नहीं हो सकते? आज का दर्शक इतना जाग्रत हो चुका है कि वह अस्वाभाविकता को अभिनय मानकर मनोरंजन नहीं करना चाहता। प्रश्न उठता है कि विश्लेषणात्मक वस्तु का समावेश आज के नाटक में किया जाता है, उन्हें यथावत् मंच पर कैसे प्रदर्शित किया जाय। इस सम्बन्ध में यह कहना जरूरी है कि नाटक में जो लिखा जाय उसके प्रदर्शन का माध्यम पात्र, उसकी भावभंगिमा, अभिनय कुशलता तथा कथोपकथन के द्वारा ऐसे सूत्र का आयोजन करना मुख्य है कि जिसके द्वारा प्रतिपादित वस्तु दर्शक के हृदय तक प्रवेश कर सके।

यद्यपि प्रसाद जी के नाटकों ने 'अभिनय' के अतिरिक्त पढ़ना भी स्वीकार करा दिया। राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा लिखित चन्द्रकला भानुकुमार नाटक भी अभिनय की कठिनाइयों के कारण पढ़ने की दृष्टि लेकर लिखा गया था। परन्तु यह निर्विवाद है कि नाटकों की रचना अभिनय तत्व की उपेक्षा करके पूर्ण सफल नहीं कही जा सकती।

हिन्दी नाटकों का एक दुर्भाग्य यह भी रहा है कि उसके अधिकतर लेखक प्रायः अभिनय तथा रंगमंच के व्यवहारिक ज्ञान से सर्वथा शून्य रहे हैं; और इसीलिए प्रायः हिन्दी नाटककार; शीघ्र दृश्य परिवर्तन, दीर्घकथोपकथन, प्रभावहीन घटनाएँ तथा वातावरण सम्बन्धी ऐसी अनन्य वस्तुओं का नाटक में समावेश कर देते थे जिसे रंगमंच पर प्रस्तुत करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी था। प्रसाद जी के बाद इस कमी की ओर

लेखकों का ध्यान गया और तत्पश्चात बहुत से नाटक अभिनय के योग्य रचे गये।

हिन्दी रंगमंच को नवीन विशेषता प्रदान करने वालों में श्री पृथ्वीराज कपूर का भी नाम लेना आवश्यक है, उनके द्वारा हिन्दी नाटक को अभिनय की दृष्टि से निस्संदेह सफलता प्राप्त हुई है और जिसका प्रभाव नवीन नाटक लेखकों पर पड़ा भी है। यह नहीं कहा जा सकता कि हिंदी का भावी रंगमंच कैसा होगा और श्री पृथ्वीराज द्वारा निर्देशित प्रतीकों को कहाँ तक मान्यता मिलेगी। परन्तु यह आशा की जा सकती है कि संस्कृत नाटकों की चली आती हुई परम्परा और इधर के नवीन दृष्टिकोणों को मिलाकर सफल हिन्दी रंगमंच का निर्माण हो सकेगा।

सैनिक विद्रोह (१८५७) के पूर्व ही कलकत्ते और बम्बई में रंगमंच की स्थापना हो गई थी। और विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मराठी रंगमंच भी स्थापित हो चुका है। बम्बई का रंगमंच प्रारम्भ से ही व्यापार का माध्यम बन गया और पारसी थियेटरों के द्वारा सम्पूर्ण उत्तर भारत में उसका प्रचार हुआ। परिणामस्वरूप हिन्दी प्रदेशों में हिन्दी का रंगमंच न होने के कारण सर्व साधारण में इनके बेतुके कथानक और असंस्कृत भाषा का प्रचार और प्रसार होता रहा। इसके विपरीत बंगला और मराठी रंगमंच अपने सीमित क्षेत्र में ही निरन्तर विकसित होकर लोकप्रिय बन गए।

अंग्रेजी, पारसी तथा बंगाली और मराठी रंगमंचों का प्रसार होने पर हिंदी रंगमंच की ओर भी हिंदी जनों का ध्यान पहुँचा और उसके लिए प्रयास किए गए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कथनानुसार हिंदी का प्रथम नाटक 'जानकी मंगल' था जो बनारस थियेटर में खेला गया था। इसके बाद लखनऊ, कानपुर में कई नाटकों का प्रदर्शन किया गया। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि हिंदी रंगमंच का आधार पारसी टेकनीक ही थी। पारसी थियेटरों के माध्यम से जो नियम हिंदी नाटकों के लिए

अपनाए गये थे उनमें अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट था।

भारतेन्दु के जीवन में ही हिंदी भाषियों के सम्मुख पारसी कम्पनियों ने बहुत से नाटक खेले थे और उनमें जो मूर्खता का प्रदर्शन होता था उससे क्षुब्ध होकर भारतेन्दु ने विरोधस्वरूप स्वयं नाटक लिखे और अभिनय किये तथा अपने सहयोगियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। हिंदी के दुर्भाग्य से भारतेन्दु जैसा प्रतिभाशाली पुरुष अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सका, और हिंदी का रंगमंच उत्तम स्थिति तक पहुँचने से वंचित रह गया। उस युग में जो सबसे महत्वपूर्ण काम हुआ वह यह कि हिंदी जनता के समक्ष अभिनय के माध्यम से देशभक्ति, समाज-सुधार तथा जन जागरण के अन्य नये नये स्वर आने लगे।

कानपुर में नाटकः—कानपुर में नाटक लिखने की दृष्टि से प्रतापनरायण मिश्र का नाम ही मुख्य है। मिश्र जी के सहयोग से यहाँ अभिनय का भी प्रचार हुआ। मिश्र जी ने कानपुर की स्थिति का विश्लेषण करते हुए "ब्राह्मण" के अगस्त सन् १८८५ के अंक में 'कानपुर में नाटक' शीर्षक अपने लेख में लिखा हैः—

"अनुमान बारह वर्ष हुए कि यहाँ के हिन्दुस्तानी भाई यह भी नहीं जानते थे कि नाटक किस चिड़िया का नाम है। पहले पहल श्रीयुत पं० रामनरायण त्रिपाठी प्रभाकर महोदय ने हमारे प्रेमाचार्य का बनाया हुआ "सत्य हरिश्चन्द्र और वैदकी हिंसा" खेला था। यह बात कानपुर के इतिहास में स्मरणीय रहेगी कि नाटक के मूल आरोपक यही प्रभाकर जी हैं"

इससे ज्ञात होता है कि सन् १८७३ में कानपुर में हिन्दी नाटकों का अभिनय प्रारम्भ हुआ और आगे चलकर पं० प्रतापनरायण मिश्र श्री राधेलाल, श्री नरायणप्रसाद अरोड़ा, श्री गोबर्धनदास खन्ना आदि महानुभावों ने अपने सहयोगियों के साथ नाट्य परिषदें स्थापित कर अनेक नाटक लिखे तथा खेले। अब तो प्रायः सभी कालेजों में प्रतिवर्ष नाटक

खेले जाते हैं। सेन बालिका विद्यालय, कैलाश मन्दिर तथा बंगाली समाज द्वारा दुर्गापूजा के अवसर पर अच्छे अच्छे नाटकों का प्रदर्शन होता है। वर्तमान पीढ़ी में श्री विश्वनाथ त्रिपाठी 'विश्व' तथा सिद्धेश्वर अवस्थी, श्री देवीप्रसाद धवन तथा कैलाश नाथ धवन का नाम प्रमुखरूप से लिया जा सकता है, जो प्रतिवर्ष सफल नाट्य निर्देशन का कार्य करते हैं।

अस्तु कानपुर में नाटक लिखने की स्थायी परम्परा पं० प्रतापनारायण मिश्र से ही प्रारम्भ होती है। मिश्र जी ने कई नाटक और प्रहसन लिखे जो 'ब्राह्मण' में तथा पुस्तकाकार छपे और अभिनय हुए. मिश्रजी द्वारा रचित संगीत शाकुन्तल, भारत दुर्दशा, कलिकौतुक, हठी हमीर, जुवारी-खुवारी प्रहसन, कलिप्रभाव, प्रसिद्ध है। मिश्रजी के आदर्श भारतेन्दु थे और उन्हीं का प्रभाव इनके नाटकों में भी देखा जाता है परन्तु पात्र एवं उनके वर्णन का स्वरूप भारतेन्दु से बढ़कर हुआ है। रसिक समाज के सभापति ललितजी ने 'सुमतिमनरंजन' नामक एक नाटक लिखा। इसका प्रचार दूर तक नहीं हुआ परन्तु कानपुर जनपद और उनके आस-पास के क्षेत्रों में इसका प्रभाव देखने को मिलता है। राय देवीप्रसाद पूर्ण का 'चन्द्रकला भानुकुमार' नाटक सन् १६०३ में प्रकाशित हुआ यद्यपि इसकी रचना, प्रकाशन से पंद्रह वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी। यह नाटक उच्च साहित्यिक स्तर का होते हुए भी अभिनय की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है। लम्बे-लम्बे गीत, सात अंक और उनमें भी तीन से लेकर छै तक गर्भाङ्क होने के कारण इस नाटक का अभिनय करने के लिए पूरी रात चाहिए। यद्यपि पूर्ण जी को विद्यार्थी जीवन से अभिनय का शौक था और प्रारम्भ से ही वे अभिनय में सक्रिय भाग लेते थे फिर भी इस नाटक में कविता चमत्कार का ध्यान उन्होंने जितना रक्खा उतना नाटकीय तत्वों का नहीं। स्वयं इस बात का ध्यान रखकर पूर्ण जी ने नाटक की भूमिका में लिखा है "मैंने यह नाटक केवल उनके लिए लिखा है जो इस प्रकार की भाषा को सुगमता से समझ सकते हैं। इसलिए यदि यह

नाटक सर्वसाधारण के सामने खेलने योग्य न समझा जावे तो मुझे कुछ खेद न होगा।" नाटक का गद्य भाग खड़ी बोली और पद्य ब्रज भाषा में है। कथोपकथन चुस्त और भाषा बड़ा परिष्कृत है। पूर्ण जी ने इस नाटक की रचना तत्कालीन प्रचारित नाटकों के प्रति अश्रद्धा को समाप्त करके उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए की थी। नाटक की अपनी विषद भूमिका में पूर्ण जी ने नाट्यकला और साहित्य सम्बन्धी बड़े मौलिक विचार प्रकट किये हैं। यदि इस नाटक का आकार कम कर दिया जाय तो निस्सन्देह इसके अभिनय में विशेष कठिनाई नहीं हो सकती। सन् १९०६ में 'राम रावण विरोध' नामक गद्य पद्य मिश्रित चम्पू की भी रचना पूर्ण जी ने की।

पंडित रामप्रसाद मिश्र ने "राजसिंह" नामक नाटक लिखा और उसका अभिनय भी किया था। सुप्रसिद्ध कथाकार पं० विश्म्भरनाथ शर्मा कौशिक ने भी 'भीष्म' नामक एक नाटक लिखा किन्तु इस क्षेत्र में वे सफलता प्राप्त नहीं कर सके।

नया मोड़—हिन्दी नाटकों के द्वितीय उत्थान के प्रवर्तक प्रसाद जी के पश्चात् हिन्दी नाटकों की धारा ही बदल गई। विभिन्न स्रोतों को लेकर विभिन्न लेखकों ने इस ओर पग बढ़ाया। कानपुर में इस धारा का सफल सर्जन करने वालों में बाबू भगवती चरण वर्मा, पं० सद्गुरुशरण अवस्थी, पं० भगवती प्रसाद बाजपेयी के नाम सर्वोपरि हैं। वर्मा जी और अवस्थी जी हिन्दी के एकांकी नाटककारों में उच्च स्थान बना चुके हैं। बाजपेयी जी का एक नाटक 'छलना' नाम से प्रकाशित हुआ है, जो निसन्देह नवीन कथावस्तु, चरित्र-चित्रण एवं मनोविश्लेषण की विशेषता के साथ अभिनय से पूर्ण होने के कारण एक महत्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। सामाजिक परिस्थितियों का चित्रांकन बड़ी सफलता के साथ बाजपेयी जी ने इस नाटक में किया है।

पं० सद्गुरुशरण अवस्थी न केवल कानपुर प्रत्युत सम्पूर्ण हिन्दी जगत में सफल नाटककार का स्थान प्राप्त कर चुके हैं। अवस्थी जी की 'मंझली महारानी' 'नायक और नाटक' ६ भाग 'मुद्रिका' तथा 'दो एकांकी' नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं 'मझली महारानी' तीन अंकों का सम्पूर्ण नाटक है। अवस्थी जी का यह नाटक अपनी विषय वस्तु में सर्वथा मौलिक, चरित्र चित्रण में अद्वितीय एवं आदर्श और शैली की दृष्टि से उच्च कोटि का नाटक है। इसका कथासूत्र कौशल्या के आग्रह से दशरथ का कैकेई के स्वयम्बर में भाग लेकर विवाह करना, राम बनवास, और फिर राम का सिंहासनासीन होना है। मझली महारानी अर्थात् कैकेई इसकी नायिका हैं और उसके चरित्र को निरन्तर निखारते हुए अवस्थी जी ने अब तक उसके नाम पर प्रचलित कलंक को दूर करने का सतर्क और सफल प्रयास किया है। कैकेई को लोक मंगलकारिणी, आर्य संस्कृति की महान रक्षिका तथा रघुकुल की दूरदर्शिता नारी के रूप में चित्रित किया गया है। अवस्थी जी के नाट्य कौशल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके पात्रों में निरन्तर उदात्त वृत्तियों का पोषण और परिपोषन होता रहता है। आर्य साहित्य में प्रचलिति कैकेई सम्बन्धी प्रवाद को अत्यन्त सफलता के साथ अवस्थी जी ने मिटाने का प्रयास किया है। वाल्मीक से लेकर तुलसी तक जो रूप कैकेई का चित्रित हुआ, उसमें कुछ थोड़ा परिष्कार श्री मैथिली शरण जी गुप्त ने अपने महाकाव्य 'साकेत' में किया। परन्तु 'साकेत' की गोमुखी गंगा कैकेई अवस्थी जी के नाटक में चरम सीमा तक पहुँची है। नाटक की कथावस्तु पुरानी होते हुए भी नवीनता और मौलिकता रखती है। नाटक के सभी पात्र अपने में पूर्ण और सफल हैं। कथोपकथन अत्यन्त चुस्त, भाषा सुस्पष्ट और तर्क युक्त है। इसमें भी अवस्थी जी का विचारक सर्वोपरि दिखाई देता है। ऋषि वशिष्ठ के रूप में अवस्थी जी का आचार्यत्व जैसे बोल उठा है और सम्भवतः इसीलिए उनके भाषण का लम्बा रूप रक्खा गया है। बौद्धिकता की प्रमु-

खता होते हुए भी गहरी मार्मिकता इसमें विद्यमान है। अभिनय तत्व का भी पूर्ण रूप से इसमें ध्यान रक्खा गया है। युगानुरूप नवीन विचारों का समावेश यथावसर हुआ है। ऋषि वशिष्ठ के मुख से कहे गए ये शब्द द्रष्टव्य हैं:—जो अध्यापक जागरूक नहीं रह सकते उन्हें यह व्यवसाय छोड़ देना चाहिए......साम्य की अवतारणा के लिए परमावश्यक है कि इस विद्यालय में राजा और प्रजा में कोई भेद भाव नहीं रहना चाहिए"

'नाटक और नायक' नाम से प्रकाशित पुस्तक के ६ भागों में अवस्थी जी के २० एकांकी हैं। प्रथम भाग में कैकेई, शम्बूक, विभीषण दूसरे में शकुन्तला, तुलसीदास, अहिल्या, तीसरे में सती का अपराध, त्रिशंकु, बलिबावन, चौथे में सुदामा, ध्रुव, प्रहलाद, पाँचवें में महाभिनिष्क्रमण, एकलव्य और छठे भाग में हां में नहीं का धोखा, ईश्वर, मुखिया, पादरी, होस्टल की चारपाई, खद्दर, शीर्षक एकांकी हैं। अवस्थी जी के कथानक अधिकतर प्राचीन हैं परन्तु उनके कलाकार की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पुरातन में आधुनिकता का गहरा पुट देकर वे वस्तु को इतना निखार देते हैं कि रचना अपने आप में पूर्ण और चमकने लगती है। भद्दी प्राचीनता और हास्यास्पद नवीनता दोनों ही दोषों से अवस्थी जी की रचनाएँ मुक्त हैं।

'मुद्रिका' नामक रचना समस्या प्रधान एवं विश्लेषणात्मक एकांकी है। अवस्थीजी के आचार्यत्व की गहनता यहाँ साकार हो उठी है। इसमें नाटकीय विशेषताओं को दबाकर विचारतत्व को प्रधानता मिली है। अवस्थी जी के एकांकी चिन्तन और मनोविश्लेषण प्रधान हैं, फिर भी उनमें अभिनय की सर्वथा उपेक्षा नहीं दिखाई देती।

श्री कैलाशचन्द्र देव 'बृहस्पति' हिन्दी के एकांकी लेखकों में शीर्षस्थान रखते हैं। बृहस्पति जी की सबसे बड़ी विशेषता है—आधुनिकतम प्रवृत्तियों के प्रति पूर्ण जागरूक होते हुए भी अपने नाटकों के लिए प्राचीन विषय के वस्तु का श्रेष्ठ चुनाव। कथोपकथन और अभिनेयता की दृष्टि से

बृहस्पति जी की रचनाएँ हिन्दी की सर्वोत्तम रचनाओं में मानी जायेंगी। बृहस्पति जी का रंगमंच सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म और व्यावहारिक है, यह उनकी रचनाओं को पढ़कर मालूम हो जाता है। भारतीय ऋषि संस्कृति का सम्पूर्ण विकास, चित्रण और उसके प्रति अगाध श्रद्धा का दर्शन इनकी रचनाओं में होता है। प्राचीन वस्तु के चित्रांकन में आधुनिक समस्याओं का प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शन करने की कुशलता भी इन्हें प्राप्त है। ये अपनी रचनाओं में बड़ी से बड़ी समस्याओं को इस कौशल से रखते हैं कि दर्शक या पाठक के मन पर वे बोझ नहीं बनतीं बल्कि दर्शक और पाठक, हृदय और बुद्धि दोनों की समान गति से रचना का आस्वाद करता चलता है। रेडियो से अनेक नाटक प्रसारित हुए हैं; अभी तक पुस्तकाकार नहीं छपे। बृहस्पति जी निर्विवाद ही सफल एकांकी-कार हैं। संक्षिप्त, श्रेष्ठ, और सरल एकांकी के ये मुख्य गुण इनमें विद्यमान हैं।

विश्वनाथ त्रिपाठी विश्वः— कई नाटक लिखे तथा उनके सफल अभिनय भी किए हैं। इनके प्रकाशित नाटक स्वतन्त्रता या बलि-वेदी, हमारा समाज, हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान, सीधारास्ता, पहला कदम प्रमुख हैं। इनके नाटक कथावस्तु की दृष्टि से नवीन, टेक्नीक की दृष्टि से पुराने हैं। कथोपकथन चुस्त है किन्तु गद्य के बाद पद्य का प्रयोग बहुत ही पुरानी शैली का परिचायक है। जल्दी-जल्दी दृश्य बदलना रंगमंच के विशिष्ट ज्ञान से अज्ञता प्रगट नहीं करते। बेवक्त गाना, हलका हास-परिहास से कृतियों में स्थायित्व की गरिमा न्यून पड़ गई है। देश और समाज की आवश्यकताओं तथा नये परिवर्तनों की ओर संकेत करने वाले नाटककारों में इनका नाम सहज ही लिया जाना चाहिए।

प्रेमनन्दन द्विवेदी 'दुखित' ने 'अस्थिदान' नामक नाटक लिखकर प्रकाशित किया है। इसकी टेक्नीक बड़ी पुरानी है और लेखक ने नाटकीय तत्वों तथा देशकाल के प्रति अत्यन्त असावधानी दिखाई है।

सिद्धेश्वर अवस्थी—अच्छे नाट्य निर्देशक और अभिनेता हैं। कई गीत नाट्य इनके उत्तम श्रेणी के हैं। एकांकी भी लिखते हैं। रंगमंच के कुशल ज्ञाता होने के कारण इनके नाटकों में अभिनय सम्बन्धी असावधानियाँ प्रायः नहीं मिलती। गीत नाट्य, भाव नाट्य के अतिरिक्त रेडियो रूपक भी इन्होंने लिखे हैं। परिष्कृत भाषा, चुस्त कथोपकथन और प्रभावशाली दृश्यों को चित्रित करने में ये सिद्धहस्त हैं। 'यक्ष के आँसू' इनका सुन्दर नाटक है और 'गौतम का गृह त्याग' श्रेष्ठ गीत नाटिका।

विनोद रस्तोगी—कानपुर के नई पीढ़ी के बहुत अच्छे नाटककारों में से हैं। सफल नाटक, एकांकी तथा रेडियो रूपक लेखक के रूप में वे हिन्दी संसार के परिचित कलाकारों में हो गये हैं। 'आजादी के बाद' और 'पुरुष का पाप' इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं 'आजादी के बाद' नाटक अत्यन्त प्रभावशाली है। आजादी के बाद देश में फैले अनाचार, भूख, बेकारी, पूंजी और श्रम का संघर्ष आदि समस्याओं का सजीव चित्रण इसमें हुआ है। कथोपकथन छोटे और चुटीले हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से अजीत (पात्र) का चरित्र चित्रण बहुत ही अच्छा किया गया है। यह नाटक दुखान्त है परन्तु अत्यन्त भावोत्तेजक, और वर्तमान अर्थवादी विचारधारा की विषमता का प्रतिनिधित्व करता है। समाज में बाइज्जत रहने वाले धनी किन्तु धूर्त, देखने में महान किन्तु भीतर से नीच पात्रों का भी चरित्र निर्वाह बड़ी सफलता और स्वाभाविकता से हुआ है।

'पुरुष का पाप' नौ एकांकी नाटकों का संग्रह है। सभी एकांकी विचारोत्तेजक और नारी की बलिदानी परम्परा के प्रतीक हैं। नारी के प्रति किये गये पुरुष के विचित्र व्यापारों को विनोद जी ने चित्रित किया है। नारी का त्याग और उसकी महान बलिदानी परम्परा का प्रदर्शन ही इन एकांकियों का उद्देश्य है। इनके नाटकों में रंगमंच के प्रति पूर्ण सावधानी बरती गई है। निसन्देह विनोद के रूप में हिन्दी नाटककारों

की नई पीढ़ी को एक प्रभावशाली कलाकार मिला है। यद्यपि कहीं कहीं भावावेश में लेखक ने सन्तुलन खो दिया है यथा 'ऋषि भार्गव और अर्जा' आदि में।

सुप्रसिद्ध कथाकार श्री देवीप्रसाद धवन ने भी कुछ नाटक लिखे हैं जो समय समय पर अभिनीत होते रहते हैं। श्री अज्ञात एम० ए० ने भी कई नाटक लिखे हैं पर वे अभी तक अप्रकाशित भी हैं और अनभिनीत भी।

नगर में और भी अनेक संस्थाओं द्वारा नाटक खेले जाते हैं, जिनका लेखन नगर के ही प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों के द्वारा होता है। इधर नगर में रंगमंच की स्थापना के लिए भी कुछ विद्वान प्रयत्नशील हैं।

दशम अध्याय

आधुनिक कविता

आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है क्योंकि भक्ति और रीति काल की परम्पराओं को छोड़कर हिन्दी कविता ने इस युगमें नया मोड़ लिया था, यद्यपि भारतेन्दु और उनके सहयोगी पुराने विषय तथा रूप विधान को न तो पूर्णतः त्याग सके और न त्यागने के लिए प्रयत्नशील हुए। फिर भी युग की कुछ माँग थी और उस माँग की पूर्ति में भारतेन्दु मंडल ने ऐतिहासिक योग दिया इसमें कोई सन्देह नहीं।

सैनिक विद्रोह (सन् १८५७) असफल होने के पश्चात् देश में जहाँ एक ओर निराशा की बाढ़ आई वहाँ दूसरी ओर आत्म चिन्तन और जन बल की भावना का विकास भी हुआ। आत्मग्लानि और क्षोभ के कारण भीतर ही भीतर सुलगने वाली आग ने भारतीयों को नवीन मार्ग बनाने के लिए प्रेरित किया। अतः जाति, धर्म, भाषा, वेष और देशकी सुरक्षा और संवृद्धि की ओर तत्कालीन समाज नेताओं का ध्यान आकर्षित हुआ। फलतः उसी समय अनेक जातीय एवं धार्मिक संगठन हुये तथा उनके समाचारपत्रों का प्रकाशन हुआ। जाति, धर्म और प्रदेशाभिमान की भावना को निरंतर संपुष्ट किया गया। यद्यपि इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि भारतीयों में प्रदेश और जातिवाद की भावना ने स्थान पाया और विस्तृत देश के विराट स्वरूप की उपासना नहीं हो सकी। परन्तु परिस्थितियों का अध्ययन करके यह जाना जा सकता है कि उस समय कोई भी राष्ट्र व्यापी सामूहिक संगठन होना बहुत कठिन था। अतः सीमित क्षेत्र को लेकर जो संगठन हुए उनसे आगे समाज की बिखरी हुई शक्ति को एकत्र करने में बड़ी सहायता मिली। अवसर आते

ही समाज की विभिन्न इकाइयाँ राष्ट्रीय भावना के गहरे रंग से रंगी गईं। विभिन्न प्रदेश-भाषाओं तथा पत्रों के द्वारा जागरण के नये स्वरों ने सर्व-साधारण में प्रवेश किया। बंगाल की दुर्गा पूजा, महाराष्ट्र का गणेशोत्सव, उत्तर भारत की विजय दशमी आदि पर्व प्रकारांतर से राष्ट्रीय चेतना के प्रदर्शन ही थे। ये प्रदर्शन अपनी छोटी सीमाओं को रखकर भी राष्ट्र की व्यापकता के विरुद्ध नहीं हुए। जन जागरण की इस लहर तथा तत्कालीन मनोभावों का वर्णन-विश्लेषण देश की विभिन्न प्रदेश भाषाओं में देखने को मिलता है। परन्तु यहाँ एक उल्लेखनीय बात यह है कि हिन्दी के साहित्यकारों ने वर्णन विश्लेषण तथा भाव प्रदर्शन की जो प्रणाली अपनाई वह संपूर्ण देश की थी। घर के बड़े की भाँति हिन्दी ने अपनी सभी सहोदर भाषाओं के भावों का रक्षण करते हुए देश की भावधारा का नेतृत्व आगे बढ़ कर किया। हिन्दी भाषा की सीधी टक्कर किसी से हुई तो वह सिर्फ अभारतीय इस्लामी कूटनीतिज्ञों तथा राष्ट्र विरोधी भावनाओं का पोषण करने वाले तत्वों से ही। विदेशी शासकोंने अपनी नीति की सफलता के लिए जो अमोघ अस्त्र निकाला, वह था देश की प्रत्येक वस्तु को दो भागों में बाँट कर परस्पर द्वन्द कराते रहना और इसका फल सारे देश को भुगतना पड़ा। हिन्दी उर्दू, हिन्दू मुसलमान, और बाद को हिन्दुस्तान पाकिस्तान की समस्या अँग्रेज शासकों की फूट डालो और राज्य करो की विषैली बेल का ही फल था। यदि प्रारम्भ से ही सभी लोग देश और भाषा की उपासना समान रूप से करते होते तो १९वीं तथा २०वीं शताब्दी का भारतीय पुनर्जागरण युग तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता का इतिहास कुछ दूसरे ढंग से लिखा जाता। अस्तु, तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक समस्याओं के प्रति लोक नेताओं तथा साहित्य साधकों का ध्यान बराबर रहा और उसकी ओर ये लोग पूर्ण जागरूक रहे। हिन्दी साहित्य के तत्कालीन प्रतिनिधि भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने उपर्युक्त समस्याओं तथा सर्वसाधारण में व्याप्त अंतः बाह्य विचार धारा

का न केवल चित्रण किया प्रत्युत लोकनायक बनकर नेतृत्व भी किया। इस युग के नायकों के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या थी अस्तित्व रक्षा की। सभी तरफ से आघात हो रहे थे! दरिद्र, निर्बल तथा पराजित और थका भारतीय समाज का अस्तित्व जैसे डगमगाने लगा था। ऐसी स्थिति में सिर्फ मनोबल ही था, प्राचीन गौरव की भावना ही थी जो बाहरी कठिनाइयों में भी समाज के डगमगाते पैरों को किसी प्रकार साधने का प्रयास कर रही थी। निरंतर क्षीण होने वाला मनोबल और मृगमरीचिका सा आभास जान पड़ने वाला प्राचीन गौरव को यदि उस समय किसी ने शक्ति के साथ सम्हाला था तो वह प्रादेशिक भाषाओं के अतिरिक्त केन्द्रीय दृष्टि से हिन्दी ने। भारतीय समाज और उसकी शक्ति के स्रोतों की रक्षा का महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह जितनी निष्ठा के साथ भारतेन्दु मण्डल ने किया उस पर किसे गौरव का अनुभव न होगा? इस प्रकार नित नये घात-प्रतिघात तथा नये जीवन दर्शन का प्रवेश ही आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारम्भ बिन्दु है; और यही है भारतेन्दु युग के साहित्य की पृष्ठि भूमि!

विकासक्रम—हिन्दीसाहित्य के साधकों ने संकीर्णता से कभी नहीं सोचा, उनकी दृष्टि में संपूर्ण देश हिन्दुस्तान था, प्रत्येक निवासी हिन्दू था और उन सब को एक में बाँध रखने वाली भाषा थी हिन्दी। पंडित प्रतापनारायण मिश्र की ये पंक्तियाँ इन्हीं भावों का प्रतिनिधित्व करती हैं:—

चहहु जो साँचो निज कल्यान।
तौ सब मिलि भारत संतान॥
जपौ निरंतर एक जबान।
हिन्दी–हिन्दू–हिन्दुस्तान।

भारतेन्दु ने गद्य में हिंदी को नई चाल में ढ़ाल दिया था परन्तु पद्य की ओर उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। हिन्दी कविता विषय की दृष्टि से नया रूप धारण करने लगी थी और उसके वेग और बोझ को सम्हालने में ब्रजभाषा असमर्थ थी। सदियों से प्रेम, भक्ति, वीर और शृंगार के

मृदु भावों को अपने चार आठ चरणों में समेटने वाले छन्द भी, नये भावों को अपने अंक में स्थान दे नहीं पा रहे थे, अतः विषय, भाषा तथा छन्द की समस्या भारतेन्दु युग के समक्ष थी ही। भारतेन्दु ने छुटपुट प्रयास इस ओर किये अवश्य परन्तु विशेष उद्देश्य को लेकर नहीं। यह काम इस युग के दूसरे महान प्रतिभाशाली व्यक्ति पं० प्रताप नरायण मिश्र ने किया। विषय की दृष्टि से ही नहीं भाषा तथा छन्द की ओर भी उनका ध्यान विशेष रूप से गया। मिश्र जी ने न केवल विषय का विस्तार किया प्रत्युत छन्द एवं शिल्प में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। यद्यपि मिश्र जी का मोह ब्रजभाषा से था परन्तु युग की आवश्यकता के सम्मुख वे दुराग्रही बनकर नहीं रहे। खड़ी बोली का पद्यात्मक स्वरूप निश्चित करने में उन्हें अनेक प्रयोग करने पड़े। भाषा में जनपदीय बोली तथा छन्दों में लोक प्रचलित गीत तथा ख्याल आदि का प्रयोग बिना किसी हिचक के उन्होंने किया। धीरे-धीरे उनके प्रयोगों ने एक निश्चित रूप लेना शुरू किया और परिणामस्वरूप उर्दू के कई छन्द तथा लोक साहित्य के प्रचलित लयात्मक छन्दों को उन्होने प्रतिष्ठित किया। लोक गीतों में उनकी खिचड़ी भाषा को स्थान मिला और उर्दू छन्दों में शुद्ध खड़ी बोली को। पुराने कवित्त, सवैया आदि छन्दों में तथा गेय पदों में ब्रजभाषा ही रक्खी। लोकसाहित्य के प्रचलित छन्दों में रचित इनकी रचनाएँ, गो गुहार, मन की लहर, कानपुर महात्म्य, बुढ़ापा, हरिगङ्गा, तृप्यंताम्, होली, कजली आदि हैं। उर्दू से गजल, कसीदा, कितअ, मुसल्लस जैसी चीजें उन्होंने लाकर दीं। खड़ी बोली का साफ सुथरा रूप उन्होंने प्रायः उर्दू की गजलों तथा अन्य छदों में प्रदर्शित किया। यथा:—

जो अपने लोगों के ऊपर दया नहीं करते,
कहेगा आपको संसार क्या सुनो तो सही।
जो पापियों को भी देते हो शान्ति की आशा,
कहाँ गई वह तुम्हारी दया सुनो तो सही।

सताओ प्यारे पै यह तो बताओ दोष हैं क्या,
कि यों ही देखनी है दीनता सुनो तो सही।
बसो मूर्खते देवि आ के जी में,
तुम्हारे लिए हैं मकाँ कैसे कैसे,
अनुद्योग, आलस्य, संतोष, सेवा,
हमारे भी हैं मिहरवाँ कैसे कैसे।

लावनी छन्द में भी इन्होंने खड़ी बोली का उत्तम परिचय दिया है:—

प्रिय भारतेन्दु की अभी अवस्था क्या थी,
क्या हुआ हायरे हमको क्या आशा थी?
अपना जीवन भी हाय हमें नहिं भाता,
हा, हन्त हन्त यह दुःख सहा नहिं जाता।

उपर्युक्त उद्धृत रचनाओं के अतिरिक्त "शरणागत पालकृपाल प्रभो हमको एक आस तुम्हारी है" और "पितु मात सहायक स्वामि सखा तुमहीं एक नाथ हमारे हो" जैसी सरल और मधुर खड़ी बोली की रचनाएँ मिश्र जी ने रचीं। विषय की दृष्टि से मिश्रजी ने देशभक्ति, समाज सुधार, भाषा प्रेम के अतिरिक्त वसंत, होली, बुढ़ापा, नव संवत्सर काँग्रेस, पशु, बेगारी, जैसे नये विषयों का सम्बन्ध आधुनिक हिन्दी कविता से स्थापित किया। कई बहुत अच्छे शोकगीत और स्वागतगीत भी मिश्र जी ने रचे। मिश्र जी ने ही हिन्दी कविता की दरबारी परंपरा का मूलोच्छेदन किया। किसी धनिक या राज्याधिकारी की प्रशंसा में न तो उन्होंने आकाश पाताल के कुलाबे मिलाये और न ऐसे किसी व्यक्ति की मौतपर उन्होंने आँसू बहाने का उपक्रम किया। जो कोई देश भाषा और समाज के लिये जिया उसकी उन्होंने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और ऐसा जब कोई भी गत हुआ उसके लिए उनके आँसू रुक नहीं सके। भारतेन्दु की मृत्यु पर जो शोक गीत मिश्रजी ने लिखा वह संभवतः अपने युग की वैसी सर्वोत्तम रचना है। चार्ल्स ब्राडला के स्वागत में और फिर उनकी मृत्युपर जो कविता मिश्र जी ने लिखी वह भी भूलने

वाली नहीं। मिश्र जी ने अपनी जिन दो पंक्तियों में मानव जीवन का सिद्धान्त संसार के समक्ष रक्खा और स्वयं उसको अक्षरशः पालन करके दिखाया उससे बढ़कर उनके लिए कहा भी क्या जा सकता है। वे पंक्तियाँ हैं:—

चाल वह चल कि सभी लोग तुझे याद करें।
काम वह कर कि ज़माने में तेरा नाम रहे।

ऊपर कहा जा चुका है कि मिश्र जी ने पद्य में खड़ी बोली की स्थापना करने के लिए कोई आन्दोलन नहीं चलाया परन्तु भविष्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर उन्होंने खड़ी बोली कविता का दिशा निर्देश अवश्य किया। "गद्य और पद्य की भाषा एक हो" का आन्दोलन आचार्य पं० महाबीरप्रसाद द्विवेदी के प्रभावशाली समर्थन से ही सफलता प्राप्त कर सका। द्विवेदी जी के पहले खड़ी बोली का झगड़ा उठाने वाले श्री अयोध्या प्रसाद खत्री का नाम भी प्रमुख है जिन्होंने खड़ी बोली कविता के पक्ष समर्थन में व्यापक प्रचार किया और हिन्दी विद्वानों की सम्मति और सहयोग प्राप्तकर आने वाले युग की पृष्टभूमि तैयार की। आचार्य द्विवेदी जी को यह श्रेय प्राप्त है कि उनके प्रभावशाली समर्थन से कविता में खड़ी बोली को न केवल स्थान मिला प्रत्युत उसका विधिवत विकास भी हुआ। परन्तु खड़ी बोली हिन्दी कविता के सृजनात्मक पक्ष का नेतृत्व पं० श्री धर पाठक ने ही किया। आचार्य द्विवेदी जी के पक्ष समर्थन करने के पूर्व ही सन् १८८६ में पाठक जी ने खड़ी बोली में 'एकांतबासी योगी' की रचना करके आधुनिक हिन्दी कविता के लिए नया मार्ग दिखाया था। यद्यपि पाठक जी ने खड़ी बोली के साथ ब्रजभाषा में भी सर्वोत्तम कविता की। परन्तु खड़ी बोली तथा हिन्दी कविता के विषय और छन्द की ओर जितना ध्यान पाठक जी ने दिया उतना उनके वक्त में और किसी ने नहीं।

'एकांतवासी योगी' के कई वर्ष बाद पाठक जी ने गोल्डस्मिथ के ट्रेवलर का पद्यानुवाद 'श्रांत पथिक' के नाम से खड़ी बोली में किया।

स्फुट रचनाएँ भी खड़ी बोली में पाठक जी ने काफी लिखीं। पाठक जी के रचना काल में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हो जाने से अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन होने लगा था और उसी से प्रभावित होकर जिन हिन्दी विद्वानों ने साहित्यिक रुचि का परिष्कार करने में हाथ लगाया उनमें पाठक जी का नाम प्रमुख है। पाठक जी न केवल अंग्रेजी साहित्य से परिचित थे वरन स्वयं बड़े सरस हृदय एवं प्रकृति प्रेमी कवि भी थे। फलस्वरूप अपने अध्ययन और अनुभव के कारण उन्होंने हिन्दी कविता को यथार्थ से कल्पना की ओर बढ़ाया। पाठक जी ने खड़ी बोली कविता की स्थापना तो की ही उससे भी बड़ा काम आधुनिक हिन्दी कविता के लिए जो उन्होंने किया वह था नवीन विषय और नवीन शिल्प विधान! अतुकान्त और विशेषलयात्मक छन्दों की रचना करके पाठक जी ने आधुनिक हिन्दी कविता को छोटी गलियों से निकालकर बड़े राज मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया। आधुनिक हिन्दी कविता के संस्कार बदलने तथा आत्मा का परिष्कार करने वाले प्रथम कवि पाठक जी ही हैं।

पाठक जी के अतिरिक्त उस समय अन्य कई कवि ऐसे विद्यमान थे, जिनका अच्छा परिचय अंग्रेजी साहित्य से था। शंकर जी, हरिऔध, पूर्ण, आचार्य द्विवेदी जी उन्हीं लोगों में थे। परन्तु फिर भी पाठक जी द्वारा निर्देशित मार्ग पर हिन्दी कविता अग्रसर नहीं हो सकी। इसका कारण था आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नेतृत्व। आचार्य द्विवेदी जी अंग्रेजी साहित्य से परिचित थे परन्तु उनके संस्कार संस्कृत बहुल थे। द्विवेदी जी ने पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा लेने की छूट तो दी परन्तु अनुकृति की नहीं। अतः पाठक जी के काव्य के प्रशंसक होते हुए भी हिन्दी कविता को उन्होंने सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त होकर चलने की आज्ञा नहीं दी। द्विवेदी जी ने हिन्दी कविता को संस्कृत वर्णवृतों की ओर अभिमुख किया। अपने युग की एक मात्र प्रतिनिधि साहित्य पत्रिका

'सरस्वती' के सम्पादकरूप में द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य का लगभग पन्द्रह वर्ष मनोनुकूल परन्तु योग्यता पूर्वक निर्देशन किया।

संस्कृत छन्दों के पक्ष में द्विवेदी जी ने अपूर्व योग दिया। स्वयं लिखकर तथा अपने मित्रों तथा अनुयायियों से लिखाकर प्रतिष्ठित करने में कोई कसर बाकी नहीं रक्खी। हरिऔध, पूर्ण, शंकर, सनेही जैसे कवियों ने भी इस धारा में योग दिया। फलस्वरूप पाठक जी द्वारा प्रवाहित धारा रुद्ध हो गई और हिन्दी कविता एक बार मुक्त प्रांगण से पुनः छन्दों की छोटी राह में जा पहुँची। और वह तब तक वहां से टस से मस नहीं हुई जब तक कि द्विवेदी जी ने सरस्वती सम्पादन से अवकाश ग्रहण नहीं कर लिया और छायावाद का प्रभाव नहीं जमा। छाया वाद का प्रभाव ग्रहण करने पर हिन्दी कविता छन्द के बन्धन तोड़कर बाहर निकली और स्वभवानुकूल विकास कर सकने में समर्थ हुई।

विषय की दृष्टि से पुरानेछन्दों में भी कई कवि नवीनता भरते रहे! शंकरजी आर्यसमाजी थे और समाज सुधार ही उनका प्रमुख लक्ष्यरहा। हरिऔधजी का ध्यान भी समाज की वर्तमान दशा तथा पुराने महान चरित्रों का युगानुरूप चित्रण करके समाजको प्रेरणा देने का रहा। हाँ, भाषा की दृष्टिसे हरिऔधजी ने विशेष कामकिया। उर्दू के प्रभाव से चौपदे लिखकर थोड़े में चमक पैदाकरने की शक्ति का भी विकास किया। पूर्णजी मुख्यतः ब्रजभाषा के कवि थे परन्तु द्विवेदीजी के अनन्य मित्र होनेके कारण इन्हें भी उनके आग्रह सेखड़ी बोली की ओर आनापड़ा और कुछ पुराने तथा नये विषयों को लेकर खड़ी बोली की अच्छीरचनाएँ कीं। प्रकृति चित्रण और कल्पना पक्ष को देखाजाय तो पाठकजीके बाद पूर्ण जी ही ऐसे कवि हैं जो खड़ी बोली में मधुरता की रक्षा करते हुए नवीनता पैदा करसके। 'बसंत वियोग' खण्डकाव्य इसका उदाहरण है। सनेहीजी के विषय शृंगार-प्रेम-भक्ति के अतिरिक्त देश और समाज रहा। सनेहीजीने हिन्दी-उर्दू-तथा संस्कृत के छन्दों में समान सफलता के साथ

लिखा। उर्दू छन्दों का मार्ग पं० प्रताप नारायणमिश्र पहलेही दिखा गये थे। अतः हरिऔध, सनेही तथा दीन जी आदि ने उसे और भी आगे बढ़ाया। इसप्रकार छन्द कीसमस्या भारतेन्दु-प्रतापनारायण मिश्र से चलकर द्विवेदी युग में बहुत कुछ सम्हल चुकी थी। खड़ी बोली के रूप की समस्या द्विवेदी युग में ही स्थिर हुई। शंकर, हरिऔध, पूर्ण सनेही, का नाम इस दिशा में उल्लेखनीय है। आचार्य द्विवेदी जी ने यद्यपि खड़ी बोली के रूप निर्माण में अपूर्व योग दिया परन्तु कविता में ये कोई निश्चित स्वरूप नहीं दे सके। उनकी रचनाओं में यदि भाषा की सरलता आई तो कवित्व खो गया और कवित्व निखरा तो भाषा क्लिष्ट हो गई है। परन्तु खड़ी बोली कविता के इस प्रथम उत्थान में निश्चय अनिश्चय के मन्थन और द्विवेदी जी के भगीरथ प्रयास से खड़ी बोली हिन्दी कविता का द्वितीय उत्थान बड़ा आशापूर्ण और वैभवशाली बन कर आया। इस द्वितीय युग के प्रमुख आकर्षण बाबू मैथिलीशरण जी गुप्त हैं जिनके द्वारा आधुनिक हिन्दी कविता ने सभी दृष्टियोंसे मीलके पत्थर प्राप्त किए। गुप्त जी के पीछे तो दल के दल हिन्दी कविता क्यारी को सजाने सँवारने में लगे और उन्हीं चतुर मालियों की पावन साधना का यह फल है कि हिन्दी काव्योपवन पल्लवित और सुरभित बन सका।

भाषा को समस्या हल जाने पर हिन्दी कविता की धारा जिन विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित हुई उसके मूल में चार व्यक्तित्व और उनके चार पत्रों का नाम उल्लेखनीय है। आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' श्री जयशंकर प्रसाद ने 'इन्दु' श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' तथा माखनलाल चतुर्वेदी ने 'प्रभा' के माध्यम से हिन्दी कविता में युगान्तर स्थापित किया। आचार्य द्विवेदी जी ने भाषा, छन्द, विषय और शैली की दृष्टि से प्रथम युग का सूत्रपात किया। देश धर्म के साथ सामाजिक जागरण के आशावादी स्वरों को झंकृत 'सरस्वती' ने किया। शिल्प की दृष्टि से इति वृत्तात्मकताइस युग की विशेषता रही।

'इन्दु' की शुभ्र शीतल चन्द्रिका से कविता कानन खिला और महका। कोमलता, वैयक्तिकता, आत्म सम्बन्ध और गोपन से गीतात्मकता और भाव प्रवणता का समावेश यहाँ हुआ। कविता कलात्मकता की परिधि में घूमने लगी। कल्पना और वैयक्तिकता में ऐसी डूबी कि दासता, दरिद्रता, समाज पीड़ा और देश की व्याकुलता को देखना उसने बन्द कर दिया! फलस्वरूप तड़पते देश और सिसकते समाज ने उसकी ओर हाथ बढ़ाना ही रोक दिया। 'सरस्वती' और 'इन्दु' राजभक्त नहीं थे परन्तु अन्याय और अत्याचार से पीड़ित देश और जनता जहाँ तक पहुँच चुके थे वहाँ उनके स्वर को शक्ति देने की सामर्थ्य इन पत्रों में नहीं थी। जबकि समाज जूझने को तैयार था और उसका बौद्धिक नेता कवि हुँकारने के लिए कटिबद्ध। इस हुँकृति को व्यक्त करने की क्षमता 'प्रताप' ने दी। जनभावना की पृथ्वी और कला की उच्च कल्पना आकाश का समन्वय करने का श्रेय 'प्रभा' को है। एक प्रकार से बिखरे तारों को जोड़ने का प्रयास 'प्रभा' के द्वारा हुआ। सरस्वती की काव्य वीणा पर इन्दु ने जो कलापूर्ण स्वर बजाए उनकी 'प्रताप' के लोक रूप से कोई घनिष्टता नहीं थी परन्तु जनभावनाओं का कला की गुरुता के साथ समन्वय करके 'प्रभा' ने जिस धारा का प्रवर्तन किया उसका महत्वपूर्ण स्थान है। 'प्रभा' के द्वारा हिन्दी कविता के तीसरे उत्थान युग का सूत्रपात हुआ। पं० नन्ददुलारे बाजपेई ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है :— "जिस नई प्रगीत सृष्टि की चर्चा की गई है, उसके प्रारंभिक स्रष्टा कानपुर की प्रभा के कवि थे। इनमें श्री माखनलाल चतुर्वेदी और श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन के नाम प्रमुख रूप से लिए जा सकते हैं। एक नये काव्य स्वरूप का नवनिर्माण बड़े भावुक हाथों से हो रहा था।" बाजपेई जी आगे लिखते हैं:—" यह उल्लेख किया जा चुका है कि प्रभा के कवियों ने किस प्रकार राष्ट्रीय भावना को 'पथिक' और सुमन जैसे आख्यानों और सनेही के स्फुट राज-

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य पृष्ठ २४

नीतिक पद्यों की सीमा से अलग निकाल कर मुक्तक गीतों का स्वरूप दिया।" स्पष्ट है कि हिन्दी की छायावादी धारा तथा गीत की आधार-भूमि प्रस्तुत करने में 'प्रभा' का प्रमुख स्थान है।

कानपुर की प्रभा तथा बाहर भी कई अच्छे पत्र पत्रिकाएँ हिन्दी प्रगीत की प्रतिष्ठा में लगे थे। इस समय सुकवि के माध्यम से सनेही जी पुरानी धारा का नेतृत्व करते रहे। 'प्रभा' के द्वारा नयी और सुकवि के द्वारा पुरानी धारा का प्रतिनिधित्व होता रहा। नई और पुरानी शैली का अपूर्व संगम स्थल कानपुर बना रहा। प्रारम्भ में जैसे खड़ी बोली और ब्रज भाषा की परस्पर खींचतान में कानपुर के कवि सम्मेलन दोनों के संगम रहे उसी प्रकार कवित्त सवैयों तथा गीतों की खींचतान में भी यहाँ दोनों का समान रूप से संपोषण हुआ। सनेही, हितैषी जैसे कवित्त सवैया लेखक रहे तो साथ ही नवीन, भगवती चरण वर्मा, हृदयेश जैसे गीत लेखक भी। कानपुर के कवियों ने हिन्दी कविता का शृङ्गार करने में कोई कमी नहीं आने दी। पुरानी शैली से हो या नयी शैली से, सदैव कला की गुरुता और लोकाभिव्यक्ति में उसके कदम आगे बढ़ते रहे। देश की स्वाधीनता और सामाजिक चेतना का जैसा स्पष्ट स्वर समूह बद्ध होकर कानपुर के कवियों में ध्वनित हुआ उतना शायद हीं कहीं देखने को मिले।

गत अर्ध शताब्दी में हिन्दी काव्य धारा जिन दिशाओं की ओर अग्रसर हुई उसके पीछे जिन शक्तियों का बल लगा है उसमें कानपुर के कई प्रमुख कवि हैं। वाद विशेष का आग्रह लेकर यहां के प्रायः सभी प्रमुख कवियों ने रचनाएँ नहीं रचीं। वादों के विवाद से परे रह कर यहां के प्रतिभाशाली कवियों ने व्यष्टि और

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य पृष्ठ २७

समष्टि का विवेकयुक्त सामंजस्य किया है। भाषा के स्वरूप, विषय प्रतिपादन, तथा काव्य के अन्यान्य उपादानों को लेकर विभिन्न दृष्टियों से यहां उत्तमोत्तम रचनाएँ होती रही हैं।

भाषा की दृष्टि से सनेही जी आमफहम भाषा के समर्थक और प्रचारक हैं तो उसी धारा के शक्तिशाली कवि हितैषी जी शुद्ध और संस्कृत निष्ठ हिन्दी के पक्षपाती और पोषक हैं। गीत क्षेत्र में नवीन जी ने अत्यन्त प्राँजल भाषा और हिन्दी की मौलिक गीत प्रणाली को अपनाया। तथा हृदयेश ने हिन्दी का समृद्धिशाली रूप अपनाकर भी उर्दू शैली का प्रभाव ग्रहण किया।

बच्चन की हालावादी रचनाओं से हिन्दी जगत में कोलाहल मचा और उसको अभारतीय आदि विशेषण लगा कर विरोध व्यक्त किया गया। परन्तु हाला की जो मस्ती बच्चन ने नवयुग को दी थी उसे छुड़ा देना मुश्किल ही था। परिणामस्वरूप कुछ लोगों ने भारतीयता के रंग में विजया के माध्यम से वह मस्ती प्रदान की। कानपुर के कई कवियों ने इस ओर ध्यान दिया। परन्तु विशेष सफलता अभिराम शर्मा तथा प्रणयेश को मिली।

विभिन्न मोड़ों से गुजरती हुई आज की हिन्दी कविता पूर्णरूपेण जनभावनाओं का प्रतिनिधित्व करने लगी है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता, आर्थिक विषमता, संकीर्णता से निवृति, विश्व बन्धुत्व का प्रचार के साथ आज जाति, समाज, राष्ट्र की सीमा से उठ कर मानव मात्र के कल्याण और सुख चिंतन उसका अंग बन गया है। साथ ही देश में फैली अनैतिकता, स्वार्थ, बेचैनी, हाहाकार भी आज की कविता का प्रमुख स्वर है। इन भावनाओं को नई पीढ़ी सँजो रही है। दिनकर इस क्षेत्र का नेता है। कानपुर में इसका सफल गायक नीरज है। नीरज की अनुभूतियों और भाव प्रवणता ने कविता

के विद्रोही स्वरों में ओज भी भरा है। शृंगार की उद्दाम वासनाओं के साथ ही दीनों की करुण कराह और युग का मानवता वादी संदेश उसके प्रिय विषय हैं।

एक ओर हिन्दी कविता जन भावनाओं का माध्यम है तो दूसरी ओर कला की महत् ऊंचाई के साथ रोमान्टिक प्रभाव को ले कर चल रही है। प्रायः आज के कलावादी व्यक्ति अपनी रचनाओं में रोमांसवादी हैं। आत्मविश्लेषण, वैयक्तिक भावनाओं के घटाटोप में वे हृदय के उस अन्तःपक्ष को समस्त वाह्य परिस्थितियों को छोड़कर छू लेते हैं जहाँ केवल प्रेम का ही स्थान सुरक्षित है।

हिन्दी कविता का सम्बन्ध अब तक केवल अंग्रेजी से रहा था। स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद हमारे देश का सम्मान विश्व के सभी उन्नतशील राष्ट्रों में होने लगा है। हिंन्दी का साहित्य अब तक अंग्रेजी साहित्य से ही प्रेरणा लेता रहा था अब अन्य राष्ट्रों के सम्पन्न साहित्य से उसका सम्पर्क हुआ है। नित्य विभिन्न देश के सांस्कृतिक तथा साहित्यिक आयोजनों में विचारों का आदान प्रदान तथा परस्पर कलाकारों साहित्यकारों का मिलन हो रहा है। एक दूसरे के साहित्य का अध्ययन और मनन तेजी के साथ होने लगा है। अतः निश्चय ही हमारा साहित्य अपने नये सम्बन्धियों को कुछ सिखायेगा और उनसे कुछ सीखेगा।

आगे कानपुर के उन कवियों का परिचय दिया जा रहा है जिनके द्वारा खड़ी बोली कविता की प्राण प्रतिष्ठा में योग दिया गया और जिनके कवित्व से साहित्य की श्री वृद्धि हुई। आधुनिक कवि होकर भी विभिन्न धाराओं का प्रतिनिधित्व करने के कारण पाठकों के सुभीते के लिये इनका वर्गीकरण आवश्यक हो गया है अतः छन्द सवैया लेखक तथा पुराने विषयों का प्रतिपादन करने वाले कवियों को पुरानी धारा, तथा नये विषयों तथा शिल्प को अपना कर लिखने वालों कों को नई धारा के अन्तर्गत रक्खा गया है।

पुरानी धारा

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'—मुख्यतः ब्रजभाषा के ही कवि थे परन्तु खडी बोली कविता के सफल सर्जक भी थे। पूर्ण जी ने खडी बोली कविता के पहले दौर में ही जो दिया वह प्रौढ़ भी था और महत्वपूर्ण भी। सन १६०६ ई० में 'स्वदेशी कुण्डल' और 'बसंत वियोग' नामक खंडकाव्य खडी बोली में लिखा। स्वदेशी कुण्डल में ५२ कुण्डलियाँ संगृहीत हैं और इसकी भाषा हिन्दी उर्दू मिश्रित है। परन्तु 'बसंत वियोग' इनका बहुत ही उत्तम काव्य है। खडी बोली कविता की प्रौढ़ दिशा की ओर यह पूर्ण जी का महत्वपूर्ण एवं सक्रिय कदम था। भाषा, भाव, प्रतीक, छन्द योजना आदि दृष्टियों से 'बसंत वियोग' का खडी बोली कविता के प्रारम्भ काल में ऐतिहासिक स्थान है। यह लघु खंड काव्य दो भागों के अन्तर्गत छः अध्याय में पूर्ण हुआ है। प्रकृति का रूपक बांधकर भारतवर्ष का बडा ही रोचक वर्णन हुआ है। इसकी कथा वस्तु में भारत रूपी उपवन में किसी पथिक का आगमन तथा मुग्ध होकर उसके सम्बन्ध में अधिक जानने की जिज्ञासा प्रकट करने; उपवन के मालियों द्वारा जिज्ञासु को वर्तमान स्थिति का अवलोकन करा के भूतकाल का वैभव वर्णन करते हुए उत्कर्ष अपकर्ष का इतिहास बता कर वर्तमान दशा पर चिन्ता प्रकट करना है। अन्त में आकाश-वाणी होती है और उसमें उपवन के पुनः उत्कर्ष की घोषणा की जाती है। पूर्ण जी ने इसकी कथावस्तु को सुन्दर ढंग से विकसित करके प्रभावशाली बनाया है। प्रकृति वर्णन में पूर्ण जी की सूक्ष्म वर्णन शक्ति एवं कवि कुशलता देखते ही बनती है। खडी बोली की इतनी श्रेष्ठ कृति अपने समय की यह अकेली है। भाषा सौष्ठव, छन्द विधान और वर्णन चातुर्य

में कला की रोचकता एवं काव्य में बड़ा निखार आया है। प्रारम्भ देखिये;—

संवत् क्या था इसका कुछ भी नहीं विवेक।
देश समझ लो मृत्यु लोक में कोई एक॥
किसी पांथ का एक मनोहर कुसुमाकर का हुआ प्रवेश।
जिसकी छवि पर एक बार तो विवश मुग्ध होता अलकेश॥

इस प्रकार कथा स्वाभाविक प्रवाह के साथ आगे बढ़ती है और देश की सीमा बताते हुए उपवन के माली दर्शक से कहते हैं:—

हे नर दक्षिण! इसके दक्षिण पश्चिम पूर्व।
है अपार जल से परिपूरित कोश अपूर्व।
पवन देवता गगन पंथ से सुघन घटों में लेकर नीर।
सींचा करते हैं यह उपवन करके सदा कृपा गम्भीर॥

× × ×

सफल गगन नीलिमा अचल काली घटा।
यान रँगीले इन्द्र चाप जग में छुटा॥
सहचर हँसावली, बलाकावली पास ही त्यों लसी।
बरस अद्भुत रंग अनूठे अंग सुहाये पावसी॥

हिमालय की शोभा वर्णन:—

रवि प्रकाशित हिम वलित शिखरावली।
दूर से इस भाँति लगती थी भली॥
चारु चाँदी के कँगूरों पर चढ़ा जल स्वर्ण का।
श्वेत में किंवा हुआ आभास पीले वर्ण का॥ आदि

पूर्ण जी ने कई बहुत सशक्त फुटकल रचनाएँ खड़ी बोली में लिखीं। उनकी 'क्या हिन्दी मुर्दा भाषा है' शीर्षक लम्बी रचना की प्रारम्भिक दो पंक्तियाँ तो आप्त वाक्य की भाँति उध्दृत की जाती हैं:—

अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है।
है वह मुर्दा देश जहाँ साहित्य नहीं है॥

'सरस्वती में प्रकाशित रविवर्मा के चित्र 'कृष्ण' पर लिखित इनकी ये पंक्तियाँ पठनीय हैं:—

सगुण होकर निर्गुण रूप से।
जगत त्राण किया भव कूप से।
सगुण से फिर निर्गुण हो गये।
नियम हैं नट नागर के नये॥

अस्तु पूर्ण जी ने कविता को ऋजुता प्रदान की और अपने द्वारा न केवल कानपुर में खड़ी बोली कविता को स्थायित्व प्रदान किया प्रत्युत आधुनिक हिन्दी कविता में अपनी कृतियों से मील के पत्थर स्थापित किए।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (१६४०) आधुनिक हिन्दी कविता के स्तंभ तथा राष्ट्रीय जागरण के अग्रणी कवि हैं। खड़ी बोली सजा सँवार कर काव्योपयोगी बनाने में आपका प्रमुख स्थान है। आरम्भ में आप ब्रजभाषा में लिखते थे खड़ी बोली का आन्दोलन तेजी से होने पर सनेही जी इस ओर बढ़े और अपनी प्रतिभा तथा कृतित्व से एक चौथाई शताब्दी तक 'सुकवि' के माध्यम से आधुनिक हिन्दी काव्य की पुरानी धारा का सफल नेतृत्व किया। सवैया घनाक्षरी तथा अन्य पुराने छन्दों में आधुनिक विचार और खड़ी बोली में मधुरता का प्रवेश कराने में आपका बहुमूल्य योगदान है। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में आप समानगति से लिखते हैं।

त्रिशूल उपनाम से भी आपने वहुत लिखा है। भाषा, छन्द तथा विषय की दृष्टि से इनकी काव्यधारा को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

भाषा की दृष्टि से सनेही हिन्दी के और त्रिशूल उर्दू या हिन्दुस्तानी के कवि कहे जाते हैं। विषय की दृष्टि से सनेही व्यक्ति के प्रतिनिधि हैं तो त्रिशूल समाज के। सनेही जी की रचनाएँ श्रेष्ठ कला कृतियाँ हैं तो त्रिशूल की देश और समाज का दर्पण। काव्य शास्त्र के साथ कलापक्ष का सम्यक विकास सनेही की कविताओं में हुआ और जीवन की विक-

लता एवं हाहाकार का सफल चित्रण त्रिशूल ने किया। कला की स्थायी मान्यताएँ सनेही में मिलेंगी तो जननेतृत्व की सामायिक भावनाएँ त्रिशूल में।

हिन्दी कविता को युगान्तरकारी मोड़ देने में त्रिशूल का महत्वपूर्ण स्थान है। त्रिशूल की रचनाएँ राष्ट्रीय स्वाधीनता, जन जागरण और अपने युग के प्रतिपूर्ण जागरूक कवि की जीती जागती तस्वीरें हैं। युग की प्रत्येक समस्या पर आपकी दृष्टि गई और उसे सफल अभिव्यक्ति देने में समर्थ रहे। राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के तो त्रिशूल वैतालो ही हैं। सोये अलसाये हारेथके और प्रमादी भारतीयों के शरीर में चेतना, स्फूर्ति और कर्त्तव्य की ज्योति जगाने में आप सदैव आगे रहे। त्रिशूल की रचनाओं में भारत के प्राचीन वैभव के प्रति शोक के आठ आँसू ही नहीं बहे हैं प्रत्युत वर्तमान का कर्त्तव्य निर्देश भी किया गया है। समस्या का मार्मिक वर्णन करके ही कवि चुप नहीं हो गया वरन् उसके समाधान का मार्ग भी निर्भीकता के साथ इंगति करने में भी कवि आगे रहा है। यथा अच्छे बुरे का ज्ञान कराते हुए कवि कहता है—(पराधीनता से नहीं बढ़कर कोई हीनता) तो दूसरी ओर निरंकुश विदेशी शासन को ललकार रहा है।

असहयोग कर दो, असहयोग कर दो
हृदय चोट खाये दबाओगे कब तक ?
बने नीच यों मार खाओगे कब तक ?
तुम्हीं नाज बेजा उठाओगे कब तक ?
बँधे बंदगी यों बजाओगे कब तक !
असहयोग कर दो, असहयोग कर दो।

असहयोग का दीक्षा मंत्र देते हुए वे पूर्ण अहिंसा का पालन तथा सत्य और प्रेम से युद्ध करने वालों को स्थिति का ज्ञान कराते हैं:—

सहकर सिर पर मार मौनही रहना होगा;
आये दिन की कड़ी मुसीबत सहना होगा।
रंगमहल सी जेल आहनी गहना होगा;
किन्तु न मुख से कभी हन्त हा कहना होगा।
करना होगा सामना भीषण अत्याचार का।
सहना होगा घाव पर घाव तीर तलवार का।

आर्थिक असमानता से त्रस्त मानवता और देशवासियों की गरीबी तथा उनके शोषण का चित्र खींचते हुए:—

कुछ भूखों मर रहे माहातनु शीर्ण हुआ हैं।
कुछ इतना खा गये कि घोर अजीर्ण हुआ है॥
कैसा यह वैषम्य भाव अवतीर्ण हुआ है।
जीर्ण हुआ मस्तिष्क हृदय से कीर्ण हुआ है॥
कुछ मधु पीकर मत्त हों, आँसू पीकर कुछ रहें।
कुछ लूटें संसार सुख, मरते जी कर कुछ रहें॥
कुछ को मोहनभोग बैठकर हों खाने को।
कुछ सोयें अधपेट तरस दाने दाने को॥
पड़े पड़े ही लोग लगें कुछ मौज उड़ाने।
कुछ श्रम से भी पा न सकें मुट्ठीभर दाने॥

और समाधान में समानता का सिद्धान्त प्रतिपादन करते हुए नियामक के स्वर में कवि कहता है:—

सांसारिक सम्पत्ति में सबका सम अधिकार हो
वह खेती या शिल्प हो विद्या या व्यापार हो
एक रहे सुर और दूसरा असुर न हो अब,
दुर्योधन हो एक दूसरा विदुर न हो अब।
एक रहे कटु और दूसरा मुकुट न हो अब,
बहुत रहा वैषम्य जगत में प्रचुर न हो अब।

सुख दुख सम सब के लिए हों इस नये समाज में।
सब का हाथ समान हो लगा तख्त में ताज में॥

त्रिशूल उपनाम से आपने न केवल स्वाधीनता के गीत गाये प्रत्युत देश के सभी वर्गों की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया और उन्नति के लिये प्रेरित करते हुए मार्ग निर्देशन भी किया। आर्थिक विषमता अस्पृश्यता, ऊंच नीच के भेदभाव, देश, भाषा, धर्म आदि समस्याओं को अपनी कविता का माध्यम बना कर आपने अपने युग का प्रतिनिधित्व किया।

भाषा की दृष्टि से आप सरल तथा रोजमर्राह बोलचाल की भाषा के समर्थक हैं और अपनी रचनाओं में इस नीति का बड़ी सफलता के साथ निर्वाह भी किया है। सरल और बोलचाल की भाषा में कवित्व पैदा करना आपके कवि कौशल का उदाहरण है। व्याकरण सम्मत स्वच्छ और जानदार भाषा लिखने वालों में आप अग्रगण्य हैं। उर्दू को आप हिन्दी की एक शैली मात्र ही मानते हैं; उससे अलग वह कोई भाषा नहीं। उर्दू के सम्बन्ध में मातृभाषा की महत्ता, शीर्षक कविता में आपने लिखा भी है:—

नहीं है तत्व कोई और इस उर्दू के ढांचे में,
ढली है देखिये यह पूर्णतः हिन्दी के सांचे में।

अतः आपकी रचनाओं में उर्दू शब्दों का बाहुल्य, उसकी शैली और जहाँ तहाँ पदावली भी देखने को मिले तो अनुपयुक्त नहीं है। भाषा को वे अभिव्यक्ति का माध्यम ही मानते हैं। आपने आलोचकों तथा विचार-भाषा आदि पर टीका करने वालों के लिये अपनी नीति का स्पष्टीकरण निम्न पंक्तियों में कर दिया है:—

अब वतन देखूँ, कि सरकार की अबरू देखूँ,
हिन्द को देखूँ, कि अब मुस्लिमा हिन्दू देखूँ।
तह की समझेंगे, सखुन फहम जवां हो कोई,
काम अपना करूँ, या हिन्दिओ उर्दू देखूँ?

उपर्युक्त पंक्तियां पढ़ कर त्रिशूल रूप का पूर्ण परिचय मिल जाता है। अस्तु, आपकी त्रिशूल उपनाम से लिखित बहुमूल्य रचनाएँ पराधीन भारत और उसके नागरिकों की जीती जागती तस्वीरें तो हैं ही साथ ही उन्नति के लिए संघर्ष रत देश और समाज की भावनाओं का प्रतिविम्ब भी हैं।

सनेही नाम से जो रचनाएं आपने की हैं उनमें काव्य के स्थायी तत्वों की ओर आपका विशेष ध्यान रहा। सामयिकता का प्रभाव इन रचनाओं में प्रायः नहीं रहा। काव्य की कलात्मकता और उत्कर्षता इनके सनेही रूप में ही शिखर तक पहुँची है। खड़ीबोली में ब्रजभाषा की मधुरता, लोच तथा प्रवाह पैदा कर देने के गुण का निरंतर विकास इनमें देखा जा सकता है। काव्य का शास्त्रीय पक्ष इन रचनाओं में उत्तमता के साथ आया है। अलंकार स्वतः आने से रसका सहज परिपाक, शब्द चयन, छन्द विधान, भाषासौष्ठव, अर्थ बोधता आदि सद्‌गुणों का समिश्रण सनेही जी की रचनाओं में प्रत्यक्षतः देखने को मिलता है। उपर्युक्त विशेषता पैदा करने में आपको अपने युग के उन सभी प्रयोगों को करना पडा था जो द्विवेदी जी द्वारा संचालित थे।

द्विवेदी जी के अतिरिक्त भी जो प्रयोग भिन्न भिन्न रूप से हो रहे थे उन्हें तथा अपने द्वारा भी कई चीजों को सिद्ध करने के प्रयोगों की हर दिशा में आपने पैर रक्खा फलस्वरूप हिन्दी कविता की पुरानी धारा ने जिन मोड़ों की ओर पैर रख कर अन्ततः जिसे स्वीकार किया उस काव्य धारा ने 'सनेही स्कूल' को जन्म दिया।

आपके युग के मुख्य प्रयोग भाषा और छन्द के थे। उर्दू, संस्कृत और हिन्दी छन्दों के प्रयोग निरंतर हो रहे थे। उर्दू का मार्ग प० प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी कविताओं के द्वारा दिखा ही दिया था। और हरिऔध जी उर्दू के ढंग पर चौपदों की रचना करने में दत्तचित्त थे। दूसरी ओर आचार्य द्विवेदी जी संस्कृत के वर्णवृत्तों को हिन्दी में

प्रतिष्ठित करने की ओर प्रवृत्त थे। तीसरा मार्ग हिन्दी के अपने छन्दों का था। सनेही जी ने इन सभी दिशाओं में समान सफलता प्राप्त की। उर्दू के प्रयोग त्रिशूल नाम से रची रचनाओं में ऊपर देखा जा सकता है, यहां उसी धारा के सनेही द्वारा प्रस्तुत चौपदे भी देखिये—

ज्येष्ठ के मध्याह्न के लू की लपट,
या दहक है घोर खांडव दाहकी।
या कि बड़वानल बहक आया यहाँ,
या किसी दुख दीन ने है आह की।

× × ×

हो किसी देश में न हे ईश्वर,
हाय हालत तबाह दीनों की।
आग इसकी लगी नहीं बुझती,
है जहाँ सोज़ आह दीनों की।

संस्कृत वृत्तों में भी आपने उत्तम रचनाएं की हैं तथाः—

दिनकर कमलों को स्वच्छ देता सुहास,
शशि कुमुद गणों को रम्य देता विकास।
जलद बरसते हैं भूमि में अम्बु धारा,
सुजन बिन कहे ही साधते कार्य सारा।
विकल अति क्षुधा से देख के पुत्र प्यारा,
जननि हृदय से है छूटती दुग्ध धारा।
लख कर कुदशा त्यों दीन दुखी जनों की,
सहज प्रकट होती है दया सज्जनों की।

और हिन्दी के ब्रजभाषा में प्रयुक्त घनाक्षरी, सवैया आदि छन्दों के अतिरिक्त अन्य छन्दों में अपने सरस एव श्रेष्ठ रचनाएं करके हिन्दी मुक्तक काव्य को गेयता और गरिमा प्रदान की। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

तू है गगन विस्तीर्ण तो,
मैं एक तारा क्षुद्र हूँ।
तू है महासागर अगम,
मैं एक धारा क्षुद्र हूँ
तू है महानद तुल्य तो,
मैं एक बूँद समान हूँ।
तू है मनोहर गीत तो,
मैं एक उसकी तान हूँ।

आपने बहुत लिखा है और प्रायः हिन्दी की सभी पत्र पत्रिकाओं में आपकी रचनाएं प्रकाशित होती रही हैं। परन्तु अब तक आपका कोई भी श्रेष्ठ संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है; जिसमें आपके काव्य की बहुमुखी प्रतिभा तथा प्रतिनिधित्व करने वाली रचनाएं प्राप्त हो सकें। कुछ छोटी छोटी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनके नाम हैं "प्रेम पचीसी, कृषक क्रन्दन, राष्ट्रीय मंत्र, राष्ट्रीय वीणा, त्रिशूल तरंग, कलामे त्रिशूल तथा संजीवनी।" उपर्युक्त पुस्तकें प्रायः सामयिक विताओं के अत्यन्त लघु रूप हैं। परन्तु सनेही जी ने जितना और जैसा लिखा है उस पर प्रकाश डालने वाला कोई भी ग्रन्थ अब तक उपलब्ध नहीं है।

सनेही जी ने पर्याप्त मात्रा में और उच्च कोटि का लिखा है; साथ ही एक विशिष्ट धारा का नेतृत्व किया जो हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'सनेही स्कूल' के नाम से अभिहित है। अतः इस स्कूल के आचार्य का समग्र रूप एकत्रित होकर सामने न आना हिन्दी का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है।

राष्ट्रीय स्वाधीनता और सामाजिक जागरण के वैताली त्रिशूल; आशा और विश्वास के धनी, तथा सरस कवि एवं आचार्य सनेही जी, अपनी रचनाओं के द्वारा सहृदय पाठकों को अपनी ओर बरबस खींचने में कितने समर्थ हैं यह उनके नीचे उद्धृत कुछ छन्दों को पढ़ कर जाना जा सकता है—

घूमता कुलाल चक्र कितनी ही तीव्रता से,
एक रेखा सुस्थिर छिपी है चक्र फेरे में।
छिपी रहती है मंद मुस्कान छवि छाया,
भाग्य भामिनी के तीखे तेवर तरेरे में।
आशा द्वार खुलते भी लगती नहीं है देर,
झाँकती निराशा जब चित घोर घेरे में।
क्रान्ति में सनेही एक शांति का निवास छिपा,
प्रबल प्रकाश छिपा अधिक अँधेरे में।

× × × ×

परम समीप हो के रहते हैं दूर-दूर,
रूपवान होकर अरूप रूप धारे हैं।
देही जैसे देह में हो, गेही जैसे गेह में हो,
वैसे रोम-रोम में सनेही प्राण प्यारे हैं।
स्वबस बसाये हैं, बसे हैं, कुछ बस नहीं,
रिस हो कि रस बस उनके सहारे हैं।
नयन हमारे हैं न हृदय हमारा यह,
मन ही हमारा है न प्राण ही हमारे हैं।

× × × ×

सिन्धु के हैं बुन्द, कहते हैं सिन्धु बुन्द में हैं,
हवा से भरे हैं सर ऊपर उठाये हैं।
कुछ पल ही में फिर मिलता पता है नहीं,
तत्व जितने हैं सब तत्वों में समाये हैं।
अभिमान करें तो सनेही किस बात पर,
आज तक इतना भी नहीं जान पाये हैं।
भेजा किसने है ? और उसको अभीष्ट क्या है ?
कौन हैं ? कहाँ के हैं ? कहाँ से यहाँ आये हैं ?

'बुझा हुआ दीपक' शीर्षक सर्वोत्तम तीन सवैयों में तो आपने जैसे अपने जीवन की ही गम्भीर और मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत कर दी है—

करने चले तंग पतंग जला कर, मिट्टी में मिट्टी मिला चुका हूँ।
तम तोम का काम तमाम किया, दुनियाँ को प्रकाश में ला चुका हूँ।
नहीं चाह सनेही स्नेह की और स्नेह में जी मैं जला चुका हूँ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं पथ सैकड़ों को दिखला चुका हूँ।

× × × ×

जगती का अँधेरा मिटाकर आँखों में, आँख की तारिका होके समाये।
परवा न हवा की करे कुछ भी, भिड़े आके जो कीट पतंग जलाये।
निज ज्योति से दे नव ज्योति जहान को अन्त में ज्योति में ज्योति मिलाये।
जलना हो जिसे वो जले मुझ सा, बुझना हो जिसे मुझ सा बुझ जाये।

× × × ×

लघु मिट्टी का पात्र था स्नेह भरा, जितना उसमें भर जाने दिया।
धर बत्ती दिए पर कोई गया, चुपचाप उसे धर जाने दिया।
पर हेतु रहा जलता मैं निशा भर, मृत्यु का भी डर जाने दिया।
मुसकाता रहा बुझते बुझते हँसते हँसते सर जाने दिया।

लक्ष्मीधर वाजपेयी १६०४-२०१०—वाजपेयी जी का जन्म चैत शुक्ल १० संवत १६४४ को मैथा ग्राम में हुआ था। हिन्दी के सुप्रसिद्ध सम्पादक और लेखक के रूप में वे अमर हैं। द्विवेदी जी से प्रेरित होकर कवितायें भी इन्होंने बहुत अच्छी लिखी हैं। पहले ब्रजभाषा में और बाद को खड़ी बोली में लिखना शुरू किया था। महाकवि कालिदास के मेघदूत का बड़ा ही उत्तम समश्लोकी एवं समवृत्तानुवाद इन्होंने खड़ी बोली में किया था। इनकी कविताएँ सरस और महत्वपूर्ण हैं। प्रकृति वर्णन मेंः—

नील नीरद माहिं दीसत इन्द्र धनुषहिं भाय।
मन्द गति सरितान की भइ सुठि सोई दर साय।
व्योम शोभा बढ़ति निशि में नखत अवली पाय।
मनु सितारन जटित माया नीलपट सर साय।

हंस कलरव करत अब वर विमल सरितन तीर।
सारसन की सुभग जोड़ी कहुँ किलोलत नीर।
शुक चक्रवाक लखाहिं कहुँ कहुँ खंजननि की भीर
स्वेत पंछी उड़त नभ पथ मनहुँ उजरो शरद चीर।

ग्रीष्म काल की अन्त समय की यह कलिका है अति प्यारी
विकसी हुई अकेली शोभा पाती इसकी छवि न्यारी
कलियाँ श्रौर खिलीं थीं जो सब थी इसकी सखियाँ सारी
सो सब कुम्हला गईं देखिए सूनी है उनकी क्यारी
सुख दुख दोनों एक साथ ही आते है बारी बारी
इन कलिकाओं से सूचित है विधि विपाक यह संसारी

(ग्रीष्म का अन्तिम गुलाब)

ईश्वर के पूजा विधान पर:—

अद्वय जो सर्वेश है, नहीं स्वरूप न नाम।
नहीं समझ पड़ता करें, कैसे उसे प्रणाम ?
जिसका गुण गाते हुये, वेद हुए हैं मौन।
उसका कीर्तन जगत में, कर सकता है कौन ?
पाते हैं रवि शशि अनल, जिससे प्रखर प्रकाश।
कहो उसी को कहाँ से, लावें दीप उजास ?
भीतर बाहर पूर्ण है, जिसका रूप अनूप।
करें विसर्जन हम कहाँ, उसका यही स्वरूप ?

(षोडशोपचार पूजा)

'मेघदूत' की झाँकी देखिए:—

तेरे साथी सुरधनु तड़ित हैं वहाँ चित्र नारी,
उनमें गान ध्वनि मुरज की गर्जं तेरी सुप्यारी।
वे ऊँचे स्वच्छम, मणिमयी भूमि तू नीर-धारी,
तेरे ही से सदन अलका के लसें काम चारी।
हाथों में श्री कमल अलकों में कली कुन्द की है।
पाण्डु श्री है वदन पर जो लोध्र रेणू लगी है।

वेणी में है कुरवक गुँथे कर्ण में हैं शिरीष
जो साजे हैं तहँ सब दिये नीप से माँग-केश ।
फूले वृक्षों पर अलि जहाँ नित्य गुंजारते हैं,
हंस श्रेणी युत सर सदा कंज भी फूलते हैं ।
नाचें नित्योत्सुक भवन के चारु प्यारे कलापी,
सायंकाल प्रतिदिन जहाँ चन्द्रिका है सुहाती ।

शिवाधार पाण्डेय (१९४४) म्योर कालेज प्रयाग में अंग्रेजी के अध्यापक रहे। अंग्रेजी तथा हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं। आप ने कविताएँ भी लिखी हैं। व्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में ही आपने लिखा है। विषय और छन्द की दृष्टि से आपने नये नये प्रयोग किये है :—

वीर हो बली हो सुविदित विजयी हो तुम,
अस्त्र में पंडित अखंडित अमोघ शर ।
भूरि महाभाग भार्गवेय भगवान के हो,
जग जन में आहिर पिता के पुनि जैसे सुत ।
भारत कुल भूषण विभूषण वसुधा के सुठि,
जननी जिय जीवन सजीवन हो मेरे प्रिय ।
वीर दुहिताहूँ वीर बंश की सुता हूँ प्रभु,
वीर की वधू हूँ वसुधा व्यापी जिसको यश ।
संगर को तुमको सिधारत सजाह धरे,
कैसे कहे उत्तरा न जाओ नाथ रणपथ ।

× × × ×

माची लुकालुकी या तन जंगम, धावें विहंगम आवें हजारौं ।
कोऊ दुरावे करै परि पावन, कोऊ दुरै यदि पुण्य बहारौं ।
कैसे कोऊ बरनै बपुरो, बिधनाहू दुराय रह्यो मुख चारौं ।
मोंको निहारे लुको लुको लोकन्ह्या तन मैं दुरि तोकों निहारौं ।

रामस्वरूप टण्डन (१९४०-२००१) इन्होंने कई काव्य ग्रंथ, नाटक तथा उपन्यास लिखे परन्तु वह सब सामग्री अप्रकाशित है। दिवंगत होने के कई वर्ष बाद 'सीता परित्याग' नामक एक महाकाव्य इनका प्रकाशित हुआ है। इससे इनकी काव्य प्रतिभा का पता चलता है। विषय पुराना है परन्तु भाषा और वर्णन शैली प्रभावोत्पादक है। प्रकृति वर्णन देखिए:—

पुण्य स्थल के साथसाथ है, रम्य स्थल शोभा शाली।
जहाँ चन्द ज्योत्सना सरिता में, बुनती श्वेत किरण जाली।
कभी-कभी प्रतिबिम्ब गगन का, उसमें छाया करता है।
नीलम आंगण में उडुदल मोती बिखराया करता है।
जहाँ ज्योति बिंब जलते हैं, वे आकाश दीप बनने।
जहाँ दिखाई देते प्रतिपल, बनरंजीव मधुर सपने।
निशा सुन्दरी की गोदी में, निशा नाथ खिल जाता है।
सच पूछो तो उस सुषमा में अमृतभाव मिल जाता है।

दयाशंकर दीक्षित 'देहाती' (१९५१) हास्यरस के सुप्रसिद्ध कवि हैं। विभिन्न विषयों पर स्फुट रचनाएँ समय-समय पर आपने की हैं। दोहा इनका प्रिय छन्द है। ब्रजभाषा और अवधी में समान अधिकार से लिखते हैं। अवधी में लिखीं गई बहुत सी रचनाएँ हास्य रस की उत्तम कविताएँ बन गई हैं। अभी तक इनकी कविताओं का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। हास्य रस के विभिन्न पत्रों में तथा स्थानीय समाचारपत्रों में इनकी बहुत सी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। इनका हास्य जितना मधुर है, व्यंग्य उतना ही परिष्कृत भी। प्रायः हास्य में अश्लीलता और व्यंग्य में कटुता से अपनी रचनाओं को लोग नहीं बचा पाते, देहाती जी इस दोष से मुक्त हैं। हास्य में सहज शिष्टता तथा व्यंग्य में जानदारी और चुटीलापन इनकी सभी रचनाओं में है। अलंकारों

का प्रयोग इनके दोहों में खूब होता है। इन्होंने अधिकतर सामयिक विषयों पर लिखा है परन्तु कुछ रचनाएँ इनकी स्थायी परम्परा की भी हैं। भाषा के प्रति ये अधिक सावधान नहीं रहते, बल्कि जो कहना है उसे जिन शब्दों में कहा जा सकता है, कह देने की ओर ही इनका ध्यान रहता है। इसीलिए इनकी रचनाएँ सर्वसाधारण के निकट स्वाभाविक प्रभाव उत्पन्न कर पाती हैं। अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का वाहुल्य इनके दोहों में देखने को मिलते हैं। हास्यरस की कविता में जितनी मौलिक और नवीन उपमाएँ इन्होंने दी हैं; उतनी अन्य किसी कवि ने नहीं। देखिए:—

ब्यूटीफुल तिय प्रेजुअट, पति कुरूप बे मेल।
मानौ बंबुर बृक्ष पर, बिहरत अंबर बेल॥
काले मुख पर पाउडर, की सोभा सरसाय।
मनौ धुआँनी भीत पर, कलई दीन पुताय॥
पहिरि खीन उन एक दिन, तनिक सौखमा सूट।
मित्र कहिनि गदहा बना, आज पछांही ऊँट॥

भाषा की लक्षणा और व्यंजना की शक्तिशाली अभिव्यक्ति इनके दोहों में देखी जा सकती है। यथार्थ में छिपे व्यंग्यार्थ की झलक

देखिए:—

अब स्वराज्य बछुवा मिली, करन लगे सब आस।
गाँधी बरधा से गये, लेनिनिथ गो के पास।
करिहैं कहा किसान हित, खाय खाय बिच खाँड़।
गाँवन गाँवन घूमते लेनिनिथि गो के साँड़।

व्यंग्य की सीधी चोट करने में भी ये बड़े कुशल हैं:—

नगर पालिका शहर की मरवावति है मूस।
दीख कचहरी जाय के छुट्टा घूमें घूस।

जिमि जल जीवन में करति, जल विहार है सूस।
तिमि शासन के खेत में, घुसी घूमती घूस।
चूनी लिए सिफारसी, सानी रहे लगाय।
जनता पड़िया मर रही, रही दूध नहिं पाय।

काल्पनिक चित्रण करके देहाती जी ने हास्य रस के जिस सहज आनन्द की सृष्टि की है उसका रूप देखिये:—

विरहिन बैठी रेल पै, कढ़ी आह की भाप।
बिन इंजन के चलि भई, गाड़ी आपै आप॥
भक्त विनय सुन लेत ज्यों, विपति विदारन हार।
त्यों रँडुआ सुन लेत हैं, बिछुवन की झनकार॥

भारत के राजा सबै, जासों मानी हार।
वे पटेल सरदार थे, रडुओं के सरदार॥
सत्य अहिंसा जप कियो, सत्याग्रह उपदेश।
जब बापू रडुँआ भये, तब स्वतन्त्र भा देश॥

और:—

पंच ज्ञान इन्द्री बनी, कर्मों इन्द्री पंच,
पंच तत्व से जग बन्यो, जग से बन्यो प्रपंच।
जौन करत परपंच बहु, तौन होत हैं पंच,
बना चहौ सरपंच तौ, सीखौ शास्त्र प्रपंच।

काव्य गम्भीरता की गहन छाया में हास्य की छवि उतारने में भी ये बहुत आगे हैं:—

नयन नाव पै चढ़ि गये, गहे आश पतवार।
नेह सिन्धु भौंरैं विपुल, पार करैं करतार॥
नारद सों सुरपति कह्यो, नेहरू मंत्री कौन।
भारत के नव रत्न वे, कमला के पति जौन॥
बाँटत बुद्धि अपार, तिनकी मति को को गनै।
मूषक पर असवार स्वयं अहैं करिवर बदन॥

गम्भीर रचनाओं में अलंकार से चमत्कार उत्पन्न करने की ओर इनका अधिक ध्यान रहता है:—

नयन पूतरी द्वैघरी, तुम पहँ जो रुकि जाव।
श्याम सलौनो श्यामकी, छवि निरखैझुकिजाय॥
दामिनि सी वृषभानुजा, अरु घन नन्द किशोर।
या छवि पै बलिहार ह्वै, नच्यो करत मनमोर॥
मन तुरंग तन रथ बन्यो, परमारथ की डोर।
ऐसो पा-रथ-रथ चढ़यो, सारथि नन्द किशोर॥

जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' (१६५२) हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ सवैयाकार तथा खड़ी बोली हिन्दी कविता को मजाने वालों में आपका स्थान है। आचार्य द्विवेदी जी के आवाहन पर जिन कवियों ने अपनी प्रतिभा और लगन से खड़ी बोली कविता का श्रृङ्गार किया उनमें एक नाम आपका भी है। पुराने छन्दों में आपने न केवल खड़ी बोली के खुरदरापन को दूर किया प्रत्युत भावों को ऊँची उड़ान तथा अभिव्यक्ति की नवीनता का समावेश भी किया। छायावादी काव्य की भावात्मकता और भाषा की ऋजुता जो गीतों में प्रकट हुई उन विशेषताओं को आपने पुराने छन्द में ही प्रतिष्ठित करके दिखाया। आपकी कविताओं की ओर इंगित करके आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल जी ने अपने इतिहास में लिखा है:—"यदि खड़ी बोली की कविता आरंभ में ऐसी ही सजीवता के साथ चली होती जैसी इनकी रचनाओं में पाई जाती है तो उसे रूखी और नीरस कोई न कहता।"

हितैषी जी राजनीति और साहित्य दोनों ही क्षेत्र के कुशल तथा कर्मठ व्यक्ति हैं। देश की स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लेकर तीन बार जेल यात्रा की और राष्ट्र भाषा हिन्दी की सम्मान रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष किया। दर्शन और ज्योतिष से आपका विशेष लगाव है। कई भाषाओं के साहित्य से अच्छा परिचय होने के कारण आपकी कविता में

कुछ खास विशेषताएँ स्वतः आ गई हैं। संस्कृत की गहराई, बँगला की कमनीयता, उर्दू की वर्णन चातुरी सम्मिलित रूप से यदि हिन्दी के किसी तत्कालीन छन्दकार में सफलता की चोटी तक पहुँची तो वह इन्हीं में।

प्रकाशित काव्य पुस्तकें मातृगीता, वैकाली, कल्लोलिनी के अतिरिक्त मूल से किया गया उमर खैयाम की रुबाइयों का पद्यानुवाद और इनका श्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ 'दर्शना' अप्रकाशित है। मातृ गीता में भारत माता का गुणानुवाद करते हुए राष्ट्रीय भावनाओं का लघु परिचय है। वैकाली अपने समय की नवीन धारा में लिखित इनकी रचनाओं का संग्रह है। इसमें संगृहीत कई रचनाएँ बहुत अच्छी हैं। वर्तमान युग की समस्याओं तथा समाज की पृष्ठभूमि को लक्ष्य करके लिखी गईं आपकी प्रमुख रचनाएँ इसमें संकलित हैं। विषय विभिन्नता के अलावा छन्द और भाषा संबंधी इनके नये नये प्रयोगों का परिचय भी इस पुस्तक की रचनाओं में मिलता है। विषय और वर्णन की दृष्टि से 'अघोर' नामक रचना कितनी सजीव और मार्मिक बन पड़ी है यह नीचे उद्धृत कुछ पंक्तियों से पता चल सकता है। लोकबहिष्कृत चरित्र को संवेदनात्मक अभिव्यक्ति देने वाले कवि संभवतः आप अकेले ही हैं। अघोरी और उसके साधनास्थल का चित्रण देखिए:—

तटवर्ती वट का कुंज जहाँ,
सूझता न जग का ओर छोर।
धक-धक जलती है चिता ज्वाल,
करते उलूक हैं विकल शोर।

शव पर हो पद्मासनासीन,
उच्चारण करता श्रुति अंकोर।
वह कौन अरे है सिद्धि हेतु,
साधना मग्न आनँद विभोर।

विखरे हैं तम से घने केश,
जिसके दृग हैं अंगार रूप।
तन चिता भस्म भूषण उसका,
नर पंजरास्थि है हार रूप।
तृषिताधर जिसके फड़क रहे,
हैं रक्त पूर्ण कर नर कपाल।
शव-मांस गलित सम्मुख करने,
कवलित खुलता कुछ मुख करा।
नर्तित हैं दानव भूत प्रेत,
वैताल दे रहे विकट ताल।
अति अनति दूर हँसती खिलखिल,
खोपड़ी पड़ी यह देख हाल।
भैरव रव का भी हृदय भेद,
नीरवता को कर कम्पवान।
गूँजी अदृश्य कर्कश स्वर में,
तुम कौन अरे साधक महान ?

इसमें गीत; भिन्न तुकान्त छन्द तथा चौपदों में लिखी गई अन्य कविताएँ भी सुन्दर हैं। भिन्न तुकान्त रचना का उदाहरणः—

परम प्रसन्न हो प्रशान्त सिन्धु पति से,
द्रुतवेग से है जोकि मिलने को आरही।
आतप से तपित महीतल के अंगों को,
शीतल है करती पिलाकर सुधा जल जो।
स्तंभित सी हो के वो प्रवाहित तरंगिनी,
कल-कल शब्द करती है या विकल हो।
मूँद कर नयन कुमुद बाल कान्ति से,
करना असहयोग शान्ति मय चाहती।

चौपदों में व्यंग्य के साथ उर्दू का रंग भी देखिए :—

छान डाला है सारी दुनियाँ को,
हर तरफ और ही नजारा है।
खोज मारा नहीं मिली जाने,
शान्ति का किसने खोज मारा है।

× × × ×

राक्षसी वृत्तियाँ हैं राष्ट्रों की।
मौका पाएँ तो बस हड़प जाएँ।
इनकी करतूत का जो नंगाचित्र
देख लें आप वो तड़प जाएँ।

'कल्लोलिनी' नामक पुस्तक आपकी सर्वाधिक प्रसिद्ध और श्रेष्ठ घनाक्षरी तथा सवैयों का संग्रह है।

हिन्दी कविता को आपकी देन क्या है यह इस पुस्तक के बिना देखे नहीं जाना जा सकता। मुख्यतः इसमें आपके टकसाली सवैये हैं। आधुनिक हिन्दी कवियों द्वारा बहिष्कृत हिन्दी की पुरानी छन्द शैली को अपना कर आपने अपनी विशेषताओं से अभिहित किया। सवैया छन्द आपको अधिक प्रिय है और इसमें साधारण सा परिवर्तनकरके अधिक चमत्कार युक्त बनाने का श्रेय आपको ही प्राप्त है। सवैया के मत्तगयंद रूप को आपनेप्रमुखतः अपनाया है। सवैया छन्द मेंउपअन्त्यानुप्रास की पद्धति को स्थायी रूप से प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य हितैषी जी के द्वारा ही हुआ। उपअन्त्यानुप्रास के द्वारा सवैया छन्द न केवल चमत्कार में बढ़ा प्रत्युत उसकी मार्मिकता में भी वृद्धि हुई। सुडौल साँचे में ढलने से खड़ी बोली का खुरदरापन दूर हुआ और उसमें ब्रजभाषा के माधुर्य और कमनीयता के गुण का विकास हुआ। आप हिन्दी के शुद्ध स्वरूप के पक्षपाती हैं अतः भाषा की ऋजुता, छन्द का गठन, भावों की उच्चता तथा स्पष्टता और अभिव्यक्ति की कलात्मकता का समिश्रण एक साथ होने से आपकी रचनाएँ काव्य के उच्चासन की अधिकारिणी बनीं। गीतों की मर्मस्पर्शी वर्णन पद्धति, वैयक्तिक गरिमा तथा भाव

गांभीर्य का जो महत् स्वरूप छायावादी कविता के द्वारा स्पष्ट हुआ उस की पृष्ठभूमि जैसे आपने सवैया छन्द में ही तैयार कर दी थी। आपके द्वारा प्रचारित सवैया की उपअन्त्यानुप्रासात्मक पद्धति का इनके सभी परवर्ती सवैया लेखकों पर प्रभाव पड़ा।

दार्शनिकता और प्रकृति की तादात्म्यता आपकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से उभरकर आई है। प्रकाशित कल्लोलिनी तथा अप्रकाशित 'दर्शना' के छन्द दोनों पक्षों का सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। आपका उमर खैयाम की रुबाइयों का पद्यानुवाद सरसता के साथ गहरी आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। जीवन संघर्ष के सक्रिय सैनिक होकर भी आपने अपनी कविता को नारेबाजी और लघुता का शिकार नहीं होने दिया। यथार्थ की सत्यता का चित्रण भी काव्य कला की उच्चता को बनाये रख कर आपने किया है। गहरी संवेदना और सूक्ष्म विश्लेषण उद्धृत छन्दों में दर्शनीय हैं :

सुख दुख दिन व विभावरी प्रकाशतम,
शीश पै हैं घूमते सदैव चक्राकार से।
उषा अनुरागिनी प्रभाकर के द्वारा प्रभा,
उसकी दिखाती है जो प्राचीदिक द्वार से।
संध्या तो संयोग की संहारिणी हितैषी हाय,
कर देती वंचित है प्रियतम प्यार से।
दिवस है उज्ज्वल बनाता मेरे भाग्य को तो,
रात्रि ढँक देती है अभाग्य अंधकार से।

(गगनोद्गार)

फूट के रो रही हो हिम अश्रु से, या मुसकारही आग भरी हो।
वर्ण है स्वर्ण सा पीत या पी तम, के रँग में अनुराग भरी हो।
हो भुवि लुंठिता या नभ पै चढ़ी, जा रही गर्व से भाग भरी हो।
भाग भरी हो सुहाग की सुन्दरि, कि सँयोग सुहाग भरी हो।

दुखिनी बनीं दीन कुटी की कभी, महलों की कभी महरानी बनीं।
बनीं फूटती ज्वालामुखी वो कभी, हिम कूट की देवि हिमानी बनीं।
चमकीं बन विद्युत रौद्र कभी, घन आनन्द अश्रु कहानी बनीं।
सविता शशि स्नेह सुहाग सनी, कभी आग बनीं कभी पानी बनीं।

(किरण)

कुमुदी क्या सुधांशु से सिंचित होगी, कभी सुधा घोलने वाली बता।
चख सार्थक होंगे चकोरी के क्या, कुछ भेद की खोलने वाली बता।
न संयोग की सूझती राह कोई, अरी जी की टटोलने वाली बता।
कब राका बनेगी हमारी कुहू, औ कुहू कुहू बोलने वाली बता।

× × ×

किस व्याकुल मत्तकी मत्तता है, जो समाकुला औ मतवाली हुई तू।
किस डोलते चित्त का चित्र है, जो प्रति डाली पै डोलने वाली हुई तू।
वह कौन अभागी की भाग्य निशा है, जो हाय सुभाग्य से खाली हुई तू।
किस दग्ध कलेजे के कोयले से, बनके अरी कोयल काली हुई तू।

(कोयल)

जब वेदना से अति व्याकुल चंचल, मैं हुआ दारुण दाहें बढ़ीं।
तब अंचल खींचने को करुणानिधि, का करुणार्द्र कराहें बढ़ीं।
लख कष्ट के लक्षण रक्षण को, कितनी ही छिपी हुई छाहें बढ़ीं।
दुःख देने को जो कर दो बढ़े तो सुख देने को सैकड़ों बाहें बढ़ीं।

× × ×

हैं ऋतुराज से आये तो शस्य में स्वर्णस्वरूप समाये हुये हैं।
बौरे बनाये रसाल बबूलों पै पीतम का रंग छाये हुये हैं।
भेद भुलाये भले बुरे का हमतो समता अपनाये हुये हैं।
फूलों को अंक लगाये हैं शूलों को अंचल से लिपटाये हुये हैं।

× × ×

आया बसन्त गया द्रुम ग्रीष्म दुरन्त को झेले लगे के लगे रहे।
वर्ण विवर्ण हुईं कलियाँ भँवरे अलबेले लगे के लगे रहे।

फूल सुगन्ध लुटा के चले पर शूल अकेले लगे के लगे रहे।
मैंने विछोह झमेले मिटा दिये मोह के मेले लगे के लगे रहे।

× × ×

स्वप्न विनिर्मित स्वर्ग के सौध ये नीव को लेकर डूब न जायें।
कोमल कामना कामिनियाँ निज पीव को लेकर डूब न जायें।
मानस उर्म्मियाँ अब्धि अगम्य अतीव को लेकर डूब न जायें।
जीवन अल्प में कल्प विकल्प ये जीव को लेकर डूब न जायें।

(दर्शना)

आपने उर्दू में भी काफी लिखा है। यद्यपि आपके स्वयं कथनानुसार :—

बँधा खयाल तो हिन्दी की डायरी में लिखा।
लिखा मज़ाक वो उर्दू की शायरी में लिखा।

पर वास्तविकता इसके विपरीत है। इनकी उर्दू की रचनाएँ भी उत्तम हैं। राष्ट्रीय भावनाओं का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन इन्होंने अपनी उर्दू रचनाओं में किया है। स्वाधीनता संग्राम के अवसर पर तथा शहीदों के लिए आपने जो शेर तथा गजलें लिखीं उनकी कुछ पंक्तियाँ तो पूरे देश में सिद्धान्त सूत्र की तरह प्रचारित हैं। यथाः—

शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों के यही बाक़ी निशां होगा।

ऊपर के शेर में पराधीन देशवासियों की अन्यतम श्रद्धांजलि कितनी मार्मिकता के साथ वर्णित है। इसी प्रकार देश के लिये शहीद होने वालों की बलिदानी भावना की महान अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई हैः—

सूख न जाये कहीं पौधा ये आज़ादी का।
खून से अपने इसे इसलिए तर करते हैं।

× × ×

हम सरेदार बसद शौक़ जो धर करते हैं।
ऊँचा सर क़ौम का हो नज़्र ये सर करते हैं।

मिर्जा ग़ालिब की ज़मीन पर लिखी गई गजल की ये पंक्तियाँ अपनी सादगी के साथ ही कैसी चुनौती भरी हैं:—

देखें गुलाम कौम में मुल्क के काम आये कौन ?
माता पड़ी है क़ैद में आके इसे छुड़ाये कौन ?

राष्ट्रीय भावनाओं के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी इन्होंने उर्दू की अच्छी रचनायें की हैं। हिन्दी काव्य का सुपरिचित तथा अपना परम प्रिय सवैया छन्द में भी इन्होंने उर्दू की कवितायें लिखीं हैं। भारतीय दर्शन पक्ष को उर्दू में रक्खा है। भारतीय ज्ञानी और भक्त की भावना का सजीव चित्र नीचे के सवैयों में देखिए :—

दरिया है तू ही, कतरा है तू ही, तू ही आवे सियाह, हुबाव तू ही।
तू ही साक़िया है, तू ही सागार है, तू ही प्याला भरा है, शराब तू ही।
दिलदार तू ही, तू ही बे दिल है, ऐ हितैषी खयाल व, ख्वाब तू ही।
परदा नशीं तू ही, नकाब तू ही, हसीं यूसुफ तू ही, शबाब तू ही।
अपने को पिरो उस ताग में दे, तसबीह वो ये इकदाना बने।
कर दे खुद को फना वे खुद हो, वो शमा बने ये परवाना बने।
गुल वो तो हितैषी अनादिल ये, जो वो नावक तो ये निशाना बने
जलवा नुमा यार हो, तो दिल ये, दिलदार का दौलतखाना बने।

संस्कृत की यह सुप्रसिद्ध काव्योक्ति (जिसमें सुनार से स्वर्ण का कथन है कि तू मुझे जलाता है और ठोकता पीटता है इसका कुछ भी दुख नहीं मगर तू मुझे घुँघचियों के साथ तोलता है, इसीका दुख है।)

ज्वालने नैनं दुःखं न दुःखं ताडने क्वचित,
एकएव महत दुःखे गुंजयः सह तोलनम्।

का उर्दू रूपांतर बड़ा मनोहारी किया है:—

जलाले पीटले जरगर जो कर सुडौल मुझे।
पै घुँघचियों के बराबर न हाय तौल मुझे।

अवधेश मालवीय (१९५२)—इन्होंने प्रायः सभी रसों में लिखा है। शृंगार, भक्ति, वीर और नीति विषयक रचनाओं के अतिरिक्त देश भक्ति को लेकर इन्होंने बहुत सी कविताएँ लिखीं हैं। भाव स्पष्ट और भाषा की सरलता इनका प्रमुख गुण है।

अवधेश कुसुमांजलि, वीरोक्ति, अवधेश तरंग, पंचामृत, अनोखी आजादी, अन्तर्ध्वनि आदि इनके प्रकाशित कविता सग्रह हैं। रचनाएँ देखिए :—

प्रेम से दूर भगेंगे सभी दुख,
त्यों सुख के ठने ठान मिलेंगे।
प्रेम प्रभाव से निन्दकों के दल,
गाते हुए गुणगान मिलेंगे।
प्रेम जो ध्येय रहा 'अवधेश' तो,
शत्रु भी मित्र समान मिलेंगे।
मान मिलेंगे महान चतुर्दिक,
प्रेम ही से भगवान मिलेंगे।

× × ×

हो चुके पूर्ण स्वतन्त्र सही,
कर्त्तव्य निभाना हमें अभी बाकी।
मोह निशा में अचेत हैं जो,
'अवधेश' जगाना हमें अभी बाकी।
भूल रहे तम में उनको हैं,
प्रकाश दिखाना हमें अभी बाकी।
शान्ति सुधा बरसा इस विश्व को,
विश्व बनाना हमें अभी बाकी।

राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा':— इन्होंने राष्ट्रीय तथा सामाजिक विषयों पर बड़ी मार्मिक तथा प्रभावशाली कवितायें लिखीं हैं। इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में बलिदान और त्याग की

नाओं के साथ आशा और विश्वास की झलक स्पष्ट है। द्विविधा या कापुरुषता का चित्रण इन्होंने अपनी कविताओं में नहीं किया। निरन्तर गतिशील, कठोर संयम का गायन आपने किया है। दृढ़ता के साथ उत्सर्ग की भावना इन पंक्तियों में देखिए:—

तोड़ो सुन्दर सुमन हमारे; कोमल कलिकायें तोड़ो।
मृदुल मधुर फल और विपिन में एक न प्रिय पल्लव छोड़ो।
माली! ओ माली!! जी चाहे तब तक तनिक न मुँह मोड़ो।
बन जायें वर माल सभी की, तुम ऐसा ताँवा जोड़ो।
अन्त अन्त हा हन्त! अन्ततः आह्लादित अनन्त होगा।
कर देगा हेमन्त अन्त वह तब अपना बसन्त होगा।

आपकी रचनाओं में गाँधीवादी विचार धारा का गहरा प्रभाव है। देश के जागरण में महात्मा गाँधी द्वारा संचालित आन्दोलन में 'अछूतोद्धार का कई दृष्टियों से प्रमुख स्थान है। छुआछूत की कलंक कालिमा को धो डालने के लिए महात्मा जी ने अपने अनशन द्वारा देश की रूढ़िवादिता को चुनौती दी थी। उन भावनाओं को लेकर लिखा गया निम्न छन्द न केवल विषय की दृष्टि से प्रत्युत आपकी छन्द रचना कौशल की दृष्टि से भी उत्तम है।—

शासन विदेशी विशिखासन समान हैं तो,
घातक विधान के बनाए गये बाण हैं।
भेद भाव के हैं घोर विष में बुझाये गये,
चित्त चोर नीति से चढ़ाये गये शाण हैं।
भारत का भव्य वक्ष मानो मृदु लक्ष्य सा है,
बधिक विदेशी नहीं होने देते त्राण हैं।
छूटते ही छूत औ अछूत के छुटेंगे प्राण,
छूत मेरे अङ्ग तो अछूत मेरे प्राण हैं।

हिन्दू समाज में 'विधवा' की समस्या पर बहुत लिखा गया है। गद्य पद्य सभी में इस ओर छोटे बड़े लेखकों ने लेखनी चलाई। राष्ट्रीय आत्मा जी ने भी 'विधवा' नामक बड़ा ही मार्मिक खण्ड काव्य की रचना की। यह काव्य ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। विधवा का अत्यन्त कारुणिक चित्र आप खींच सकने में समर्थ हुए हैं। आखों पर भी इन्होंने बहुत से उत्तम दोहे लिखे हैं।

मुंशीराम शर्मा 'सोम'—सुप्रसिद्ध विद्वान लेखक तथा सहृदय कवि हैं। आपकी रचनायें मधुर तथा प्रसाद गुण से परिपूर्ण हैं। कविताओं का विषय प्रायः भक्ति, वेदांत तथा राष्ट्रीय रहता है। आप ब्रज और खड़ी बोली दोनों भाषाओं तथा छन्द और गीत दोनों ही शैलियों में समान अधिकार से लिखते हैं। आपने ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं का बड़ा ही सरस और सरल पद्यानुवाद भी किया है। आपकी रचनाओं में भक्त की तन्मयता भी है और विचारक की स्पष्टता भी। ब्रज भाषा का एक छन्द है:—

भाल पै धौल हिमाकृति चन्दन जासु छटा नभ माहिं लसी रहै।
अंक में खेलति ब्रह्मजा जह्नजा भानुजा सिन्धु सदा हुलसी रहै।
विन्ध्य बनावत मेखला मंजु सदा अरि ही झनकार धँसी रहै।
पूजत जापद सिन्धु सदा सोई भारत भू मन माहिं बसी रहै।

खड़ी बोली का छन्द तथा गीत नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं:—

यह नव युग की लहर रोकने से भी क्या,
रुक सकती है ऐसा किसमें विधान है।
धूल में मिले हैं ज्ञान बल के मदान्ध शीघ्र,
पाया पीड़ितों ने छत्र छाया बरदान है।
जलधि बना है भर रज कण गिरिराज,
नभ से प्रपंच जगती में भास मान है।
उन्नत प्रणत होंगे प्रणत उठेंगे फिर,
चक्रतुल्य अटल विधाता का विधान है।

जीवन में जीवित क्षण कितने ?
हम जीते हैं या जीते ही पाते हैं दुखद मरण कितने ?
जीवन में केवल रूदन राशि, जीवन कोलाहल सदन सखे,
जीवन विलाप रथ पर चढ़कर, कर रहा शून्य को गमन सखे,
जीवन में प्रति वासर प्रतिपल, पल पल बनते भीषण कितने ?
जीवन में जीवन लाने को हम सब संवेदन शील बने,
हो दूर धूम से अग्नि बने जड़ से हट चेतन शील बने,
आत्मा की आस्था ध्रुवनिष्ठा करते विश्वास वरण कितने ?
जीवन में जीवित क्षण कितने ?

सरयूशरण पाण्डेय 'सरजूजन' (१६६१-१६८४)—हिन्दी संस्कृत और अँग्रेजी के ज्ञाता तथा अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि थे। अल्पायु में ही काल कवलित हो जाने से इन की प्रतिभा का पूर्ण विकास भी नहीं हो पाया। फिर भी थोड़े से काल में जो रचनाएँ इन्होंने की वे इनकी काव्य शक्ति का परिचय दे सकती हैं। प्रमुखतः ये व्रजभाषा में लिखते थे। पीय पाँव और 'रूमाल शतक' तथा अन्य रचनाओं का संकलन और सम्पादन करके प्रो० राजकुमार पाण्डेय 'कुमार' ने प्रकाशित कराया है। रचनाएँ देखिए:—

बीर-बिहारी दया न बिसारिहैं, ये बिसवास छिनौं अलगात ना।
लौटि न आइ हैं लाल कबौं अलि, यों अनुमान हिये ठहरात ना।
लालसा देखन की सरजूजन, लोचन ते किहुँ काल परात ना।
जातना जातना घोर सही सखि, प्रान पखेरू तऊ उड़ि जात ना।
(पीय पाँव)

वारे सुत-मुख धूरि ज्यों, निजपट पोंछत बाप।
त्यों हरि दया रूमाल तैं, पोंछहु जग के पाप॥
कजरारी अँखियान को काजर पोंछ्यो बाल।
स्याम! रावरे रँग रँगे जनुराधिका रूमाल॥

दृग जल बरसत दिवस निसि, भारत भूमि विहाल।
पोंछन हित चहियत अमित, खादी थान रूमाल॥
जुग दृग जल धारा धवल ज्यों जमुना औ गंग।
धनि रूमाल बिन संगमहु, न्हात दुहुन इक संग॥
(रूमालशतक)

देवीदयालशुक्ल 'प्रणयेश' (१९६६)—सहृदय कवि तथा लेखक हैं। पुरानी धारा के कवियों में इनका प्रमुख स्थान है। शृंगार, वीर, शांत तथा करुण रस का परिपाक इनकी रचनाओं में बड़ी सफलता के साथ हुआ है। राष्ट्रीय विषयों पर भी इन्होंने लिखा है। हिंदी में हालावाद का आविर्भाव होने पर जिन कवियों ने इसके विरुद्ध 'विजयावाद' चलाया तथा विजया पर उसी मस्ती के साथ लिखा उन प्रमुख कवियों में आप भी एक हैं। मुक्त संगीत, निशीथिनी, कालिन्दी, विजया-बहार, प्रणयेशकवितावली, नामक काव्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सानुप्रास तथा परिष्कृत भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं। ओज और प्रसाद गुण से पूर्ण इनकी रचनाएँ हिन्दी की स्थायी सम्पत्ति हैं। भारतीय पौराणिक आख्यानों, ऐतिहासिक वीरों एवं राष्ट्रीय महापुरुषों पर लिखे गये आपके छन्द बड़े ओज पूर्ण हैं। इनके ब्रज भाषा के छन्द भी बड़े मार्मिक और उत्तम होते हैं। हिन्दी में गीतों का प्रचार होने पर इन्होंने गीत भी अच्छे लिखे। यथाः—

बरबस रस छलका करता है,
हृदय भार हलका करता है,
मंजुलता वाला इठलाती,
नव-पल्लव के विजन डुलाती,

किस सुहासिनी के स्वागत में,
वह कलिका रह-रह मुस्काती।
किसका मन हलका करता है।
बरबस रस छलका करता है। आदि।

समीक्षा तथा लेख भी इन्होंने लिखे हैं। ये मूलतः सरस हृदय कवि हैं और अपने लेख तथा गीतों से अधिक अपने छन्दों के लिये लोकप्रिय हैं। प्रकृति वर्णन इनका बहुत सुन्दर हुआ है। चित्रात्मकता और वर्णन पटुता इनके छन्दों का महत्वपूर्ण गुण है। उदाहरणार्थ :—

सुनसान में श्याम दुकूल को ओढ़ के श्यामा विभावरी सो रही थी।
अथवा निशानाथ वियोग के आतप से दुखी बेसुध हो रही थी।
'प्रणयेश' उसे कब देखता कोई भी मौन-मना वह रो रही थी।
दिवानाथ प्रताप से या उसी की निधि पद्मिनी मोती पिरो रही थी।
(अरुणोदय)

सीपिका सलोनी के हृदय घन मुक्त होके,
जीवन की जटिल समस्या सुलझाने को।
निज बुन्द रूप में छिपाये वेदना का सिन्धु,
आये प्रेम लोक से प्रवाह लहराने को।
'प्रणयेश' अथवा नयन पथगामी बन,
विचर रहे हैं लक्ष्य प्रियतम पाने को।
फूल सा मृदुल तन धूल में मिलाके हाय,
सरस बटोही चले जाने कहाँ जाने को।
(आँसू)

विजया पर इन्होंने बड़े ही सरस और कवित्वपूर्ण छन्द लिखे हैं। उदाहरणार्थ:—

ऐसा रंग आया है, गगन रजताभपूर्ण,
देखता हूँ रेणु राशि हीरक कनी हुई।
कुन्द कलियों ने छिटकाया है मधुर हास,
कल कौमुदी की मंजु चादर तनी हुई।

'प्रणयेश' रंग लहराके रस प्रांगण में,
नभ-किरणें हैं अभिसारिका बनी हुई।
नौका अपनी है, तटिनी है, सजनी है संग,
राका रजनी है और विजया छनी हुई।

× × ×

इसकी सरस अनुभूति मूर्ति संयम की,
ज्ञान तन्तुओं में उभरी सी चली आती है।
छन छन साफी की धवल धार में ही बन्धु,
मानो मंजु वाणी उतरी सी चली आती है।
विजया कहें या शिवभक्त तारने के लिए,
यह भव सिन्धु की तरी सी चली आती है।
मानस विहारिणी प्रमत्त राजहंसिणी या,
कल्पना गगन की परी सी चली आती है।

हरनारायण गौड़ 'हरिजू' (१९६८)—बड़े भावुक कवि हैं। भावुकता के साथ सूक्ष्म विश्लेषण का सामंजस्य करके इन्होंने अपने टकसाली छन्दों की रचना की है। अलंकार इन्हें बहुत प्रिय हैं पर वे रचना में ऐसे यत्न से सजाये गये हैं जिनसे कविता की सौन्दर्य वृद्धि हुई है। इन्होंने जितना भी लिखा, अच्छा लिखा है। भाव व्यंजना और काव्य चमत्कार इनके छन्दों में स्पष्ट है। मिलन, ताजमहल, अन्योक्ति आदर्श, उत्तर साकेत, खरीखोटी, आँखें, इनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। आँखों पर लिखे गये इनके छन्दों ने लोगों में बहुत प्रचार पाया है। आँखों का भवुकता के साथ यथार्थ का वर्णन भी कितना सफल हुआ है यह निम्न छन्दों में देखिए:—

झेंपी हुई झिझकी हुई क्रूर की, शान भरी हुई शूर की आँखें।
आधी झुकी हुई आधी रुकी हुई, हूर की या मशहूर की आँखें
नम्रता से सनी सज्जन की मिली, क्रूरता से भरी क्रूर की आँखें।
दैन्य के भार से भीतर को धँसी, हारे थके मजदूर की आँखें।

आँखों ने है जिसे चाह लिया वही ऊँचे हवा में तिरा करता है ।
आँख ने जो कुछ सोच लिया वही मेघ सा आके घिरा करता है ।
आँख ने जो कुछ देख लिया वही चित्त में घूमा फिरा करता है ।
आँख ने है जिसे छोड़ दिया वही ठोकरें खा के गिरा करता है ।

करुणा शंकर शुक्ल 'करुणेश'—सरस हृदय कवि हैं। भक्ति और राष्ट्रीय भावनाओं की बड़ी सरल और मार्मिक अभिव्यक्ति इनके अपने छन्दों में है —

नयनाभिराम ! अविराम करो लोचनों में,
अविराम पाँव पलकों से चाप चाम के ।
पाएँ वह सम्पति भुलाएँ दुःख जीवन के,
गाएँ गुन गुन गान यश के प्रताप के ।
केवल अचल भक्ति ही से अनुरक्ति हमें,
'करुणेश' भूले वरदान के न शाप के ।
नाथ माथ रखना पदों पे है हमारे हाथ,
हाथ रखना है रघुनाथ हाथ आपके ।

लीन अपने में कर लेते हो कहीं तो कहीं,
बनना कठिन मुख चन्द्र का चकोर भी ।
भक्ति अनपायिनी प्रदान करते हो कहीं,
रहने न देते कहीं प्रणय विभोर भी ।
'करुणेश' मंजु लहराता दया सिन्धु कहीं,
आती दया सिन्धु कहीं एक न हिलोर भी ।
कैसी सम दृष्टि सृष्टि पर सृष्टि नायक ये,
प्यारे रघुनायक निहारो इस ओर भी ।

कई राष्ट्रीय नेताओं के निधन पर इन्होंने अपने छन्दों में शोकोद्गार प्रकट किए हैं उनमें लोकमान्य तिलक, पं० मोतीलाल नेहरू तथा गणेश शंकर विद्यार्थी आदि पर लिखे गये छन्द महत्वपूर्ण हैं ।

श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल' (१९७१) प्रतिभाशाली कवि हैं। पुरानी और नई धाराओं में समान अधिकार से लिखते हैं। एक ओर टकसाली सवैयों की रचना की है तो दूसरी ओर मधुर गीत भी रचे हैं। पुरानी धारा की सफल कृति 'मानव' खंड काव्य है और नई धारा के गीतों की 'मेघमाला'। 'मानव' भावनात्मक खंड काव्य है। इसमें उत्कृष्ट ६६ सवैये हैं। 'मानव' में निराशा और विषाद की गहरी छाया है तथा मानव की निरीहता का चित्रण होने के कारण चेतना की स्फूर्ति के बजाय विराग की भावना को बल मिलता है। दुःखवाद तथा निर्वेद को इन सवैयों में कवि ने प्रधानता दी है। मानव की अकिंचनता को लक्ष्य करके इसमें जो भाव कवि ने प्रकट किये हैं उनके सार तत्व को स्वीकार करना ही होगा। वर्ण्य विषय आलोच्य होकर भी रचना का शिल्प विधान इतना प्रौढ़ और उत्तम बना है कि अकेला 'मानव' ही कवि की प्रतिभा का परिचय दे सकने में समर्थ है। 'मेघमाला' इनके ७१ गीतों का संग्रह है। इसमें कई गीत बहुत अच्छे हैं। राजनीति से प्रभावित होकर लिखी गई 'मजदूर जगत' नामक छोटी सी पुस्तक बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी है। मेघमालाके गीतों में आशा और विश्वास का स्वर अत्यन्त स्पष्ट और प्रखर रूप से सामने आया है यथाः—

लौट सबेरा फिर आयेगा।
झुकती काली काली आखें,
मद विह्वल मतवाली आखें,
बन्द न कर तू चित्र खींचने,
मुग्ध चितेरा फिर आयेगा।

और क्रांति पर आस्था प्रकट करते हुएः—

जब समाज क्रन्दन करता है।
जब दुख भार अधिक बढ़ जाता,
जब चीत्कार अधिक बढ़ जाता,

तब कोई विप्लवकारी—
विप्लव का अभिनन्दन करता है।

परन्तु 'मानव' के सवैयों का गठन, भाषा सौष्ठव और भावों से अभिभूत होकर कौन ऐसा सरस हृदय होगा जो विचारों के ज्वार में डूब नहीं जायगा ? देखिये:—

सिन्धु को पार चला करने निज शीश पै क्लेश का भार लिये हुये।
डूबना चाहता है भव सिंधु में वासना से भरा प्यार लिये हुये।
घूमता है असहाय सा विश्व में जीवन के दया चार लिए हुये।
मृत्यु से है मिलने चला मानव वेदना का उपहार लिये हुये।

× × ×

आ गई मृत्यु की मादक नींद भी आँखें सदैव मैं मींचता ही रहा।
सूख गई लता जीवन हीन हो मैं उसे स्नेह से सींचता ही रहा।
दो जल विन्दु पड़े गिर आपही मैं सदा आँसू उलीचता ही रहा।
व्योम में प्राण चले उड़ और मैं श्वास समीरण खींचता ही रहा।

रामशंकर गुप्त 'कमलेश' (१९७१) ब्रजभाषा और खड़ी बोली में समान अधिकार से छन्द लिखने वालों में प्रमुख हैं। शृंगार इनका प्रिय रस और सवैया इनका प्रिय छन्द है। इनकी रचनाएँ अत्यन्त सरस और अनूठी होती हैं। इनके छन्दों में भाव और भाषा की अकृत्रिमता के अतिरिक्त अलंकार भी स्वयमागत रहते हैं। 'किरणावली' और 'किरण-माला' नामक कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके है। इन्होंने ब्रजभाषा में महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' का बड़ा ही सरस छन्दोवद्ध अनुवाद किया है तथा 'अशोक' नामक महाकाव्य की रचना की है। अंतिम दोनों कृतियाँ अप्रकाशित हैं। रचनाओं का उदाहरण:—

नीरस जीवनों में मनों में रस, घोलना आँखों ने सीख लिया है।
प्रेम के गूढ़ातिगूढ़ रहस्य भी खोलना आँखों ने सीख लिया है।

प्रेमियों के मन में धँस प्राण टटोलना आँखों ने सीख लिया है।
कंठ ने ले ली है नीरवता अब बोलना आँखों ने सीख लिया है।
होकर सीधी सुखी करना लखो, बंक हो प्राण टटोलना देखो।
हाँ करना हँस के रिस की नहीं, ले रस में विष घोलना देखो।
यौवन की अनुभूतियाँ ले नई, गूढ़ रहस्य का खोलना देखो।
सूक्तियाँ मौन दृगों की सुनो इन, नीरव आँखों का बोलना देखो।

× × ×

नाचें न क्यों कलिकायें प्रसन्न हो कोयलें हर्ष से गायें न क्यों कर।
क्यों मनमारे रहें मधु में मधु बातें सुगन्ध लुटायें न क्यों कर।
रास रचायें न क्यों कमला वली बौरे रसाल होजायें न क्यों कर।
रूठें न क्यों कलिकायें बसंत में बावले भौंरे मनायें न क्यों कर।

× × ×

नाश के आवरणों में छिपे हुए, पूर्ण विकास को देखने वाले।
साथ ही जीवनों में छिपे मृत्यु के निर्मम त्रास को देखने वाले।
बँधनों में बँधी मुक्ति को मुक्ति में व्याप्त विपास को देखने वाले।
मेरे प्रकाश विलोचन दे मुझे तेरे प्रकाश को देखने वाले।

इन कवियों के अतिरिक्त श्री नत्थाप्रसाद दीक्षित मिलिन्द का 'एकादशी' नामक कविता संग्रह प्रकाशित हुआ। इसके बाद इनकी कोई रचना सामने नहीं आई। पं० रामदुलारे अवस्थी विद्वान् लेखक तो हैं ही कवि भी हैं। 'काक पुराण' नामक एक वृहद् काव्य की आपने रचना की है। यह रामराज्य के कई अंकों में क्रमशः प्रकाशित हो चुका है और चौपाई दोहों की पद्धति में लिखा गया है। अवस्थी जी ने हिन्दी कविता में इसके द्वारा एक नये विषय का प्रवेश कराया। श्री निश्चल जी वयो वृद्ध कवि हैं। कई छोटी बड़ी पुस्तकें आपकी प्रकाशित हुई हैं। आप 'प्रार्थना' पत्रिका के संपादक और प्रेम महाविद्यालय के संस्थापक हैं। स्वर्गीय पं० बेनीमाधव पाण्डेय, श्री द्वारकाप्रसाद पाण्डेय द्विज

(घाटमपुर) अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी, स्वामीनारायणानन्द सरस्वती, श्री श्याम विजय पाण्डेय तथा पं० सधान लाल अवस्थी ने भी बहुत अच्छे छन्दों की रचना की थी। श्री किशोरचन्द्र कपूर ने दोहों में संपूर्ण भागवत की कथा लिखी है। श्री सालिगराम बाजाज ने शालिग सत-सई की रचना की है।

अन्य प्रतिभाशाली छन्द लेखकों में श्री सिद्धरस, श्री बनवारीलाल दीक्षित, श्री रामकृष्ण त्रिवेदी, श्री-प्रकाश श्री प्रमोद, श्री अरविन्द श्री सरोज, श्री गिरधर शर्मा गिरीश, श्री अनुरागी का नाम प्रमुख है। श्री वागीश शास्त्री हास्य रस के कवि हैं और इनके हास्य व्यंग सम्बन्धी कई छन्द बहुत अच्छे हैं। नई पीढ़ी के प्रौढ़ घनाक्षरी और सवैया लेखकों में श्री हरिनन्दन बाजपेयी, श्री कृष्णबिहारी शुक्ल प्रभात, श्री असीम दीक्षित, श्री कमुदेश वाजपेयी तथा श्री ललाम का नाम प्रमुख है।

नई धारा

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (१६५४)—नवीन जी न केवल हिन्दी संसार के सुपरिचित लेखक –पत्रकार और उच्चकोटि के कवि हैं प्रत्युत देश प्रसिद्ध नेता भी हैं। राजकीय स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लेकर जूझने तथा मानव की रागी एवं कर्त्तव्य शील भावनाओं को वाणी देने वालों में आपका नाम प्रमुख है। हिन्दी गीत काव्य को अत्यधिक रसमय एवं संगीतात्मक बनाने में जिन प्रमुख कवियों ने योग दिया उनमें नवीन जी का महत्वपूर्ण स्थान है। कविता के माध्यम से मानव के चिरंतन सत्यों का सफलतापूर्वक चित्रण करने में भी आप अग्रगण्य हैं। भावुक कलाकार और सहृदय मानव के रूप में नवीन जी का योगदान देश के लिए अनुपम है 'कुंकुम' 'रश्मिरेखा' 'अपलक' 'क्वासि' नामक कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उर्मिला पर भी आपने बड़ी ही मार्मिक काव्य रचना की है।

नवीन जी की कविताएँ विषय की दृष्टि से दो भागों में बाँटी जा सकती हैं। एक में भावुक कलाकार की दृष्टि से आते हैं दूसरे में जन-प्रतिनिधि के रूप में। पौरुष का पुंजीभूत रूप होते हुए भी ममता के कच्चे धागे से वे बँधे दिखाई देते हैं। मानवीय गुण व गुणों का इतना सजीव चित्रण इनके समानवर्ती अन्य कवियों में कम ही दिखाई देते हैं। नवीन जी का कवि एक ओर विद्रोही बनकर क्रान्ति की पुकार करता है तो दूसरी ओर क्षोभ और ग्लानि से पीड़ित और परास्त हो कर पलायन भी करता है। एक ओर समाज की उच्चमर्यादाओं का मोहक

चित्र उन्होंने खींचा है तो दूसरी ओर मानव के रागी हृदय का सफल और सबल चित्रण भी किया है। मानव जीवन की विभिन्नताएँ, उसके मन की सहज एकात्मकता के विश्लेषण में नवीन जी अद्वितीय हैं। प्रेम और वासना, कर्त्तव्य और निष्ठा, उनके लिये अलग से बाँट कर देखने की चीज नहीं है। वे मानवता के उपासक और मानवीय संवेदना के सफल गायक हैं।

विषय विभाजन की दृष्टि से नवीन जी की रचनाएँ तीन भागों में रक्खी जा सकती हैं। एक में वे प्रेम और शृङ्गार के मार्मिक शिल्पी हैं। दूसरे में उन्होंने देशभक्ति और क्रान्ति के विद्रोही स्वर सजाये हैं। और इन दोनों ही पर जो उनके मस्त जीवन की छाप है उसके अतिरिक्त भी उनकी अनेक रचनायें ऐसी हैं जो शुद्ध रूप से अलमस्त-फक्कड़-कलाकार की अभिव्यक्ति होने के कारण अपना एक तीसरा स्थान रखती हैं।

युग की परिस्थितियों से प्रभावित होकर उन्होंने विद्रोही रचनाओं के द्वारा समाज का नेतृत्व किया; तथा प्रेम के संयोग और वियोग का मार्मिक चित्रण करके भावुक तथा अनुरागी मन की तथा साहित्य के शाश्वत सत्य को व्यक्त किया है। नवीन जी उन कलाकारों में से हैं जिनके जीवन और साहित्य में तादात्म्यता मिलती है। जिनके जीवन और साहित्य में कोई कृत्रिमता नहीं होती। वे स्वभाव तथा व्यवहार में जो कुछ और जैसे हैं; वैसे ही वे अपनी रचनाओं में हैं। प्रेमी और अलमस्त मानव, भावुक और संवेदनशील कवि तथा फक्कड़ और शक्ति-शाली जननायक का स्वरूप उनमें स्पष्ट है। उनकी प्रेम रचनाओं में वासना, क्रान्ति और देश विषयक रचनाओं में ओज के साथ कभी पराजय और निराशा, तथा वैयक्तिकता में ओछापन दिखाई देना स्वाभाविक है। वे मानव को मानव ही देखने के पक्षपाती हैं। यद्यपि नर को नारायण बनाने की आकांक्षा भी उन्हें रहती है परन्तु सेन्द्रिय मानव निरीन्द्रियता की कठोर चट्टान पर खड़ा नहीं हो पाता।

वे काल्पनिक प्रेम के पोषक नहीं हैं प्रत्युत प्रेम के बाह्य एवं आन्तरिक सीमा को वे छूते हैं। शारीरिक स्पन्दन के साथ ही वे आत्मा की धड़कन तक पहुँचते हैं। उनके प्रेम में मांसलता है। यही प्रेम उनके अलमस्त जीवन का स्वर भी है और उनकी कविता का प्राण भी। यद्यपि नवीन जी की रचनाओं में भक्त की आस्था तथा ज्ञानी की आध्यात्मिकता का प्रभाव है परन्तु उनके प्रेम का इन्द्रिय पक्ष अधिक बलशाली है :—

डोला लिये चलो तुम झटपट, छोड़ो अटपट चाल रे।
सजन भवन पहुँचा दो हमको, मन का हाल विहाल रे।
बरखा ऋतु में सब सहेलियाँ, मैके पहुँची जाय रे,
बाबुल घर से आज चलीं हम, पिय घर लाज विहाय रे,
उनके बिन बरसाती रातें, कैसे कटें अचूक रे,
पिय की बाँह उसीस न हो तो, मिटे न० हिय की हूक रे,
डोले वालो बढ़े चलो तुम, आया सन्ध्या काल रे।
सजन भवन पहुँचा दो हमको, छोड़ो अटपट चाल रे।
ढली दुपहरी, किरनें तिरछी हुईं सांझ नजदीक रे,
अभी दूर तक दीख पड़े है, पथ की लम्बी लीक रे,
आज साँझ के पहले ही तुम, पहुँचा दो पिय गेह रे,
हम कह आईं हैं इन्दर से, रात पड़ेगा मेह रे,
घन गरजेंगे, रस बरसेगा, होगी सृष्टि निहाल रे।
डोला लिये चलो तुम जल्दी, छोड़ो अटपट चाल रे।
बाबुल घर में नेह भरा है, पर वाँ द्वैत विचार रे,
साजन के नव नेह सलिल में, है अद्वैत बिहार रे,
हृदय हृदय से प्राण प्राण से, आज मिलें भरपूर रे,
पिय मय तिय, तिय मय पिय होंगे, होंगे सम्भ्रम दूर रे,
दूर करो पथ के अन्तर का, यह अटपट जंजाल रे।
डोले वालो बढ़े चलो तुम, आया संन्ध्या काल रे।

घन गरजें तब हो न सजन, आलिंगन का संयोग रे,
तो फिर कैसे मिट सकता है, हिय का अतुल वियोग रे,
जब झनकारें अमित झिल्लियाँ, हो दादुर का शोर रे,
तब हम हुलस कहेंगी उनसे, तुम्हरा ओर न छोर रे,
डोले वालो, कोयल कुहकी हरित आम की डाल रे।
सजन भवन पहुँचा दो हमको, आया संन्ध्या काल रे।

उपर्युक्त रचना नवीन जी के दार्शनिक प्रेम की प्रतीक है। वैसे उनका प्रिय उर्दू वालों की तरह शोख और प्रेमी के दुःख में आनन्द अनुभव करने वाला है :—

गायन उनको नहीं सुहाता, उन्हें रुदन से प्रेम।
मेरे प्रिय की एक अदा यह, है यह उनका नेम॥

फिर भी आग्रह युक्त निवेदन करते हुये कवि कहता है :—

जरा दिखा देतीं छबि अपनी,
हटकर जरा अटक जातीं।
अश्रु कणों से इन आँखों में,
मुग्धे! जरा ठिठक आतीं।
तुम क्या जानो बिता रहा हूँ,
कैसे मैं जीवन घड़ियाँ?
कैसी प्यासी सी रहती हैं,
मेरी आकुल आँखड़ियाँ?

और :—

सिसक रहीं जीवन की घड़ियाँ।
सूख रहीं हिय कुसुम पँखुड़ियाँ।
टूट रहीं भावों की लड़ियाँ।
ढूँढ रही हैं तुम्हें अँखड़ियाँ।

एक बार तो आ लेने दो उस निष्ठुर आँगन की ओर।
जहाँ खिसकता है, डुलता है, प्रतिमे! तव आँचल का छोर।

इतने पर भी प्रियतम की सुनी अनसुनी से खीझकर कवि कह उठा है :—"लज्जा है कि उपेक्षा ? मुझको जरा बतादो प्राण!" और साथ ही निष्ठुर प्रिय को पिघलाने के लिये एक प्रेम भरी धमकी भी :—

"झाँकी कर लेने दो वरना वे लोचन बेचैन"
"तड़प तड़प कर बन जायेंगे सूरदास के नैन"

और :—

"मेरे धीरज की भी कोई सीमा है कुछ सोचो तो"

× × ×

कहाँ हो तुम मेरे सरकार ?
आज है होली का त्यौहार।
मेरे प्राण पिरीते मंजुल जनम जनम के मीत।
अब तो असह्य हो रहा है यह फागुन का अविचार।
यदि तुम सन्निधान होते तो यह अपनी भुजमाल।
डाल तुम्हारी ग्रीवा में मैं करता तव श्रृङ्गार।

परन्तु प्रेमी के दुःख से सुख प्राप्त करने वाले प्रिय पर क्या असर हो सकता है ? लेकिन स्मृति को तो कोई छीन नहीं सकता :—

हम तो आठो याम प्राणधन, ध्यान तुम्हारा धरा करें हैं।
यों स्मृति आवेशों में हम नित, जिया करें हैं मरा करें हैं।

प्रिय की निरंतर उपेक्षा से व्यथित हृदय कह उठा है :—

मेरी कौन बिसात, प्राणधन! मेरी कौन बिसात ?
जिसको चाहो उसे निबाहो मनमाने की बात।

नवीन जी के गीतों में भौतिक प्रेम के अतिरिक्त आत्मिक लगाव की अभिव्यक्ति भी बड़ी मधुर हुई है। अपने आराध्य के प्रति नवीन जी

की आस्था अटूट और निष्ठा अचल है। अपने प्रिय को विभिन्न स्वरूपों में इन्होंने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है प्रिय की प्रतीक्षा में :—

ये घन्टे घन घन घन गूँजे आधी रात आ गई साजन।
अभी तलक तो नहीं सुनाई दी सुकुमार तुम्हारी पाँजन।
कान लगे हैं दरवाजे से भी आगे उस राज मार्ग पर,
हर आहट पर उछल उछल कर रह जाते हैं आहें भर भर,
और सोचते हैं क्या हमसे खता बन पड़ी है कुछ ऐसी—
जिससे यह खफगी है? वर्ना, यह बेखबरी है फिर कैसी?

× × ×

खड़े हुये हैं झुक लकुटी पर, श्रमित, शिथिल पग धरते धरते।
सहसा क्षितिज निहार रहे हैं, हम मन में कुछ डरते डरते,
यही गगन पथ था न? कह गये थे जिससे प्रिय तुम आने को,
यह भी आज्ञा थी कि निहारें हम दश दिश तुमको पाने को,
और कह गये थे हमसे इस क्षण, स्वर भर ईमन गाने को,
लो, हम पन्थ निहार रहे हैं, रोते गाते उमड़ सिहरते।
सहसा खड़े हो गये हैं हम, थकित शिथिल पग धरते धरते।

एक रहस्यवादी की भाँति वे कहते हैं :—

तेरा मेरा नाता क्या है यह मैं जग को क्या समझाऊँ?
जग से मैं क्या कहूँ कि तू है, मेरा जीवन संध्या तारा,
मेरे सूने मन अम्बर का, तूही तो है एक सहारा,
मैने तो अपनी छाती पर, लिए जगत के बाण नुकीले,
अपवादों के भ्रण न कर सके, मेरे लोचन गीले गीले,
मैं तो तेरा कहलाता हूँ, मैं क्यों इस जग का कहलाऊँ?

नवीन जी में भक्ति और ज्ञान का अद्भुत सामंजस्य है। उनमें एक भक्त की तल्लीनता तथा समर्पण है और एक ज्ञानी की विचा बुद्धि और गरिमा भी। इन सब के ऊपर उनका प्रेमी हृदय है

रहता है। वे अपने प्रिय के प्रति जहाँ सम्पूर्ण समर्पण का भाव प्रकट करते हैं वहाँ अपनी इच्छाओं को प्रकट करने में भी पीछे नहीं रहते। वे अपने इष्ट को ऐसे प्रेमी के रूप में देखते हैं जहाँ समानता के साथ मनमानी भावनावों की पूर्ति में बाधा नहीं होती। आग्रह-अनुग्रह, रूठना मनाना, प्रेम और आसक्ति, संयोग और वियोग बिना किसी भेद भाव के चलते हैं। कभी वे प्रिय से आग्रह पूर्ण निवेदन करते हैं :—

तुम बैठी मम सम्मुख अपना चीनांशुक पीताम्बर पहने।
और बने अँगुलियाँ मेरी तव मंजुल चरणों के गहने।
तुम आकर्ण सजाये वेणी विहँस विहँस दो मुझे उलहने।
यही साध हो मेरे प्रियतम तुम रूठो मैं तुम्हें मनाऊँ।
और साध क्या है, बस इतनी कि मैं तुम्हें निज गीत सुनाऊँ।

और :—

सुनकर मेरे गीत कभी तो तव लोचन डबडब भर आएँ।
और कभी मेरे नयनों से कुछ संचित बूँदें झर जाएँ।
यों मेरे संगीत रसीले तव मृदु चरणों में ढर जाएँ।
यही मनाता हूँ कि कभी मैं गायन स्वर लहरी बन जाऊँ।
कौन साध है अब मम हिय में प्रियतम तुमको क्या बतलाऊँ?

नवीन जी प्रेम योग को ही नित्य सत्य मानते हैं। प्रेम के बिना सभी ढकोसले हैं :—

प्रेम नित्य सन्यास नहीं तो अन्य योग हैं रोग री।
सखी कहो ले रहे सजन क्यों व्यर्थ अटपटा जोग री?

प्रेम के भौतिक और आध्यात्मिक स्वरूप के अलावा उनका अलमस्त व्यक्तित्व भी कविता में देखने को मिलता है :—

हो जाने दे ग़र्क नशे में,
मत आने दे फर्क नशे में,
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के,
फट जाने दे वर्क नशे में,

ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एकबार तो मतवाला।
साक़ी अब कैसा विलम्ब ढलवा दे तन्मयता हाला
कूजे दो कूजे में मेरी बुझने वाली प्यास नहीं।
बार बार ला ला कहने का, समय नहीं; अभ्यास नहीं।
अरे बहा दे अविरल धारा।
बूँद बूँद का कौन सहारा।
ऐसी गहरी ऐसी लहराती ढलवादे गुल्लाला।
साक़ी अब कैसा विलम्ब ढलबा दे तन्मयता हाला

प्रेम का पुजारी यही भावुक कलाकार जब राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करता है तो अंगारे उगलता है। एक विद्रोही के रूप में उनकी वाणी प्रखरता के साथ गरजती है :—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये,
एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जायें,
त्राहि त्राहि नभ में छा जाये.
नाश और सत्यानाशों का,
धुआँधार जग में छा जाये,
बरसे आग जलद जल जायें,
भस्मसात भूधर हो जायें,
पाप पुण्य सद्सद् भावों की
धूल उड़ उठे दायें बायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये,
तारक वृन्द विकल हो जायें।
एक ओर कायरता काँपे।
गतानुगति विगलित हो जाये।

अन्धे मूढ़ विचारों की वह,
अचल शिला विचलित हो जाये।
आज अनल गायन कुछ ऐसा,
उमड़े, जग विह्वल हो जाये।

आर्थिक विषमता के शिकार मानव की विकृतावस्था को देखकर तो कवि उत्तेजित होकर कह उठा है :—

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन देखा मैंने नर को,
उस दिन सोचा आग लगा दूँ क्यों न आज मैं दुनियाँ भरको ?
यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का,
जिसने अपने ही स्वरूप को दिया रूप यह घृणित विकृत का।

नवीन जी की मानवीय दृष्टि समता और उच्चादर्श से प्रेरित है। वे मनुष्य को गिरा और त्रस्त नहीं देख सकते। मानव के प्रति वे अपना दृष्टिकोण रखते हैं :—

एक तान का तार तन्मय हो निज पर का आभास मिटे।
संग्रह का विग्रह मिट जाये, यह संघर्षण त्रास मिटे।
मानव हिय में मानव के प्रति, सह अनुभव की पीर रहे,
जग के नील गगन में निशिदिन सजल नेह घन भीर रहे।
इतनी चौड़ी इतनी विस्तृत हो इस मानव की छाती,
जिसे निरखकर स्वयं सृजन भी कहे लखो मेरी थाती।
मानव का अति क्षुद्र घरौंदा जग का प्रांगण बन जाये,
यों सीमा में निःसीमा का विस्तृत चँदुआ तन जाये।
रहे न रण सज्जा न दुर्ग ही औ कहीं न प्राचीर रहे।
जग के नील गगन में निशिदिन सजल नेह घन भीर रहे।

और इस लक्ष्य को लेकर चलने में वे तन्मय हैं—बेसुध हैं। अपार धैर्य के साथ एक क्रान्तिकारी की भाँति वे लक्ष्य की ओर अग्रसर होना ही जानते हैं :—

मास वर्ष की गिनती क्या हो वहाँ जहाँ मन्वन्तर जूझें ।
युग परिवर्तन करने वाले जीवन वर्षों को क्यों बूझें ।
हम विद्रोही ! कहो हमें क्यों अपने मग के कंकड़ सूझें ?
हमको चलना है—हमको क्या हो अँधियारी या कि जुन्हाई ।
हिय में सदा चाँदनी छाई ।

और इन सबके ऊपर है नवीन जी का वह व्यक्तित्व जो अलमस्त फकीर के समान पुकार कर कहता है :—

हम अनिकेतन, हम अनिकेतन ।
हम तो रमते राम, हमारा क्या घर क्या दर कैसा वतन ?
अब तक इतनी यूँ ही काटी,
अब क्या सीखें नव परिपाटी,
कौन बनाए आज घरौंदा
हाथों चुन चुन कंकड़ माटी
ठाट फकीराना है अपना, बाघम्बर सोहे अपने तन ।
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन ।

और:—

तुम्हें मिली है मानव हिय की यह चंचल ठकुरास,
पर, हमको तो मिली अचंचल मस्ती की जागीर ।
सखीरी हम हैं मस्त फकीर ।
तुम समझे हो कि अब हो चले हम नवीन, प्राचीन,
क्यों भूलो हो कि हम अमर हैं, हम हैं लौह शरीर ।
सखीरी हम हैं मस्त फकीर ।
क्या पूछो हो पता हमारा, हम हैं अगृह अनाम ।
यही पता है कि है कहीं भी अपनी नहीं कुटीर ।
सखीरी हम हैं मस्त फकीर ।

नवीन जी पर सूर-मीरा और कबीर का रंग गहरा है । कविता में वे किसी बन्धन के कायल नहीं हैं । भावों को प्रकट करने में संगीत

में सुखद लगने वाले शब्दों का मनमाने ढंग से प्रयोग करने में उन्होंने बहुत स्वतंत्रता ली है। पद शैली में इनके अनेक गीत हैं और ब्रजभाषा की छाप इनके गीतों में प्रमुखरूप से है। वस्तुतः नवीन जी अपने भाव–भाषा और अभिव्यक्ति प्रणाली में प्राचीनता से प्रभावित होकर भी नवीनता को ढालने में सफल हुए हैं।

भगवतीचरण वर्मा (१६६०) हिंदी के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं। उच्चकोटि के उपन्यास, कहानी, नाटक लेखक तथा कवि हैं आखिरी दाँव, चित्रलेखा, तीनवर्ष, टेढ़े–मेढ़े रास्ते, पतन; (उपन्यास) इन्स्टालमेंट दो बाँके (कहानी संग्रह) तथा मधुकण, प्रेम संगीत, मानव (कविता संग्रह) प्रकाशित हो चुके हैं। वर्मा जी सभी क्षेत्रों में अग्रणी स्थान रखते हैं। अपनी सूक्ष्म दृष्टि, अनुभूति की गहराई और हृदय में सहज पैठ कर लेने वाली शैली के कारण साहित्य के जिस अंग को इन्होंने छुआ उसमें सफलता प्राप्त की। कवि के रूप में वर्मा जी की मौलिकता अक्षुण्ण है। मानवीय संवेदना के साथ गहरी तादात्म्यता करते हुए भी एक अलमस्त कलाकार का हृदय वर्मा जी की रचनाओं में कहीं भी देखा जा सकता है।

वर्मा जी की कविताओं में जहाँ जीवन का शृंगार और मानव मन की अनुरागी वृत्तियों का सफल चित्रण है वहाँ मानवता की स्थापना के लिये तीव्र संघर्ष और उसके प्रति चिंतन की अदम्य लालसा भी है। मानवीय हाहाकारों के सूक्ष्म निदर्शक और विश्लेषणकर्ता के रूप में वे अपने 'मानव' में मुखर हुये हैं। 'प्रेम संगीत' और 'मानव' वर्मा जी की काव्यधारा के दो तट कहे जा सकते हैं। एक में वे शुद्ध प्रेम की अनुभूतियों के शक्तिशाली शिल्पी हैं तो दूसरे में सामाजिक विषमता और दैन्यता के शिकार मानव के सफल चित्रकार! और इसके ऊपर रक्खी जाने वाली चीज है कलाकार की मस्ती अथवा अक्खड़ता जो इनकी रचनाओं में स्पष्ट ही देखी जा सकती है। प्रेम की मधुर और मादक अभिव्यक्ति में पीड़ा की गहनता, निराशा के झीने आवरण और विषाद

की ईषत् रेखा से युक्त इनके प्रेमगीतों में जीवन की गति भी है और उसके मोहक स्वर भी :—

अरुण कपोलों पर लज्जा की भीनी सी मुसकान लिए
सुरभित श्वासों में यौवन के अलसाये से गान लिए
बरस पड़ी हो मेरे मन में तुम सहसा रसधार बनी
तुम में लय होकर अभिलाषा एक बार साकार बनी
चकित और अलसित आँखों में तुम सुख का संसार लिए
मंथर गति में तुम जीवन का गर्व भरा अधिकार लिए
डोल रही हो आज हाट में बोल प्यार के बोल यहाँ
मैं दीवाना निज प्राणों से करने आया मोल यहाँ

वर्मा जी यद्यपि प्रेम के गायक हैं परन्तु उनमें हृदय की तरलता से अधिक बौद्धिकता का प्रभाव स्पष्ट है। यही बौद्धिकता एक दार्शनिक की भाँति कहला सकी है—

जीवन सरिता की लहर लहर
मिटने को बनती यहाँ प्रिये
संयोग क्षणिक फिर क्या जाने
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये ?
पल भर तो साथ साथ बह लें
कुछ सुन लें कुछ अपनी कह लें।

समय की गतिशीलता जैसे क्षण क्षण उन्हें बेचैन कर देती है। भविष्य जिसके सामने स्पष्ट बन कर चमकता है वर्तमान के प्रत्येक पल की कीमत उसके लिए बहुत हो जाती है—

जग के जीवन की यह मधु श्री
सुषमा का सरस बसन्त प्रिये
दो साँसों में बस जाय और
ये साँसे बनें अनन्त प्रिये
मुरझाना है आओ खिल लें
हम तुम जी भर खुलकर मिल लें।

मिलन की उत्कण्ठा के समक्ष वे दुनियाँ में किसी का कुछ अधिकार तक मानने को तैयार नहीं—

तुम अपनी हो जग अपना हो
किसका किस पर अधिकार प्रिये
फिर दुविधा का क्या काम यहाँ
इस पार या कि उस पार प्रिये
करना हो कर लो आज उसे
कल पर किसका अधिकार प्रिये।

सारी उलझन तो यह है कि प्रिय की स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती। कवि एक ही बात चाहता है—

होठों पर हो मुसकान तनिक
नयनों में कुछ कुछ पानी हो
फिर धीरे से इतना कह दो
तुम मेरी ही दीवानी हो।

भौतिक पक्ष से ऊपर उठ कर कवि की आकांक्षा शाश्वत असीम में रमण करने की है—

है हमें बहाने को आई यह रस की एक हिलोर लिए
शाश्वत असीम में चलना है निज सीमा के उस पार प्रिये
उस ओर जहाँ उन्मुक्त प्रणय है लोक लाज को छोड़ चुका
उस ओर जहाँ स्वच्छन्द समय सुध बुध के बंधन तोड़ चुका

परन्तु कठोर हृदय प्रेमी की अजीब हालत है। वर्मा जी का प्रिय भी बड़ा मानी है। अतः निराश प्रेमी की भावना बौद्धिक व्याख्या के साथ व्यक्त हो उठी—

यह अपना अपना भाग्य मिला
अभिशाप मुझे वरदान तुम्हें
जग की लघुता का ज्ञान मुझे
अपनी गुरुता का ज्ञान तुम्हें

जिस विधि ने था संयोग रचा
उसने ही रचा वियोग प्रिये
मुझको रोने का रोग मिला
तुमको हँसने का योग प्रिये।

सुख की तन्मयता तुम्हें मिली
पीड़ा का मिला प्रमाद मुझे
फिर एक कसक बन कर अब क्यों
तुम कर लेती हो याद मुझे ?

एक एक कर के अतीत की स्मृतियाँ पीड़ा, कसक, अवसाद और आँसू बन कर आती हैं—

हैं कसक रहीं अब उर में बीती बातें
फिर आती हैं पीड़ा बन खोई रातें
मेरे जीवन में धुँधला सा सूना पन
है उमड़ पड़ा बन आँसू की बरसातें।

करुणा और दुख से भरा जीवन का स्वरूप बन गया—

पैरों में ममता का बन्धन
सर पर वियोग का भार प्रिये।

परन्तु हृदय का व्यथा भार बौद्धिक 'अहं' के रूप में प्रकट होकर कवि के विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचय देता है—

लेकर मस्तक पर अपनी हीन पराजय
मैं करता हूँ असफलताओं का संचय।
जिसको जग मिटना कहता है
उसमें ही बनने का क्रम है
तुम क्या जानो कितना वैभव
है मेरे इस उजड़े घर में।
मुक्त हो चुका सब कुछ खोकर
कैसा भय चिंता कैसी

अपने इस विनष्ट वैभव पर
है कितना अभिमान मुझे !

प्रेम की वेदना के साथ बुद्धि का 'अहं' मिल जाने पर जिस अलमस्त एकान्तिकता अथवा व्यक्तिवाद का रूप खिलता है वही वर्माजीकी इन पंक्तियों में है—

हम दीवानों की क्या हस्ती
हैं आज यहाँ कल वहाँ चले
मस्ती का आलम साथ चला
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।

आए बन कर उल्लास अभी
आँसू बन कर बह चले अभी
सब कहते ही रह गये अरे,
तुम कैसे आये कहाँ चले ?

किस ओर चले यह मत पूँछो
चलना है बस, इसलिए चले
जग से उसका कुछ लिये चले
जग को अपना कुछ दिये चले

दो बात कहीं दो बात सुनी
कुछ हँसे और फिर कुछ रोए
छक कर सुख दुख के घूँटों को
हम एक भाव से पिये चले।

अब अपना और पराया क्या
आबाद रहें रुकने वाले
हम स्वयं बँधे थे और स्वयं
हम अपने बन्धन तोड़ चले।

'प्रेम संगीत' के गीतों में वर्मा जी की प्रेम भावना असफलता, निराशा और उसके फलस्वरूप पलायनवादी प्रवृत्ति का समावेश हुआ

है। जब कि 'मानव' में उनका कठोर विद्रोही स्वरूप निखरा है। 'प्रेम संगीत' व्यक्ति की सीमाभिव्यक्ति को और 'मानव' समष्टि का व्यापक दृष्टिकोण लेकर चला है। 'मानव' में वर्मा जी की बौद्धिकता मानव की विषमता के साथ तादात्म्य स्थापित करके प्रकट हुई है। एक ज़ोरदार व्यंग्यकार और थोड़े में मानव का एक चित्र उपस्थित कर देने की क्षमता मानव में देखने को मिलती है। मानव जीवन की व्यापकता को देखने में कवि वैयक्तिक मानापमान तक की परवाह नहीं करता—

मानापमान हो इष्ट तुम्हें
मैं र जीवन को देख रहा।

और अपने युग के इस कवि ने मानव का जो दैन्य रूप देखा उसको अपनी कलम से उतार भी दिया—

अपनी हस्ती के मद में कुछ पड़े हुए मदहोश यहाँ
अपनी निर्बलता से पीड़ित कुछ बैठे खामोश यहाँ
अन्तहीन इस विस्तृत पथ पर असफलता का मेला है
कुचल न दे उन बेचारों को इन पैरों का जोश यहाँ
पतितों ही के लिए मिला है तुझे यहाँ पर दया धरम
कदम कदम ऐ चलने वाले सम्हल सम्हल कर कदम कदम

मनुष्य को सर्वोपरि मानने वाला कवि सोचता है—

सोच रहा है मानव बन कर
पशु से भी हम हीन बने क्यों ?
हम समर्थ सम्पन्न किस लिए
फिर यह इतना उत्पीड़न ?

'मानव' में उनके मानसिक विद्रोह और पीड़ित और प्रताड़ित मानव का प्रतिनिधित्व देखने को मिलता है। वर्तमान सभ्यता पर कठोर व्यंग्य करते हुए मानवीय भावनाओं से शून्य समाज के विभिन्न पहलुओं का सजीव चित्र 'मानव' में उतारा है। हिंदी कविता की छायावादी युग की स्वप्निल दुनियाँ को 'मानव' ने जैसे ज़ोर से झकझोर कर हिंदी कविता

को उपयोगिता और सामान्य धरातल पर उतारने का वर्मा जी ने साहस पूर्ण कार्य किया। वर्मा जी की उन रचनाओं ने हिंदी कविता में युगांतर का शंख फूँका। दैनिक जीवन से सम्बन्धित मानव पीड़ा के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। कथित सभ्यता की नाव में असभ्यता के बड़े बड़े छिद्रों की ओर वर्मा जी ने स्पष्ट रूप से इंगित किया। एक दृश्य है—

रुक गई ट्राम झटका खाकर
दरवाजे पर आँखें घूमी
मदमाती इठलाती युवती
नयनों ने उसकी छवि चूमी
आई उछाह की एक लहर
हँस कर मन की मस्ती झूमी
थी एक अप्सरा या कि परी
रह गये सभी दिल थाम थाम।
कन्धों से कन्धे भिड़े हुए
थी भरी खचाखच ट्राम वहाँ
और नहीं दिखाई देता था
तिल रखने को भी ठौर जहाँ
हँसती सी बाँकी चितवन पर
बेंचें खाली हो गई वहाँ
आदर से युवती बैठ गई
कुछ बल खाकर कुछ झूम झाम।

और दूसरा दृश्य है—

फिर चौराहे पर ट्राम रुकी
अब चढ़ी एक बुढ़िया जर्जर
थी शिथिल पिंडुलियाँ काँप रहीं
थी हाँफ रही, था उसको ज्वर
वे सभ्य और मनचले लोग
चुप बैठे थे बन कर पत्थर

धन और रूप के भिखमंगों को
था दुनियाँ से कौन काम ?

मानव में इसी प्रकार का ग्राम, शहर तथा मानव मानव के बीच गहरी असमानता का यथार्थ और शक्तिशाली चित्रण वर्मा जी ने किया है। बेचैनी, विकलता और भीषण झंझावातों के भीतर मानव की महान जीवन शक्ति का प्रभाव उनकी 'मानव' की रचनाओं में देखने को मिलता है। संघर्ष में डटे रह कर विजयी बनने की महत् अभिलाषा भी उनसे दूर नहीं हो गई है। 'संघर्ष ही जीवन है' का सिद्धान्त जैसे उनके कवि का मूल स्वर रहा है

और सीमा से भरी ये उलझनें ये विवशतायें
ये न होतीं तो निरर्थक सृष्टि की होती कलायें
व्यर्थ होता ज्ञान यह सब व्यर्थ होती भावनायें

उलझनें होतीं न यदि तो कौन सुलझाता उन्हें फिर ?
सत्य एक विकास है यह ह्रास तो है क्षणिक अस्थिर।

हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'—(१९६५) ये अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। गीत के क्षेत्र में इनकी देन महत्वपूर्ण है। ब्रजभाषा और खड़ी बोलीमें पुराने छन्द सवैया और घनाक्षरी तथा सुमधुर गीत रचना में सिद्धहस्त हैं। उर्दू में भी ये बड़ी सफलता के साथ लिखते हैं। कसक, मधुरिमा, प्रेम सन्देश, करुणा, सुषमा नामक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'प्रेम सन्देश' में प्रेमियों द्वारा अपने प्रिय को लिखे गए कई प्रेम पत्र हिन्दी काव्य के शृंगार कहे जा सकते हैं। हृदयेश जी की मौलिकता के साथ उनके काव्य कौशल की प्रतीक स्वरूप रचनाओं में जेबुन्निसा का शिवाजी को और शाहजादा सलीम का अनारकली को लिखे गये पत्र तो अन्यतम हैं। गीतों में भाव प्रवणता और संगीतात्मकता इनकी विशेषता है। उर्दू की बहर में हिन्दी का स्वच्छ स्वरूप भी इनकी अपनी देन है। यथा :—

नित्य ही संघर्षणों से काम है ।
वज्र हूँ कहने को जीवन नाम है ।
रंक को राजा बनाना काम है,
यत्नजित प्रारब्ध मेरा नाम है ।
अन्यथा निर्बाण था चरणों तले,
जिन्दगी मजबूरियों का नाम है ।
छाँह तरु उनकी उन्हीं के कुंज कूप,
प्यास अपनी, पंथ अपना धाम है ।
उनकी संध्या पर निछावर प्रात है,
यह हमारी शाम भी क्या शाम है ?

हृदयेश जी के गीतों में संगीत की स्वर लहरी जैसे स्वतः बज उठती है । मिलन की उत्सुकता, जिज्ञासा, प्रेम की रहस्यात्मक अनुभूति एवं चिन्तन युक्त यह गीत —

माँझी कितनी दूर किनारा !

पथ दर्शक बन झाँक रही है, वह जीवन ध्रुवतारा ।
माँझी मुझे बताते चलना कितनी दूर किनारा ?
गति ही जीवन, जीवन गति है, गति में लय हो जाना !
गति की गति का अर्थ यही है निज अस्तित्व मिटाना ।
रवि गतिमय है, शशि गतिमय है, गतिमय हैं सब तारे,
गतिमय लता, प्रसून, तरु, प्रकृति, खेल खेलती न्यारा ।
गतिमय अवनि घूमती निशिदिन किस प्रिय की गलियों में ?
कितना चल प्रिय प्राप्त करेगी निज उद्देश्य किनारा ?

हृदयेश जी की प्रेमाभिव्यक्ति बहुत मार्मिक बन पड़ी है:—

प्राणों को छूकर शपथ ले, नयन गंगा के किनारे ।
हृदय का विनिमय हुआ था,
हृदय के पथ से हमारे ।

आज उनके द्वार का पथ
भी हुआ है मुझे दुर्गम।
आज प्रियतम!

प्रिय की मनुहार भी देखिये:—

सजनि तुम्हारे प्रणय ग्रंथि का,
श्री गणेश भी 'नहीं' 'नहीं' है।
मध्य नहीं, इति नहीं, योग भी—
नहीं और अवशेष नहीं है।
यह नकार का भार अधर पर—
और रुचे तो ढो लो।
मुझे और कुछ बोलो।
प्रिये तुम्हारी चटशाला में,
'अ आ इ ई' भी नहीं नहीं है।

सजनि तुम्हारे स्नेह कोष में, नहीं शब्द ही सभी कहीं है।
नहीं नहीं पढ़ आयु बिता दी—और पृष्ठ तो खोलो!
मुझे और कुछ बोलो।

हृदयेशजी के गीतों में कहीं-कहीं पलायन जैसी वृत्ति भी दिखाई पड़ती है। परन्तु वे भाग कर छिपने के बजाय साहस के साथ बढ़ना पसन्द करते हैं:—

जीवन क्या है? बीहड़ पथ में,
गिरना, पड़ना, उठना, चलना।
रात्रि अँधेरी गहरी नदियाँ,
लहरें हाहाकार मचायें।
ले चल माँझी नाव भँवर की,
[illegible] [illegible] को मार्ग बनायें।

जीवन का सहचर साहस है,
विमुख न होना आगे बढ़ना।

हृदयेश जी प्रेम की मोहक और मधुर भावना को अंकित करने वाले सफल गीतकार तो हैं ही साथ ही एक ज्ञानी भक्त की भावना भी उनमें है :—

तुझे मैं खोज खोज कर हारा।
ज्ञानी बन सब को बहकाया,
तेरा झूठा पता बताया,
भ्रमा स्वयं सबको भरमाया,
सत्य वस्तु को जान न पाया,
मद ममत्व में ऐसा डूबा,
मिला न कहीं किनारा।
तुझे मैं खोज खोज कर हारा।

और 'अहं ब्रह्मास्मि' का अद्वैतवादी दर्शन उनकी इस पंक्ति में स्पष्ट हुआ है :—

परदा हटा, किया अपने में दर्शन दिव्य तुम्हारा।

पुराने छन्दों के भी वे कितने सबल और सफल लेखक हैं इसके लिए एक सवैया और एक घनाक्षरी देखिए :—

बनबास का दंड मिला विधि से लिए जीवन में दुख मूल हूँ मैं।
यह रूप में रंग सुगन्ध लिए अपने ही लिए बना शूल हूँ मैं॥
घुटती ही रही जो सदा दिल में अपने अभिलाषों की धूल हूँ मैं।
बिना चाहक जो मुरझा रहा है बन की लता का वह फूल हूँ मैं॥

× × ×

साँसें कहीं ज़ोर से उड़ाये लिए जा रहीं हैं,
आखों ने प्रलय वृष्टि करने की ठानी टेक।
मृदु भावनाएँ मनोज्वाला में तड़पतीं हैं,
तो भी आशालता की न घटी हरियाली नेक।

एक हो तो समझाऊँ शान्ति करू 'हृदयेश'
मचल रहे हैं किन्तु अभिलाष ये अनेक ।
हिय में सदैव हाय, प्रेम रस भरी मूक,
हूक उठती है प्यारे! हूक उठती है एक ।

अभिराम—मस्ती और मधुरता को अभिव्यक्ति देने वाले कवि हैं। हालावाद के विरुद्ध विजयावादी रचनाओं के सफल निर्माता के रूप में ये प्रसिद्ध हैं। 'मुक्त संगीत में इनकी देश प्रेम से सम्बन्धित रचनाएँ थीं और 'विजया बहार' में विजया पर लिखे गए इनके उत्कृष्ट गीत संग्रहीत हैं। ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली में पुरानी शैली छन्द, सवैया भी इन्होंने बहुत अच्छे रचे हैं। मस्ती, प्रभावशाली वर्णन और चित्रात्मकता इनकी रचनाओं की विशेषता है। 'विजया बहार' का एक गीत देखिए—

भर दे गिलास, भर दे गिलास
प्रिय होने दे विजया विलास।
आया बसन्त, आया बसन्त
मधुपावलि ने गाया बसन्त
रँग गये रंग में दिग दिगन्त
विजया घट भर लाया बसन्त
बौरे रसाल फूले पलास
भर दे गिलास, भर दे गिलास।
उदयाचल की चोटी विशाल
शशि रवि के गोले श्वेत लाल
मारुत का ले अंचल उताल
तू विश्व-प्रेम में छान डाल
भर दे सुषमा सौरभ सुवास
भर दे गिलास, भर दे गिलास।
भर दे विजया के विमल कूप
पी जायँ जहाँ नित रंक भूप

सब भूल भूल निज रंग रूप
हों एक रूप अच्युत अनूप
कोई न नाथ कोई न दास
भर दे गिलास, भर दे गिलास ।

× × ×

विजयी सिंहासन पर विराज
पीने वालों का ले समाज
कोई न रहे मुहताज आज
बिखरा दे मंजुल मधुर हास

पग ध्वनि रुन झुन झुन छूम छूम
मृदुगति मराल की झूम झूम
विजया घट लेकर घूम घूम
तू देता जा मुख चूम चूम
प्यासे रहते हैं प्यास प्यास
भर दे गिलास, भर दे गिलास ।

छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक' (१९६२) देश के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने और राष्ट्रीय भावना को अपने गीतों का स्वर बनाने वाले कवियों में इनका प्रमुख स्थान है । राष्ट्रीय काव्य धारा का जो परि-पुष्ट और उच्चतम रूप इनकी रचनाओं में दिखाई देता है वह हिन्दी के बहुत कम लोगों में देखने को मिलेगा । यद्यपि राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से इनकी कविताओं का संबन्ध अन्यान्योश्रित कहा जा सकता है परन्तु राष्ट्रीय रचनाओं का उदाहरण देते समय अथवा इतिहास की चर्चा करते हुए प्रायः विद्वान लोग कंटक जी और इनके जैसे अनेक राष्ट्रीय कवियों के बजाय ऐसे लोगों के उदाहरण दे डालते हैं जिनकी रचनाओं का न उतना गहरा असर हुआ और न जिनमें राष्ट्रीय चेतना का स्वर ही भली भाँति मुखरित हुआ है । कंटक जी हिन्दी कविता की राष्ट्रीय धारा के सजग प्रहरी और उसके सफल गायक हैं । त्याग और

बलिदान की भावना से ओत प्रोत इनकी रचनायें, राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। स्पष्ट भाव, सरल और प्रवाहमयी भाषा, गाम्भीर्य के साथ ही कलात्मकता इनकी रचनाओं की विशेषता है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के मतवालों का चित्रण करते हुए कंटक जी ने लिखा:—

निपट निराशा की रजनी में आशा के प्रदीप सुकुमार
लिए टिमटिमाते हाथों में भटक रहे पागल दो चार।

क्रान्तिकारी की हुंकृति के रूप में:—

माँ कर विदा आज जाने दे
रण चढ़ लौह चबाने दे माँ!
अब न रोक जायें दुख झेलें
भर दें फिर जेलों पर जेलें
फाँसी के तख्ते पर खेलें
दाँतों उँगुली दाबे दुश्मन
जी भर जोश दिखाने दे माँ।
तेरा रुधिर गर्व से पीते
गोरों को माँ वर्षों बीते
नाहक हमें रहें जो जीते
होने दे हुँकार हमारी
दुश्मन को दहलाने दे माँ!

स्वातन्त्र्य समर के लिए समाज को उद्‌बोधन देते हुए वे कहते हैं:—

आवाहन युग का करती है
दीप शिखा जल जल मरती है
केवल बलिदानों के बल से
दुनियाँ नहीं प्रगति करती है

क्रान्तिकारियों के जीवन में लिखा नहीं आराम ।
यहाँ नहीं कायर का काम ।

और:—

जग जीवन गति को अपना ले
नित्य नये संघर्ष निराले
पग पग पर इतिहास यहाँ है
जिसका जी हो सुयश कमा ले

×　　　×　　　×

कुछ साहस कुछ लगन चाहिए—

विजय वधू वरने मिटने को सभी समय अनुकूल ।

समाज को प्रोत्साहित करते हुए वे कहते हैं:—

जीवन धन्य एक दो पल का जो सुकीर्ति से बीते
भाररूप वह आयु व्यर्थ है दिवस सुयश से रीते ।

देश में प्रथम बार सन् १६३६ में काँग्रेस सरकारें बनने पर उन्होंने अपने सहयोगियों से कहा:—

भूल न जाना क्षणिक विजय मद में सैनिक सुकमार कहीं ।
आजादी पर मिटने वालों के उजड़े घरबार कहीं ।
माताओं की सूनी गोदी घरके लुटे सुहाग सखे ।
भूल न जाना दीवानों के प्राणों के उपहार कहीं ।

आज मौज में हँसी खुशी के इन छुटते फव्वारों में ।
रास रंग की बौछारों में प्रेम भरे उपहारों में ।
भूल न जाना वे दुर्दिन के दुख के साथी समर धनी ।
जो मरने मिटने को निकले भेरी की झंकारों में ।

परन्तु स्वराज्य मिलने के पूर्व ब्रिटिश शासनान्तर्गत स्थापित होने वाली काँग्रेस सरकार बनने पर जो आशंका कंटक जी ने व्यक्त की थी वह पूर्ण स्वराज्य मिलने के बाद स्थापित काँग्रेस सरकारों पर घटित हो गई ।

देश के लिए मरने मिटने वाले गरीब भारतीयों तथा शहीदों और उनके दीन हीन परिवारों को शासकीय चमक दमक ने दबा दिया। कंटक जी की भी अपनी कुछ इच्छाएँ थीं और अपनी इच्छाओं तथा भावनाओं को चकनाचूर होते देख कर उनमें निराशा आई। परन्तु एक क्रान्तिकारी देश सेवक कवि से लोग निराशा और विषाद कैसे सुन सकते? शायद इसके उत्तर स्वरूप ही उन्होंने यह गीत लिखा जिसमें आत्मविश्लेषण की गहरी छाप है:—

कौन कहता है निराशा से भरे हैं गान मेरे।
जब हृदय की सुप्त पीड़ा
चोट खाकर तिलमिलाती,
मिल न पाती है सफलता
दूर ही जब झिलमिलाती
चीख उठते हैं तभी आशा भरे अरमान मेरे।
जब कभी जग वाटिका में,
देख हँसते फूल पाये,
विवश हो जब मन न माना,
हाथ सौ सौ शूल आये,
घाव वे ही बासना के बांधते तब प्रान मेरे।
जब मिलन अपनी गली में
स्नेह के दीपक सँजोये
नयन के सूनी निशा में
मौन जब नक्षत्र रोये,
शाप से मिलते गले हैं तब विहँस वरदान मेरे।
जब अधीर समीर मेरे
लाज बन्धन खोल देता
सिहर अन्तर का पपीहा
पी कहाँ जब बोल देता।

आँसुओं से तर तभी करते हृदय अभिमान मेरे।
जब अकारण साथियों के
व्यंग का आघात होता,
भावना की साधना का
फूटता जब अमर सोता
खून की दो बूँद तब करतीं प्रकट बलिदान मेरे।
कौन कहता है निराशा से भरे हैं गान मेरे ?

कंटक जी ने देश प्रेम और बलिदानी भावना से पूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी लिखा है। उषा काल का एक चित्र है:—

चन्द्रिका श्री हीन सोती,
रजनिगन्धा मलिन होती,
व्यथित चित है प्रकृति रोती
ओस मिस बिखरे अवनि पर
आँसुओं के मंजु मोती।
दूर कम्पित, क्षितिज पर निस्तेज निशिकर अस्तवेला।
रात विगत-प्रभात तारा व्योम बीच विकल अकेला।

राजनीति की शुष्कता और निरन्तर संघर्षपूर्ण जीवन की विकलता के पूर्व कंटक जी ने कभी ऐसा भी लिखा था:—

अरी ओ, पनिहारी सुकुमार।
हाथ में ले रेशम की डोर,
लहर सी लेती हुई हिलोर।
चल पड़ी किस पनघट की ओर ?

अनेक विद्रोही कविताओं का रचयिता तथा देश सेवा के लिए कई बार जेल यात्रा और एम० ए० पास करके भी देश और समाज के लिये फकीरी अपनाने वाले इस कवि की समस्याओं का समाधान भी तो अपने ढंग का है:—

मन आँगन में दुख की बदली बरसाती रस रीती आह।
उमड़ घुमड़ तब कवि की कविता बह चलती आँखों की राह।
उस कसकनकी रेखाओं के घाव न कोई भर सकता।
सुस्मृतियाँ जीवन की निधि हैं इन्हें न कोई हर सकता।
एक बलिदानी वीर की भावना की मधुराभिव्यक्ति दर्शनीय है:—

दीपक जलता रहने दे।
दीपक सोने चाँदी का हो
या रूखी सूखी माटी का
मूल्य हुआ करता है
केवल बलिदानी परिपाटी का

× × × ×

जीवट से जलने दे अपना
दीपक उन तूफानों में
ज्योति जगा दे फिर प्राणों की
हार थके दीवानों में

चारों ओर अँधेरा छाया दूर हमारा देश।
ले जाना है हमें वहाँ तक नवयुग का सन्देश।
थके पाँव पर हमें लगन से चलता रहने दे।
दीपक जलता रहने दे।

पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त इनका अभी तक कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। कंटक जी ने 'उमर खैयाम' की रुबाइयात का भी बड़ा मार्मिक पद्यानुवाद 'कमण्डल' के नाम से किया है।

बालकृष्ण बलदुआ—(१६६८) भावुक कवि हैं। गद्य काव्य के वे सफल और सिद्ध लेखक हैं। इनकी रचनाएँ समाज की उपयोगिता का आधार होते हुए भी व्यक्तिवाद के अधिक निकट

हैं। आत्मविश्लेषण और अन्वेषण की अधिकता ने इनकी रचनाओं को आत्मोन्मुखी बना दिया है। विषाद और विकलता इनकी रचनाओं में अधिक है वर्णन की चातुरी और दृष्टि की व्यापकता इनकी अपनी विशेषता है। बड़ी से बड़ी बात थोड़े से शब्दों में कह देने में ये कुशल हैं। इनकी रचनाओं में जहाँ विषाद है वहीं पौरुष भी है। आशा और निराशा के स्वर जैसे साथ-साथ चलते हैं। कभी अनुराग कभी विराग। चिन्तन की अधिकता ने उनके कवि को दार्शनिक बना दिया है। गद्य काव्य एवं अतुकान्त उनकी शैली के रूप हैं। मधुर रचनाओं के अतिरिक्त अपनेगीत, मनकेगीत, प्रांगण, आँगन, धड़कन, संताप, नामक कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। संसार के सर्वश्रेष्ठ विदेशी कवियों की चुनी हुई रचनाओं का इनके द्वारा किया गया अनुवाद भी 'विश्व काव्य' के नाम से दो भागों में प्रकाशित हो चुका है। सूत्र में बात कहने में बहुत कुशल हैं :—

क्रान्ति नहीं कुछ और प्राप्त करना भूले स्वत्वों को।
धर्म नहीं कुछ और पालना अपने कर्त्तव्यों को।

रूढ़िग्रस्त समाज से विद्रोह करते हुए कहते हैं :—

नहीं पिघलेगा कुटिल समाज
चहे रोने से पत्थर क्या—
पिघल जाये लोहे का पात्र;
पिघलना यह जाने ही नहीं
ठोकरों पर ठोकर खाकर
जानता केवल दबना मात्र।

वहीं एक दार्शनिक के रूप में कहने लगते हैं :—

तू नहीं था काम तब कोई रुका था ?
तू न होगा काम तब कोई रुकेगा ?
विश्व जलनिधि अगम, सीमाहीन तू लघु बिन्दु।

शब्दों के द्वारा एक सफल चित्र खींच देना उनके लिए बड़ा सरल है :—

केशरिया आँचल परधानीबूटियाँ
और हरी मखमली गोट से सुसज्जित
प्रकृति उनींदी अलसाई मस्ती भरी
अँगड़ाई ले रही प्रिये; देखो सही।

वर्णन की मार्मिकता में तो वे बहुत आगे हैं :—

गोधूली का आँचल फहरा और फिर
धीरे-धीरे अँधियारी आ छागई
कोलाहलमय जनपथ के अति निकट से
निकल एक पगडण्डी प्रान्तर ओर को
चली गई थी, पूर्ण शांति की गोद में
क्रीड़ा करती, इधर उधर को दौड़ती
एकाएकी ठिठक थम गई थी वहाँ,
जहाँ तरणिजा मथर गति से बह रही
शांति शांति का वह विस्तृत साम्राज्य था।

गद्य काव्य के रूप में मनो द्वन्द की एक झलक देखिए :—

द्वन्द ! भीषण द्वन्द !! आशा और निराशा का भयंकर संग्राम ! प्रकाश और कालिमा का दुर्घर्ष घर्षण ! आह्लाद और औदास्य का आवर्तन ! विश्वास और आशंका की झलकों का क्रम से अन्वय ! शांति और व्याकुलता का क्रम से अधिकार। अनिश्चित के पथ में इधर से उधर और उधर से इधर भटकना !

श्रीनिधि द्विवेदी (१९६९)—संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ तथा सुकवि हैं। कई पत्रों का सम्पादन भी किया। 'विक्रमोर्वशी' का गद्य पद्यानुवाद तथा 'सौदामिनी' प्रकाशित हो चुकी हैं। गीत भी अच्छे लिखे हैं गीत में इनका विद्रोही स्वर गूँजा है। कुछ पक्तियाँ हैं—

इतिहास लिखाया जाता है।
सत्तासंपद के रंगों से प्रतिपृष्ठ रंगाया जाता है।
मंगल पाण्डेय क्रांति द्रष्टा
स्रष्टा स्वराज्य भगवान तिलक
आजाद चन्द्रशेखर, सुभाष
नेता जी तक की चीण झलक
ऊधमसिंह जैसे वीरों का बलिदान भुलाया जाता है।
युग युग से दिखलाई देती
धन क्रीत कलम की कमजोरी
कुछ को सब कुछ अङ्कित करती
कल्पना और कविता कोरी
साहित्यकार तेरे द्वारा तू ही ठुकराया जाता है।

रामनाथ गुप्तः—(१६६६) सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं मधुर गीत लेखक हैं। इनके गीतों में भावुक कलाकार की मधुर अभिव्यक्ति है। वेदना-कसक और विकलता की टीस ने इनके गीतों को एक प्रेमी भक्त की तन्मयता प्रदान की है। अपने प्रिय के प्रेम में मगन कवि की भावना का उच्चतम विकास इनकी रचनाओं में स्पष्ट है। गहरी भावना, प्रांजल भाषा और गीत का सौकुमार्य इनके गीतों का शृंगार है:—

बरसे घन सावन के।
बरस जायेंगे मेघों के दल,
पर मेरी आँखों के बादल,
जाने कब तक सखि बरसेंगे,
हृदय नहीं क्या उनके ?
बरसे घन सावन के।

प्रिय की वियोगानुभूति में:—

आँसुओं की धार री सखि।
गिर रही नित नयन में,

श्याम बादल ज्यों गगन में,
बरसते जब उमस बढ़ती,
बरजती मैं उन्हें मन में,
ये जलद आते कहाँ से हुआ मानस क्षार री सखि।
आँसुओं की धार री सखि।
आशा की उपहास सी यह,
कला के इतिहास सी यह,
संकुचित जीवन निशा में,
मूक उर की फाँस सी यह,
कूबरी सी अश्रुधारा कर रही अभिसार री सखि।
आँसुओं की धार री सखि।

प्रेम के साथ देश भक्ति की त्यागी और बलिदानी भावना विषयक इनकी कई रचनाएँ बहुत ही अच्छी हैं। गुप्त जी के गीतों में समर्पण की भावना का श्रेष्ठ स्वरूप देखने को मिलता है:—

हो कबूल प्रार्थना दे सकूँ अपनी आहुति पहले,
यह सौभाग्य मिले मुझको मेरे सेनानी पहले।
मेरे बलिदानों पर मेरा देश उठे सुख पावे
मेरे रोम-रोम से मानव जय की ध्वनि लहरावे।

वैयक्तिक करुणा का आधिक्य इनके गीतों में प्रायः देखने को मिलता है। निराशा और विषाद के घटाटोप में भी इनके गीत आशा और उत्साह से रिक्त नहीं होते। करुणा की कल्पना में भी कर्तव्य की भावना ज्योति की भाँति झिलमिलाती रहती है:—

मानवता की ज्योति जले।
घिरे गगन में ये काले घन,
छूते भू को वज्रघोष बन
उल्कापात हो रहा चहुँदिशि,
किन्तु न स्वर मेरे बदले।

सत्यनारायण पाण्डेय 'सत्य'—सुप्रसिद्ध विद्वान, कवि तथा लेखक हैं। इनकी गद्य तथा पद्य की कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं 'झेलम' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं—

गगनांचल से तुम बिखर पड़ीं गिरसानु थिरकती सी आईं।
हिम जटित, मुकुट पर तुम अपनी छवि आप निरखती सी आईं।
हे चपलचित्त, हे चिर किशोर, हे सुन्दरता की मतवाली।
अँगूर लता के पुष्पों की मकरन्द सुधा पीने वाली।
द्रुत गति से मानिनि चली झूम, स्वर्णिम किरणों के चढ़ हिंडोल।
हिम अंचल से ले चंचलता, मानस से लेकर लहर लोल।
कितना उछाह, कितना प्रवाह, कितनी मादकता है अथाह,
तुम चली आ रही हो प्रतिपल भामिनि किस पथ की लिए राह?
गीत भी इन्होंने उच्चकोटि के रचे हैं :—

ज्योति का जगमग उजाला।
द्रुमलता के पल्लवों पर जल उठी मणि दीप माला।
कुसुम के सुकुमार अधरों पर अपूर्व पराग छाया,
भर गया मकरन्द मधुपों ने पता अब तक न पाया,
तृषित नयनों से न देखो मृदुल मादक मदिर प्याला।
ज्योति का जगमग उजाला।

जब लहरियों में छिटक कर शशिप्रभा प्रमुदित नहाती,
फूटतीं सौंदर्य की किरणें सुनहली जगमगातीं,
रेणु के कण भी चमकते नृत्य करती रश्मि बाला।
ज्योति का जगमग उजाला।

चर अचर में व्याप्त है अज्ञात सी वह क्षीण रेखा,
वेदना में चेतना को चाव से किसने न देखा?
स्वप्न में संसार में भी जग रही है अमर ज्वाला।
ज्योति का जगमग उजाला।

सृष्टि के सौंदर्य में लावण्य बन वह छवि समाई,
चन्द्र हँसकर छिप गया तो अरुण ने आभा दिखाई,
इस जगत के चित्रपट पर रूप का पलभर निराला।
ज्योति का जगमग उजाला।

देवेन्द्रनाथ पाण्डेय शास्त्री (१६७०)—प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। गीत तथा छन्द दोनों ही शैलियों पर इनका समान अधिकार है। ये आशु कविता भी करते हैं। इनके गीतों में दार्शनिक की जिज्ञासा भी दिखाई देती है। इनके कई कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

धारण किये चन्द्र चूड़ामणि, जगमग ज्योति पुंज के गहने
मरकत सूत्र खचित साड़ी पर राजत किरण मेखला पहने
किससे मिलने कहाँ चली तुम मूँद अखिल जगती की पलकें
गति में स्वयं समय क्या कम था जो तुमने भी चरण बढ़ाया।

*　　　　*

युग युग से अल्हड़ सागर का यौवन मचला नभ के नीचे
मैं बहता यह सोच रहा हूँ परवश दोनों आँखें मींचे
साधारण जलदों के भय से बुझ जाती हैं व्योम ज्योतियाँ
यह अनन्त जलराशि किन्तु क्यों बड़वानल न बुझा पाती है ?

श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव (१६७१)—स्वर्गीय श्री हरिहरनाथ शास्त्री की धर्म पत्नी—सार्वजनिक नेत्री एवं हिन्दी की सुमधुर कवियित्री एवं लेखिका हैं। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं का संग्रह 'रजकण' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

इनकी रचनाओं में मानव प्रेम के अलावा आध्यात्मिकता की गहरी छाप रहती है। शुद्ध और श्रेष्ठ विचार, सरल और पुष्टभाषा के माध्यम से हृदयग्राही बन जाते हैं। एक गीत देखिए:—

मैं यदि होती पाषाण सजनि !
रहती निरपेक्ष न तब होता, अपने पन का कुछ भान सजनि।

होता न हृदय होती न व्यथा
वाणी विरहिन कहती न कथा
मैं शीश उठाए अचल खड़ी रहती सहकर अपमान सजनि !
मानव तन में पाहन सा मन
दे करी अलौकिक सृष्टि सृजन
पर कुछ को पुष्प सदृश उर दे, क्यों रचना की असमान सजनि !
पाषाण नहीं होता है द्रव
चाहे जितना पूजे मानव
चरणों पर मुदित चढ़ाता क्यों, मानव अपना अभिमान सजनि !
पाहन होती पूजा पाती
यों पुष्प न बनकर मुरझाती
दो पल विकसित मुरझाने का फिर पाती यह वरदान सजनि !
मैं यदि होती पाषाण सजनि !

मन्नूलाल शर्मा 'शील' (१९७२)—ये देश की उसी परिपाटी के कवि कहे जा सकते हैं जिन्होंने जीवन के प्रारम्भ से देश और समाज के लिए अपने को लगाने का व्रत लिया। दीन दलितों के प्रति शील की ममता गहरी है। प्रारम्भ में ये गांधीवादी विचारों के पक्षपाती और गायक थे। बाद को समय की उलटफेर ने इन्हें मार्क्सवादी बना दिया। यथार्थ चित्रण, ओजपूर्ण वर्णन और संस्कृतनिष्ठ भाषा इनकी कविताओं की विशेषता है। राजनीति में सक्रिय रहने और साहित्य को उसके प्रचार का माध्यम बनाने के कारण इनकी बहुत सी रचनाएँ प्रचार तथा नारे-बाजी बन गई हैं। चर्खाशाला, अँगड़ाई, एकपथ और उदयपथ नाम के कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। चर्खाशाला में शील ने लिखा—

विजय पराजय अहंभाव की यहाँ किसी को चाह नहीं
दुर्बलता को दूर कर चुकी मानवता की थाह नहीं
यहाँ अहिंसा की गीता है यहाँ अहिंसा की माला
यहाँ प्रेम का पाठ पढ़ाती गांधी की चर्खाशाला।

और मार्क्सवादी शील ने लिखा—

अभी भक्षक के रक्षक बने
काल वाहन रचते भूदान
बाँधते अभी पतन के जन्तु
देश का आंदोलित उत्थान

× × ×

ऐसा है यह राज तिरंगा, अड़ियल गधे नहायें गंगा।

और इन सारी समस्याओं का समाधान कवि की नजरों में—

'क्रूर विषमता अब न रहेगी लाल ध्वजा फहरालो'

परन्तु उपर्युक्त पंक्तियों से शील के कवि हृदय का मूल्यांकन नहीं हो सकता। अपितु कवि की आशावादी, बलिदानी भावना और मानवीय संवेदना की गहराई से निःसृत नीचे की पंक्तियों से ही होगा—

मेरे दीपक जलते रहना जब तक रात रहे।
जब तक सूरज नयन न खोले
खिलकर कमल न मुख से बोले
तब तक मेरे उर के दीपक चौमुख ज्योति बहे।

× × ×

माँझी भय है गहरा जल है तट अदृश्य है रात
सँभलो, देखो, भँवर निकट है, अभी सुदूर प्रभात
यह नभ के तारे लहरों में हँस हँस होते लीन
माँझी इस झिल मिल प्रकाश में खोजो पंथ नवीन।

और विश्वास तथा दृढ़ता से युक्त—

है सही ध्रुव ध्येय मेरा लक्ष्य पर मैं जा रहा हूँ।
रात्रि का भय है न मुझको मैं प्रभाती गा रहा हूँ।

श्रीकृष्ण टण्डन (१९७२)—छायावाद से प्रभावित और माँसलता से युक्त भावना प्रधान कवि हैं। 'अर्घ्य' नाम का कविता संग्रह प्रकाशित हुआ है। संग्रह में विभिन्न विषयों को लेकर रचनायें की गई

हैं। जहाँ कवि की वृत्ति ऊर्ध्वमुखी बनी है उन गीतों में प्रेम की भावना खूब निखरी है—

थकीं न आँखें भरा नहीं मन—
युग युग से प्रिय पथ निहारते।
अनायास ही शिथिल अङ्ग में,
मचल मचल पड़ती है सिहरन,
अन्तर में गुद गुदी उठाती,
रोम रोम में जगती पुलकन,
रुके बरुनियों पर आँसू कण—
कहते हम भी पग पखारते।

× × ×

प्राण के लघु दीप को जो
स्नेह से प्रतिपल जगाए
व्यग्र हो करता निरन्तर
आरती सुध बुध गँवाए।

उस उपासक की सतत एकान्त शान्त उपासना मैं।

चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'—सुप्रसिद्ध कवयित्री एवं कहानी लेखिका हैं। इनकी कविताओं का संग्रह 'वन्दना' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। प्रेम और विरह के प्रति इनकी गहरी निष्ठा है :—

'मैं व्यथा की हूँ पुजारिन विरह मेरी साधना है।'

इनकी रचनाओं में करुणा का सागर लहराता है। पीड़ा और अवसाद ने इनके गीतों को मार्मिक बना दिया है :—

उँगली पर दिन गिने जासकें केवल इतना प्यार मिला है
सब सुख खो देने पर मुझको आँसू का अधिकार मिला है।

जगत की निष्ठुरता के प्रति इनकी विकलता इन शब्दों में व्यक्त हुई है :—

विश्व में रोना मना है और हँसना भी मना है
साथ ही अपने हृदय की बात भी कहना मना है
पाप वेदों ने बताया आप से मरना मना है
और है प्रतिबन्ध आँखों के लिये बहना मना है

व्यथाओं का भार ढोते हुए भी किसी के प्रति विरोध प्रदर्शित करने के बजाय अपनी करुणा में ही निमग्न रहना उन्हें प्रिय है :—

जाने क्या दण्ड मिले किसके टेरूँ यदि क्रान्ति कुमारी को
फिर क्यों न विरह के गीत रचूँ छोड़ूँ क्या व्यथा विचारी को
जग को मेरी परवाह नहीं मुझको भी जग की चाह नहीं
अपने दुख पर सन्तोष मुझे जग के वैभव पर डाह नहीं।

सुधा जी के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी गेयता, सहज वर्णन, प्रांजल भाषा और मार्मिकता। एक गीत देखिए:—

मेरे नैन रैन ना जाने।
पल भर को भी झँपीं न पलकें
मैं क्या जानूँ साँझ सबेरा
अबतो सपनों का छल छूटा
जाओ पंछी छोड़ बसेरा
चाह नहीं कोई भी प्राणी मेरी इस गति को पहचाने।
आँख मिचौनी मैं तारों की
देखा करती नील गगन में
कैसे कहदूँ उतने मोती
ढलते मेरे सीप नयन में
लो, मेरा प्रस्थान बटोही तुमतो थे मुझसे अनजाने।
जो थी स्वर्ण वर्ण सी काया
आज बन गई काली छाया
बस अपने जीवन का मैंने
इतना मोल बहुत है पाया

जो अपने थे वे भी मुझसे आज बने जाते बेजाने।
पिंजरे में जो पंछी बन्दी
मुझ को होकर दीन निहारे
उड़ जा रे अब देर न कर तू
खोल युगों से बन्द किंवारे
चुन लो हंसा आज विदा के देती दो मोती के दाने।
मेरे नैन रैन ना जाने।

गोबिंदप्रसाद त्रिपाठी 'अनल'—प्रतिभावान कवि और लेखक हैं। ज्योतिर्मयी, ज्योतिष्क और सुषमा काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। शब्दों के द्वारा सजीव चित्र उतार देना इनकी विशेषता है। प्रकृति का सहज और सुन्दर स्वरूप इनकी रचनाओं में प्राप्त होता है। ग्रामीण चित्रण बड़े स्वाभाविक हुए हैं:—

जले, संध्या के दीप जले!
दिन यौवन कण पुंज अरुण पश्चिम की ओर ढले,
तरु झुटपुट की ओर रँभती गायें उधर चलीं,
सजल प्रतीक्षा में वत्सों से आई हिली मिलीं

* * *

इमली के कंगन झूले
ये तरुण नयन ललचाये
उनकी सुन्दर आकृति पर
नव आभूषण शरमाये।

* * *

फूली झरबेरी बन में
भर आज कँटीली गोदी
किस जन ने अनजाने में
मुक्तावलि राशि पिरो दी।

सूर्यकुमारी दीक्षित 'उषा'—हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री मक्खन द्विवेदी गजपुरी की बहिन तथा कानपुर नगरपालिका के शिक्षा सुपरेन्टेन्डेण्ट श्री उमाशंकर दीक्षित की पत्नी हैं। प्रकाशित कविता संग्रह 'निर्झरिणी' पर इन्हें सेकसरिया पुरस्कार मिला। इनके गीतों में नारी हृदय की कोमलतम भावनाएँ तथा एक दायित्व वहन करने वाली गृहिणी का स्वच्छ स्वरूप दिखाई देता है। उच्च भावना और मधुर अभिव्यक्ति है:—

जहाँ मुक्ति देता है बन्धन जहाँ वेदना प्यारी
जहाँ मधुर होती है पीड़ा जहाँ व्यथा सुखकारी
चिरवियोग में जहाँ मिलन सुख का आभास दुलारी
जहाँ हलाहल अमर बनाता जहाँ न भव भयहारी
उसी मार्ग के पथिक और हम उसी लोक के वासी
उसी प्रेम जग के दीवाने वही हमारी काशी।

रमाकान्त श्रीवास्तव (१९७८)—नई पीढ़ी के बहुमुखी प्रतिभाशाली कवि हैं। हिन्दी कविता की नई शिल्प में भावों की गहराई और यथार्थ चित्रण इनकी विशेषता है। अकृत्रिम रूप से ये अपनी रचनाओं में जीवन का चित्र खींचने में समर्थ हैं। अवधी में भी ये बहुत अच्छी कविताएँ लिखते हैं। संघर्ष की पृष्ठभूमि में निराशा के बजाय आशावादी चित्रण इन्हें प्रिय है। इनकी उपमाएँ भी नवीन और मुग्ध करने वाली होती हैं:—

लो सलोनी नीलिमा
सिर पर धरे यह बादलों के छलकते कलशे
किसी अनजान दिशि को जा रही है
गगन पथ से।

कृष्ण सा नट खट समीरण
छेड़खानों पर अड़ा है

खोलता है श्याम घूँघट पट
तड़ित सा चमक उठता है।
भरा आनन।

*　　　*　　　*

यह तोड़ रही है पत्थर
गर्मी की दुपहर
मैं गया अतल श्रद्धा से भर।
यह मजदूरिन है, माँ भी है
आँचल में इसके दूध और बाँहों में श्रम
चाँदनी रात तपती दुपहर
खुशियाँ और गम इसको हैं सम
इसके इस श्रम के व्यस्त प्रहर
उर्वशियाँ लाखों न्योछावर
मैं गया अतल श्रद्धा से भर!
यह हेय नहीं, है श्रेय इसे
भावी समाज की रचना का,
हर चोट हथौड़े की इसकी
स्वर युग की नवल बन्दना का
श्रम कस्तूरी-सी यह भू पर
सुरभित दिगंत इसको छूकर
मैं गया अतल श्रद्धा से भर।

श्री श्यामसुन्दर त्रिपाठी 'राजा' एवं श्री कृष्णकुमार त्रिवेदी 'कोमल' सशक्त मार्क्सवादी कवि एवं लेखक हैं। पुराने छन्द तथा गीत समान गति से लिखते हैं। वाद विशेष का आग्रह होने के कारण कुछ रचनाओं में साहित्यिक गरिमा न्यून हो गई है तथापि प्रभावशाली वर्णन और प्रवाह पूर्ण भाषा में दुःखी एवं हारे-थके मानव के प्रति अनुराग और उसकी उन्नति के प्रति अडिग आस्था इनकी रचनाओं में

स्पष्ट है। दोनों महानुभावों की कुछ रचनाओं का संयुक्त संग्रह 'ज्योतिकण' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

उदाहरण:—

ज़माने से लुटा हूँ मैं तुम्हें क्या दूँ।
मगर मैं ज़िन्दगी के गीत देता हूँ।
इन्हीं गीतों को हलधर गुनगुनाते हल चलाते हैं,
इन्हीं गीतों को गाते शाम को घर लौट आते हैं,
यही तो गीत खेतों बालियों में मुस्कराते हैं,
यही तो गीत धरती स्वर्ग से सुन्दर बनाते हैं,
सधी जिन सरगमों पर सृष्टि—
मैं तुमको वही संगीत देता हूँ।

—'राजा'

सरल है हिमालय विजय को भुला दे,
कठिन किन्तु अपनी प्रगति को भुलाना।
सरल है मनुज इन्द्रियों को भुला दे
कठिन किन्तु उसकी प्रकृति को दबाना।
सरल सिन्धु लहरें शिलायें मिटा दें
कठिन किन्तु है मोतियों को मिटाना।
सरल है कि जीवन बने हिम शिला सम,
कठिन किन्तु अपनी तरलता छिपाना।

—'कोमल'

रामेश्वर 'संगीत'—सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं कवि हैं। 'कमला' मासिक पत्रिका का संचालन एवं सम्पादन किया। गीत तथा अतुकान्त मुक्तक लिखने में कुशल और थोड़े में बहुत कुछ कहने के अभ्यासी हैं:

प्रात के बुझते हुए धूमिल सितारों की तरह
जी रहा हूँ राख होते से अँगारों की तरह
जिन्दगी को बाँधने की प्यास अब भी शेष है
मुक्त सलिला के ढहे जाते कगारों की तरह।

विनोद रस्तोगी—सफल नाटक एवं उपन्यास लेखक हैं। कविताएँ भी अच्छी लिखते हैं। 'ज़िन्दगी के गीत' नाम का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। सूत्र में ही जोरदार बात कह देते हैं :—

प्यार बेदाम एक मोती है
आँख दिल में जिसे पिरोती है
प्यार में हार हो भले लेकिन
प्यार की हार नहीं होती है।

नीरज—नई पीढ़ी का सर्वाधिक ओजपूर्ण कवि है। मानव प्रेम और विश्व प्रेम इनकी रचनाओं में एक आन्दोलन के रूप में दिखाई देता है। नीरज का भाव, भाषा और छन्द पर अच्छा अधिकार है। नीरज की प्रारम्भिक रचनाओं संघर्ष, अंर्तध्वनि और 'विभावरी' में विवशता-मृत्यु और वासनात्मक प्रेम की चपल अभिव्यक्ति थी परन्तु 'प्राणगीत' में वह प्रेम मानव की विश्वात्मा के रूप में प्रकट हुआ। आज दीन हीन मानव को गरज कर जाग्रत करने वाले कवियों में नीरज अग्रणी हैं। प्रेम उसकी कविता का मूल स्वर है। मानवतावादी जीवन दर्शन का विकास इनकी रचनाओं में निरन्तर देखने को मिल रहा है। इधर के गीतों पर कबीर और मीरा का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। अरविन्द के विचारों तथा उर्दू साहित्य का प्रभाव भी इन पर पड़ा है। संघर्ष, अन्तर्ध्वनि, विभावरी, प्राणगीत,(दो भाग) दो गीत और 'दर्द दिया है' इनके प्रकाशित कविता संग्रह हैं।

'नीरज की पाती' के रूप में भी इन्होंने बड़े मार्मिक गीत लिखे हैं। यद्यपि इनकी कुछ रचनाएँ नारे बाजी की भी शिकार हुई हैं परन्तु मुख्यतः यह एक प्रतिभाशाली और पौरुषवान कवि हैं।

क्या करेगा प्यार वह भगवान को
क्या करेगा प्यार वह ईमान को
जन्म लेकर गोद में इन्सान की
प्यार कर पाया न जो इन्सान को।

विवशता और वासना के होते हुए भी प्रारम्भ से ही नीरज में एक मस्ती और अदम्य साहस की भावना व्यक्त होती रही है और उसी का क्रमिक विकास संघर्ष (प्रकाशित सन् १९४४) से दर्द दिया है (प्रकाशित १९५७) तक में देखने को मिलता है ! अपने अस्तित्व की घोषणा करते हुए नीरज ने लिखा है:—

मैं पन्थी तूफानों में राह बनाता
मेरा दुनियाँ से केवल इतना नाता
वह मुझे रोकती है अंगार बिछाकर
मैं ठोकर उसे लगा कर बढ़ता जाता।

विभावरी में नीरज का यह स्वरूप स्पष्ट हो गया था। 'प्राण गीत' में यह "अहं" मानव का स्वाभिमान और मानवीय संवेदना के रूप में मुखरित हुआ:—

मुझे मिली है प्यास विषमता का विष पीने के लिए,
मैं जन्मा हूँ नहीं स्वयं हित, जग हित जीने के लिए,
मुझे दी गई आग कि मैं इस तम में आग लगा सकूँ,
गीत मिले इसलिए कि घायल जग की पीड़ा गा सकूँ,
मेरे दर्दीले गीतों को मत पहनाओ हथकड़ी
मेरा दर्द नहीं मेरा है सबका हाहाकार है।
कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है।

'जीवन की पूर्णता समष्टि सुख में है' की भावना नीरज ने इन पंक्तियों में व्यक्त की है:—

सृजन है अधूरा, अगर विश्व भर में
कहीं भी किसी द्वार पर है उदासी
मनुजता नहीं पूर्ण तब तक बनेगी
कि जब तक लहू के लिए भूमि प्यासी
चलेगा सदा नाश का खेल यूँ ही
भले ही दिवाली यहाँ रोज आये

जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाये।

नीरज को मृत्युवादी कहना उन्हें गलत समझना होगा। वस्तुतः वह जीवन और मृत्यु दोनों की महत्ता और वास्तविकता को स्पष्ट रूप से कह देने का अभ्यासी है। नाश और निर्माण की गति साथ ही साथ चलती है। एक का जन्म तो दूसरे का मरण। नियति के दोनों पक्षों को दिखाने का उसने प्रयास मात्र किया है और शायद इस सत्य से कोई भी इनकार नहीं करेगा:—

एक पाँव चल रहा अलग-अलग और दूसरा किसी के साथ है।
एक डाल इस तरह खिली फली कि एक-एक पात फूल बन गया।
एक डाल इस तरह मगर लुटी कि एक-एक फूल धूल बन गया।
इसलिए सिंगार में संहार में—
एक पाँव चल रहा अलग-अलग
और दूसरा किसी के साथ है।

मृत्यु की अनिवार्यता को मान कर भी नीरज निराशा का गायक नहीं है:—

प्रेम पथ हो न सूना कभी इसलिए
जिस जगह में थकूँ उस जगह तुम चलो।

नीरज की सरल भाषा, भावों का भारी से भारी बोझ सम्हाल लेने में समर्थ है। मधुर काव्य पाठ के अतिरिक्त इनकी लोकप्रियता का यह भी एक कारण है कि भाषा पर उनका पूरा अधिकार है। सरल से सरल उर्दू मिश्रित हिन्दी लिख कर जो जन साधारण तक अपना सन्देश पहुँचाता है वही आवश्यकतानुसार संस्कृत निष्ठ और प्रवाहपूर्ण शुद्ध हिन्दी लिखने में भी समर्थ है। जीवनगीत के अतिरिक्त कुछ अन्य गीत तथा अरविन्द की कविताओं के भावानुवाद में उनकी यह विशेषता देखी जा सकती है। द्रष्टव्य है:—

स्वर्गानुरक्त, सैकत तट पर तरु खड़ा एक
नभ ओर भुजाओं सी शाखाएँ फैलाता,
हो विफल किन्तु जड़ धरती के आकर्षण से
ऊपर न मृत्तिका की माया में उठ पाता।
वह है आत्मा, मानवस्वरूप, जिसकी ऊर्ध्वंत स्वर्गिक उड़ान।
है नीचे रोके हुए खड़े, रज पाश बद्ध मन, देह, प्राण।

नीरज की इधर की रचनाओं में दार्शनिकता बढ़ती जाती है। प्रेम की भाव भूमि भी अब उनकी ऊर्ध्वमुखी है। भारतीय रहस्यवादी संतों तथा प्रेमी भक्तों की छाप इन पर गहरी होती जा रही है। नीरज अपनी मौलिकता के साथ हिन्दी कविता को कुछ दे सकने में समर्थ हैं और उनकी उस सामर्थ्यशक्ति का सदुपयोग होना अभी शेष है। जहाँ तक क्षमता और प्रतिभा का प्रश्न है वह नीरज के पास पर्याप्त है।

शिवबहादुर सिंह—नई पीढ़ी के सशक्त गीतकार हैं। वर्णन की विशेषता, चित्रण की मार्मिकता के अतिरिक्त प्रतीकों का उत्तम उपयोग इनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। ग्राम्य दृश्यों को जितनी सफलता के साथ इन्होंने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है वैसा हिन्दी में बहुत कम देखने को मिलेगा। यथा—

पुरवा जो डोल गई।
घटा घटा आँगन में जूड़े से खोल गई।
पेड़ों की जड़ें पकड़ चरवाहे झूल रहे
बिरहा की तानों में बिरहा सब भूल रहे........

इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'शिंजिनी' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। प्रतीकों की प्राचीनता को नवीनता में ढालने का प्रयास भी इनका श्लाध्य है। एक रूपक देखिए:—

भोले प्राण फँस गये कैसे विषम प्रेम की राजनीति में।
स्वर्ण मृगा सा रूप मनोहर मेरे नयन राम धनुधर से,

बाँध ले गये मन को लेकिन सुधि वैदेही खोई घर से,
तन मन जले लंक से निशि दिन क्षण क्षण बीते हार जीत में।

रुद्रदत्त 'शेखर'—तरुण मधुर गीतकार हैं। मासिक 'प्रवाह' का सम्पादन भी किया। इनके गीतों का संग्रह—'पतझर के फूल' नाम से प्रकाशित हुआ है। प्रेमजन्य पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति इनके गीतों का शृंगार है। समर्पण की भावना और दर्द की व्यापकता के साथ संगीत का सफल सामंजस्य हुआ है:—

गीत मैं लिखता रहूँगा प्राण ! तुम गाओ न गाओ।
आ गई है सावनी बौछार लेकिन तुम नहीं हो,
खुल रहे अलकापुरी के द्वार लेकिन तुम नहीं हो,
लोग कहते हैं कि मैं मधु के निकट प्यासा खड़ा हूँ,
देखता हूँ रूप का विस्तार लेकिन तुम नहीं हो,
मैं पपीहे सा सदा तन्मय रहूँगा साधना में
मेघ बन मेरे हृदय में प्राण ! तुम छाओ न छाओ।

प्रिय के प्रति नम्रतापूर्ण आग्रह करते हुए:—

जो कि नियमों के नियन्त्रण से निकल कर आ न पाये
प्राण, मेरे भूलकर भी प्यार तुम उसको न कहना।
प्यार इस जग के सहस्रों वैभवों से भी बड़ा है
प्यार तो इंसान से भगवान के सम्बन्ध सा है
जो किसी टूटे हृदय की आह सुनकर खुल न जाये
प्राण मेरे देवता का द्वार तुम उसको न कहना।

देवीप्रसाद 'राही'—नई पीढ़ी के प्रतिभाशाली गीतकार हैं। इनके गीतों में जीवन की सुख-दुख भरी अनुभूतियों की सम्यक् व्यंजना हुई है। वैयक्तिकता का आधिक्य होते हुए भी समष्टिवादी दृष्टि की अवहेलना नहीं दिखाई देती। अनगढ़ भाषा के आवरण में स्पष्ट भावनाओं को व्यक्त करने की एक विशिष्ट शैली इनकी अपनी विशेषता है

अकेला है तू पर क्या गम। दर्द है साथ यही क्या कम।
भरोसा मत कर औरों का। स्वयं लौ बनकर पीले तम॥

*　　　*　　　*

स्वप्न के पंछी उड़े जाते नयन के नीड़ से।
ज्यों किसी का पालतू मन दूर भागे भीड़ से॥

मौलिक प्रतीक तथा मधुरता से युक्त कोमल और सजीव चित्रण करने में ये सफल हैं:—

अभी धूल की चादर पर कुछ ताजी ताजी शिकन पड़ी है,
उन तलुवों के चल चुम्बन की लिए खुमारी राह पड़ी है,
अभी करवटों में बयार की कुनुन मुनुन करती कंकड़ियाँ,
छिट पुट दूबों की फुनगी से कहती अभी ओस की लड़ियाँ,
कल की साँझ चाँद की रानी तुम से तो बतलाई होगी।
इसी डगर पर पग ध्वनि उनकी शायद कुछ कुछ गाई होगी।

इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'छाँह' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

राममनोहर त्रिपाठी—शक्तिशाली तरुण गीत लेखक हैं। आज कल की सभी पत्र पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ देखने को मिलती हैं। संग्रह अभी तक कोई छपा नहीं है। प्रेमाभिव्यक्ति, सङ्गीत का माधुर्य तथा अलंकार युक्त भाषा इनके गीतों में देखने को मिलती है। कहीं कहीं पूर्णतः नयी और शक्तिशाली उपमाओं के साथ कल्पना की ऊँची उड़ान भी ली है। परिपुष्ट विचार, बोधगम्यता और माधुर्य के कारण इनके गीतों में पाठक की आत्मा सहज ही रम जाती है:—

धरती सब का सुख दुख सुनती आँखें मींचे
उठने वाले पल्लव उठते हैं बिन सींचे
मैं पूँछ रहा धरती से उनका क्या होगा
अंकुर थे जो दब गये पहाड़ों के नीचे?

उपेन्द्र—नई पीढ़ी का प्रतिभाशाली मधुर गीतकार है। स्वस्थ भावना, प्रांजलभाषा, मार्मिक और चमत्कार युक्त अभिव्यक्ति के साथ साथ संगीतात्मकता इनके गीतों की प्रमुख विशेषता है। प्रेम की व्याख्या देखिए :—

प्यार एक राजा है जिसका ब‍ुत बड़ा दरबार है
पीड़ा जिसकी पटरानी है आँसू राजकुमार है
समय एक शूली है जिस पर झूला करती ज़िन्दगी
जलन कैद है, रुदन बेड़ियाँ, क्रन्दन पहरेदार है

अन्य प्रतिभाशाली गीतकारों में श्री भुवनेश मिश्र, श्री राजकुमार पाण्डेय 'कुमार' श्री सिद्धेश्वर अवस्थी, श्री रमाकान्त दीक्षित, श्री विकास बाजपेयी, श्री सिन्दूर, श्री सुरेन्द्रपाल सिंह, श्री प्रताप नागर, श्री महेन्द्रपाल सिंह, श्री कानन, श्री मृगांक, श्री मुनीन्द्र, श्री दुखित, श्री सुदर्शन चक्र, श्री सर्वेश, श्री मगन अवस्थी, श्री बुद्धिसेन शर्मा, श्री निशंक, श्री निर्गुण अवस्थी, श्री सफल शर्मा प्रभृति उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त महानुभावों में श्री राजकुमार का 'अश्रुतारा' श्री विकास का 'निर्माण' तथा सुरेन्द्रपालसिंह का एकरात कविता संग्रह प्रकाशित हुआ है। श्री सिद्धेश्वर ने गीतों के अतिरिक्त पुराने छन्द भी बहुत अच्छे रचे हैं। कवियित्रियों में सुश्री विष्णुकुमारी मंजु, सुश्री सुभाषिणी, श्री विद्या सक्सेना, कुमारी श्यामा श्रीवास्तव एवं पुष्पा सक्सेना का नाम प्रमुख है। श्रीमती विद्या सक्सेना की रचनाओं का संग्रह 'जीवन तरणि' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

गीतों की मधुरता की दृष्टि से उपर्युक्त कवियों में कुमार, सुरेन्द्र, महेन्द्र, विद्या, श्यामा श्रीवास्तव, सिन्दूर के नाम विशेषता रखते हैं। नयी कविता तथा अतुकान्त सुन्दर मुक्तक रचनाओं के लिए शेष कवियों का नाम उल्लेखनीय है।